पांचाली

सुशील कुमार

भारतीय पुस्तक परिषद्
नई दिल्ली

Bhartiya pustak parishad

पांचाली

सुशील कुमार

भारतीय पुस्तक परिषद्
नई दिल्ली

Bhartiya pustak parishad
N. Delhi

अपनी प्रेरणा सत्यभामा को,
जिन्हें पाने के लिए मैंने
कोई लक्ष्यबेध तो नहीं किया था,
किंतु, जो जीवन के हर पल को
सार्थक करती रही हैं

आधार

'जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं नहीं है'—अर्थात् महाभारत किसी विश्वकोश से कम नहीं है। ऐसी मान्यता इस महाकाव्य के संबंध में न जाने कब से चली आ रही है। इसमें संदेह नहीं कि महाभारत में भारतीय जनजीवन का समग्र चित्र उपलब्ध है तथा उसके हर अंग को स्पर्श करने वाली अनेकशः घटनाओं का संकलन है। यह कालजयी महाकाव्य मात्र सामाजिक परिवेश अथवा जनजीवन से जुड़ी स्थूल स्थितियों से ही संपन्न नहीं है, वरन् अध्यात्म तथा ज्ञान की उच्चतम स्थापनाओं को भी इस महासंग्राम में अभिसूचित किया गया है। इस विराट पौराणिक महाकाव्य के विषय में आज तक विद्वानों में अनेक मत-मतांतर रहे हैं : क्या इसकी रचना वेदव्यास के नाम से सुविख्यात किसी एकमात्र ऋषि द्वारा की गई थी? इसके विशाल कलेवर में अपरंपार ज्ञान तथा मर्मस्पर्शी कथाओं का अपरिमित भंडार क्या मूल रूप में सुरक्षित है? अपनी विपुलता और वैविध्य से भरपूर इस महाग्रंथ की रचना क्या किसी विशेष कालखंड की सीमित अवधि में ही संभव थी?

कहा जाता है कि वेदों की ऋचाओं को विधिवत् विभाजित करके उन्हें सुव्यवस्थित रूप में संकलित करने के कारण ही महर्षि कृष्ण द्वैपायन का नाम 'वेदव्यास' के रूप में विख्यात हो गया था। इन महर्षि को ही महाभारत का रचयिता भी स्वीकार किया गया है। किंतु बार-बार एक प्रश्न उठता है—आज महाभारत जिस विराट् रूप में उपलब्ध है, क्या वही वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत है जो आज भी मूल रूप में सुरक्षित है?

किंतु यह प्रस्तुत प्रसंग से परे का प्रश्न है। यहां न तो इतना अवकाश है, न प्रयोजन ही कि इस पर विस्तार से विचार किया जाए। यहां तो इतना ही अभिप्रेत है कि महाभारत काव्य को हमारी संस्कृति का विश्वकोश मानकर युगों से उसकी एक-एक बात पर विश्वास किया जाता रहा है और इस धार्मिक महत्ता भी दी जाती रही है। भारतीय मनीषी तो प्राचीन काल से ही इसे पांचवां वेद कहकर इसका अभिनंदन करते आए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक-शृंखला की रचना वास्तव में इस उद्देश्य से की गई है कि महाभारत में वर्णित मूल कथा में कोई विशेष परिवर्तन किए बिना, महाभारत के

सुविख्यात नारी पत्रों के माध्यम से उस युग की स्त्री की रोचक जीवनगाथा—अथवा सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों की सुगम रोचक जानकारी प्रस्तुत की जाए।

युगों से महाभारत प्राचीन कवियों से लेकर आधुनिक साहित्यकारों तक के लिए एक ऐसा प्रेरणास्रोत रहा है, जो हर तरह से भारतीय जनमानस को अपने प्रभाव-क्षेत्र में समेटता आया है।

प्रस्तुत शृंखला का विशेष उद्देश्य है—भारत की प्राचीन एवं अर्वाचीन गरिमामयी नारियों के चरित्रों को कथात्मक आयाम में प्रस्तुत करना।

यहां मुख्यतः ऐसे नारी पात्रों को ही चुना गया है जिनके बिना महाभारत का अस्तित्व ही संभव न होता। भारतीय संस्कृति ऐसे तो प्राचीन काल से ही नारी के प्रति विशेष संवेदनशील रही है। कहना तो यह चाहिए कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूल आधार ही नारी के प्रति यहां के समाज का सम्यक् आचरण और यहां की उच्चतर मूल्यों से अभिरंजित मान्यताएं रही हैं। तो भी महाभारत की इन महामाननीया नारियों के जीवन में कितनी ही ऐसी विसंगतियां दिखाई पड़ती हैं कि विश्वास ही नहीं आता—हम भारत की उसी संस्कृति अथवा समाज की बात कर रहे हैं, जो नारी को परमपूजनीया मानकर उद्घोष करता रहा है : 'जहां नारी की पूजा होती है, वहीं देवताओं का निवास होता है!' जब हम उसी देश के विराट महाकाव्य में ऐसे प्रसंग भी पाते हैं, जहां महाभारत की परम गरिमामयी नायिका पांचाली को विकट अनाचार सहने पड़ते हैं। क्रूरकर्मा दुःशासन द्वारा उसको एकवसना (रजस्वला) होने पर भी केश पकड़कर भरी सभा में खींचते-घसीटते हुए ले जाने का वर्णन मिलता है, तो क्या मन पर आघात नहीं लगता! उस युग में सामाजिक मूल्यों के ह्रास और विषमता की स्थितियां अपने चरम पर थीं!

क्या इस बात पर विश्वास आता है कि यह सब उस युग में हो रहा था जब हस्तिनापुर पर प्रतापी भरतवंश का राज था! यह सब तब हो रहा था जब उस राजसभा में अपनी भीषण प्रतिज्ञा के लिए सुविख्यात योद्धा एवं युग के महानतम शस्त्रज्ञ एवं शास्त्रज्ञ देवव्रत भीष्म स्वयं भी उपस्थित थे। उस समय सभा में अनेक योद्धा तथा पराक्रमी राजा थे; ज्ञान की पराकाष्ठा छूने वाले महात्मा विदुर जैसे महामात्य भी थे। और उन सबके बीच एक ओर द्यूतक्रीड़ा में हारकर, सिर नीचे करके बैठे महापराक्रमी पांडवों के सामने ही उनकी पत्नी, इंद्रप्रस्थ की सम्राज्ञी और कुरुकुल की माननीया कुलवधू पांचाली को दासी की भांति तिरस्कृत करके उसको निर्वसना करने का अनर्थ

किया जा रहा था। यह वही युग था जब शक्तिशाली यादवों के नेता वासुदेव कृष्ण की दुर्धर्ष शक्ति का बोलबाला था। वही कृष्ण, जिनकी पूजा उनके जीवनकाल में ही सर्वशक्तिमान के रूप में प्रचलित हो चली थी और लोक में वह 'नारायण' के अवतार की गरिमा पाने लगे थे।

ऐसा क्यों हुआ होगा? इस भीषण अपमान और यातना को झेलकर पांचाली ने किस प्रकार बारह वर्षों तक अपने केश खोले रखकर पतियों के साथ वनवास तथा तेरहवें वर्ष अज्ञातवास की यातनाएं सहन की होंगी? जिस पांचाली ने एक दिन सम्राज्ञी के रूप में कितनी ही रानियों से अपने चरणों की पूजा करवाई थी, उसको जब मत्स्य राज्य में अपने से कहीं हीन स्थिति की एक रानी सुदेष्णा की सेवा में सैरंध्री बनकर रहना पड़ा तो उस पर क्या बीती होगी?

मात्र पांचाली ही नहीं, स्वयं सत्यवती, गांधारी, देवकी, कुंती आदि भी तो ऐसी ही नारियां रहीं जिनको जीवन में घोर से घोर यातना और संताप झेलने पड़े। किंतु उनकी महानता उनकी अडिग आस्था, गहन धैर्य एवं अदम्य जिजीविषा में है, जिनके बल पर वह साहस के साथ अंतिम पल तक संघर्ष करती रहीं।

रचना की दृष्टि से यह बात कितनी सहज लगती है कि किसी बनी-बनाई कथा को संजोकर, अपनी ओर से उसे नवीन कृति कहकर परोस दिया जाए! किंतु जो इस प्रकार का प्रयास मौलिक स्तर पर करते हैं, उनको ऐसी रचनाओं की प्रक्रिया की गहन पीड़ादायी एवं श्रम-साध्य स्थिति का अनुभव होगा। किसी और की कृति से कुछ लेना और फिर उसे सर्वथा मौलिक रूप में ढालकर प्रस्तुत करना कितना कठिन होता है, इसका अनुभव रचना के स्तर पर ही हो सकता है—और वह भी तब जबकि हम युगों से भारतीय जनमानस को आंदोलित करने वाले विश्वविख्यात कालजयी महाकाव्य 'महाभारत' को आधार बनाकर कुछ नया और मौलिक प्रस्तुत करना चाहते हों!

फिर इस दिशा में प्रयास करते समय लेखक को निरंतर यह ध्यान भी रखना पड़ा कि जो कुछ प्रस्तुत किया जा रहा हो, वह मूल महाभारत में प्रस्तुत प्रसंगों और कथात्मक वृत्तों की परिधि से दूर न हो। इस शृंखला की पुस्तकों में उस युग की गरिमामयी नारी का एक प्रकार से कथात्मक जीवन-वृत्त ही होगा, इस कारण हम तत्कालीन मान्यताओं के विपरीत अथवा उनसे परे नहीं जा सकते। हमारे प्राचीन वाङ्मय प्रायः पौराणिकता की सर्वग्रासी प्रवृत्ति से संचालित होते रहे हैं। इसी कारण उसके अंतर्गत कितने ही ऐसे

प्रसंग भी मिलते हैं जब किसी पात्र-विशेष को गरिमायुक्त करने के लिए अथवा उनके विषय में घटनाओं को अलौकिकता देने हेतु उनको जटिलतर बना दिया जाता है। उनके बीच ऐतिहासिकता खोजना अथवा उनको परिमार्जित संदर्भ देने का प्रयास हमारी इन कृतियों का लक्ष्य नहीं रहा। इन महान् नारी पात्रों को महाभारत के माध्यम से हम जिस रूप में पाते हैं, उसका ही चित्रण काम्य रहा, क्योंकि हम कथात्मकता के मोह में भी भ्रामक तथ्य नहीं परोस सकते। इस कारण कितनी ही अविश्वसनीय, अलौकिक एवं चमत्कार-भरी घटनाओं अथवा संदर्भों में सहजता लाने का भरपूर प्रयास करते हुए भी उनको मूल के निकट, लगभग यथावत् ही रखा गया है।

वर्तमान युग में नारी-उत्थान के लिए अनेकशः समवेत प्रयास किए जा रहे हैं। यद्यपि अब भी उनको पूर्णतः अर्धांश न देकर मात्र तीस प्रतिशत की साझेदारी देने की बात ही की जाती है, तो भी (इस जागरूक युग में भी) राजनीति के कर्णधार अपनी-अपनी कामना के अनुसार, नारी को कितनी शक्ति मिलनी चाहिए और कितनी किस सीमा के साथ बंधी हुई दी जानी चाहिए, इसको लेकर निरंतर सतर्क रहते हैं! प्रायः होता यही रहा है कि जिन क्षेत्रों में महिलाओं को कुछ सामने आने का अवसर मिला है, वहां भी पुरुष ही प्रधान बनकर नारी के नाम पर स्वयं अधिकार और सत्ता का उपभोग करते रहते हैं। भले ही आज विश्वस्तर पर महिलाओं के लिए नारी-वर्ष एवं कितने ही तथाकथित 'दिवस' मनाए जाते रहें, नारी की पूजा तक की घोषणा करने वाले हम भारतीय जन अब तक वास्तव में यह नहीं पचा पाते कि नारी को पुरुष से समतुल्यता का अवसर दिया जाए। आज भी किसी न किसी रूप और वेश में दुर्योधनों की मायावी शक्ति महिला-जगत के उत्थान को जहां की तहां स्तंभित कर देने से नहीं चूकती। बहाना कोई भी हो।

ऐसे में मेरा यह प्रयास संभवतः नारी की दुरवस्था के विरुद्ध युद्धघोष का साक्ष्य बन जाए! और कुछ हो या नहीं, लेकिन मेरी कामना यही है कि आज की नारी किसी भ्रम में आकर फिर से सुषुप्ति का ग्रास न बन जाए। मेरा यह प्रयास उनके अभियान का शंखनाद न सही, नारी मात्र के लिए उद्‌बोधन का साधन ही बन सके तो भी मैं इसे सार्थक मानूंगा।

युग बदलता है और युग के इस परिवर्तन की प्रचंड धारा को कोई भी कुटिलता चिरकाल तक अवरुद्ध नहीं कर पाएगी—इस अडिग विश्वास के साथ मैं अपनी इन

रचनाओं को नारी की सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुक्ति की वेला में उनके 'विजयघोष' के रूप में अर्पित करता हूं।

महाभारत में वर्णित अनेक राज्यों तथा स्थानों को आधुनिक संदर्भ में ठीक-ठीक समझा जा सके, इसके लिए तत्कालीन भौगोलिक विवरणों का कुछ संकेत दे देना आवश्यक लगता है।

प्राचीन भारतीय साक्ष्यों के अनुसार, **भरतखंड** की सीमा धुर उत्तर में **मेरु** पर्वत तक फैली थी। **'मेरु'** वास्तव में पामीर की पर्वतमाला और पठारी प्रदेश की ओर इंगित करता है। प्राचीन वाङ्मय के अनुसार, उस युग में भरतखंड की सीमा मध्य एशिया तक विस्तृत थी। ऐसे तथ्यों के अनुसार, उस क्षेत्र को हमारे प्राचीन वाङ्मय में **कांबोज** जनपद कहा जाता रहा है। वह सुविस्तृत क्षेत्र वहां की सबसे बड़ी नदी वंक्षु द्वारा सिंचित और पालित था। महाभारत का शोधपूर्ण अध्ययन करने से आभास मिलता है कि इस विस्तृत भूखंड में चार विशाल जनपद थे—**कंबोज, वाह्लीक, कपिश** और **गांधार**।

गांधार की राजधानी और सबसे बड़ी नगरी **तक्षशिला** थी। महाभारत (समर) के कोई पचहत्तर-अस्सी वर्ष के बाद हस्तिनापुर-नरेश परीक्षित की हत्या नागों ने कर दी। यह परीक्षित पांडवों के पौत्र—अर्थात् अर्जुन और सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु के पुत्र थे—जो युधिष्ठिर के बाद पांडवों के उत्तराधिकारी के रूप में हस्तिनापुर के राजपद पर आरूढ़ हुए थे। नागों द्वारा उनकी हत्या होने के बाद, राजा परीक्षित का पुत्र, अर्थात् पांडवों का प्रपौत्र जनमेजय अत्यंत पराक्रमी राजा हुआ। उसने नागों को दंडित करने के लिए घोर नागमेध किया था। कहा गया है कि उसका यह यज्ञ **तक्षशिला** में ही किया गया था। संभवतः **तक्षशिला** नगर की स्थापना नागों द्वारा ही नागराज **तक्षक** के नाम पर की गई होगी। ऐसे तो आधुनिक विद्वानों का मत है कि संभवतः महाभारत काल तक **तक्षशिला** नगरी का अस्तित्व ही नहीं था। तो भी उन दिनों **गांधार** में और आसपास के क्षेत्रों में नागों की कई पुरियां थीं और वहां नाग जाति काफी शक्तिशाली रही होगी। ऐसी स्थिति में परीक्षित की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए उनके पुत्र जनमेजय द्वारा उस क्षेत्र के नागों पर आक्रमण करके उनका विनाश किया गया होगा।

जो भी हो, **गांधार** जनपद का अस्तित्व तो निर्विवाद है ही। उसी गांधार की राजकन्या थीं कुरुराज धृतराष्ट्र की पत्नी महारानी गांधारी। उनका भाई शकुनि अपने पिता राजा सुबल की मृत्यु के बाद गांधारराज बना। दुर्योधन के हित के लिए इसी द्यूतविद्या के धूर्त आचार्य शकुनि ने अपनी कुटिलता और द्वेष की आग से समूचे कुरुवंश का ही विनाश करवा दिया।

गांधार के पड़ोस में ही **मद्र** राज्य था। महाभारत तथा पाणिनि आदि द्वारा वर्णित **वाह्लीक** को मध्य पंजाब माना जाता है। **मद्र** अर्थात् **माद्रेय** के नाम से विख्यात जनपद उत्तरी पंजाब था, जिसकी राजधानी **शाकल** थी। यही आधुनिक स्यालकोट है। बहुत बाद में **वाह्लीक** अर्थात् ग्रीक **बैक्ट्रिया** के नाम से विख्यात स्थान वर्तमान **बल्ख** में बसे यवनों ने भारत में पंजाब के कुछ भाग को जीता और **मद्र** के नगर **शाकल** को ही राजधानी बनाकर वे भरतखंड के **मध्यदेश** की ओर विस्तार करने का, एक सीमा तक, सफल उद्योग भी करते रहे।[1]

इस क्षेत्र के पड़ोस में ही **केकय** नामक सुविख्यात जनपद था जहां के राजा अश्वपति प्राचीनकाल में अपनी विद्वत्ता तथा ब्रह्मज्ञान के लिए ब्राह्मण ऋषियों द्वारा भी पूजे जाते थे। इसी **केकय** में रामायण की सुविख्यात रानी कैकेयी का जन्म हुआ था, जिसने दशरथ से राम के वनवास का 'वर' मांगा था। महाभारत के अनुसार, **मत्स्य** देश के राजा विराट की पत्नी सुदेष्णा भी संभवतः इसी क्षेत्र की रही होगी। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है, क्योंकि विराट की वह रूपगर्विता रानी सुदेष्णा 'सूतराज केकय' की पुत्री कही गई है। इन्हीं सूतराज केकय के पुत्र का नाम था कीचक, जो अज्ञातवास के समय मत्स्य जनपद में पांडवों की महारानी द्रौपदी पर आसक्त होकर उसके लिए घोर यातना का कारण बना था। (देखिए—'पांचाली')

राजा विराट का **मत्स्य** राज्य वर्तमान **अलवर** के क्षेत्र में था और उनकी राजधानी **विराटपुरी** का अवशेष भी **अलवर** जनपद में **बैराट** के नाम से मौजूद है। अब तो उसका नामकरण **विराटनगर** ही कर दिया गया है।

हस्तिनापुर आज तो आधुनिक **मेरठ** के पंद्रह-बीस मील पश्चिम में मात्र एक गांव के रूप में स्थित है, किंतु गंगातट पर बसा **हस्तिनापुर** उस युग के विशाल शक्तिशाली राज्य **कुरुजांगल** जनपद की राजधानी था और निश्चय ही महाभारत का केंद्र-स्थल रहा। वहां कुरुओं का समर्थ वंश बहुत समय तक राज्य करता रहा। पांडवों को उसके बदले में आधा राज्य वर्तमान **इंद्रप्रस्थ** (दिल्ली) का **खांडवप्रस्थ** नामक वनप्रदेश दे दिया गया था। उस वन को प्राचीन आर्यपद्धति से ही जलाकर पांडवों ने यहां अपने शक्तिशाली राज्य की राजधानी **इंद्रप्रस्थ** पुरी को स्थापित किया था।

इंद्रप्रस्थ के किंचित दक्षिण और पूर्व की दिशा में **मध्यदेश** के अत्यंत शक्तिशाली और उस युग के सबसे प्रभावशाली राज्यों में से एक था—**पंचाल**। यह उस क्षेत्र में बसा

---

[1] देखिए, लेखक का उपन्यास 'सेनापति पुष्यमित्र' (दो खंड)

था, जहां आज **फर्रुखाबाद, कन्नौज** तथा **बरेली** जनपद हैं। इसी **पंचाल** की राजकन्या महासुंदरी द्रौपदी के कारण ही महाभारत का भीषण संग्राम हुआ था—यह कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। पांचाली ही वास्तव में महाभारत समर के लिए हेतु बन गई।

इंद्रप्रस्थ के दक्षिण में उस युग का एक और समर्थ जनपद था—**शूरसेन**। यह क्षेत्र उस युग के सबसे शक्तिशाली यादवगण का केंद्र था। यादवों ने एकतंत्र शासन को त्यागकर गणसंघ बना लिया था और गण-शासन की स्थापना की थी। उनमें वृष्णि, अंधक, कुक्कुर, भोज आदि अनेक यादव कुल सम्मलित थे। इसी प्रदेश के आदिपुरुष राजा शूरसेन की पुत्री थीं—कुरुराज पांडु की पत्नी पृथा अथवा कुंती। उनके ही भाई थे वसुदेव। वसुदेव का विवाह यादवों के महानायक उग्रसेन के अनुज राजा देवक की पुत्री देवकी से हुआ था। और देवकी-वसुदेव के ही पुत्र थे उस युग के महानायक जनार्दन कृष्ण, जो अपने आचार-व्यवहार तथा पराक्रम के साथ ही अपनी बहुरंगी जीवन-शैली के कारण युग के अत्यंत लोकप्रिय नायक थे। अपने जीवनकाल में ही वासुदेव कृष्ण आख्यानों के लोकनायक बन गए थे। अंततः उनको स्वयं 'विष्णु' अथवा 'नारायण' के सबसे लोकप्रिय अवतार के रूप में मान्यता मिली। आज भी उनके द्वारा उद्घोषित 'गीता-ज्ञान' को परमज्ञान का आधार माना जाता है।

उग्रसेन के पुत्र कंस ने महत्त्वाकांक्षावश अपने पिता तक को बंदी बनाकर **मथुरा** पर फिर से एकतंत्र—राजतंत्र—स्थापित कर लिया था। अंत में कृष्ण ने उसका वध करके यादवगण को मुक्त किया। किंतु **मगधराज जरासंध** ने अपने जामाता कंस का वध करनेवाले कृष्ण और यादवों से घोर वैर ठान लिया और उनको यातना पर यातना देने के लिए उसने बार-बार **मथुरा** पर आक्रमण कर-करके उनका जीना दूभर कर दिया। अंततः कृष्ण ने जरासंध के आक्रमणों से बचकर शांत जीवन और उन्नति की कामना से यादवों को **गुजरात** के धुर पश्चिमी **आनर्त जनपद** में ले जाकर **कुशस्थली** में **द्वारवती** अथवा **द्वारका** बसा ली; और वहां रहकर यादवों की शक्ति का इतना विस्तार किया कि यादव गणसंघ युग के सबसे शक्तिशाली तंत्र के रूप में स्थापित हो गया था।

मगध की स्थिति पर विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। **बिहार** में गंगा के दक्षिण स्थित यह जनपद तो महाभारत के बाद के युग में भी भारत का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य रहा। और यहां के अनेक प्रसिद्ध राजवंश भारतीय इतिहास पर अपने अमिट चिह्न छोड़ गए।

इनके अतिरिक्त बार-बार **विदर्भ** का नाम आता रहा है। यह **विंध्य पर्वत-शृंखला** के दक्षिण में **नर्मदा** और **ताप्ती** नाम की सुप्रसिद्ध नदियों के भी उस पार दक्षिण में स्थित था, जहां वर्तमान **बरार** है।

विदर्भ प्राचीन राज्य था और वहां का तत्कालीन राजवंश भी यादवों के कुल से ही संबद्ध था। महाभारत युग में **विदर्भ** की राजदुहिता रुक्मिणी के कारण भी द्वेष का प्रचंड विस्फोट हुआ था। कृष्ण ने विदर्भराज भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी को, उनकी इच्छा के अनुरूप, बरबस हरण करके प्राप्त किया था। इस कारण रुक्मिणी के भाई–विदर्भ के युवराज रुक्मी से उनकी चिरकालीन शत्रुता तो हुई ही, क्योंकि वह रुक्मिणी का विवाह अपने मित्र तथा जरासंध के अनुगत **चेदि** के राजपुत्र शिशुपाल से करना चाहता था और कृष्ण ने इसमें व्यवधान डाल दिया था।

बाद में चलकर तो इसी रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह हुआ था। और दोनों राजकुलों में ऐसे विवाह-संबंध बाद में भी किए जाते रहे।

चेदि भी उस युग का बहुत प्रसिद्ध राज्य था। और **अवंति** भी उस युग का विख्यात जनपद था जो आधुनिक **उज्जैन** ही था। **सरयू** के तट पर बसा **कौसल** राज्य तथा **गोमती** और **गंगा** के बीच स्थित **काशी जनपद** भी उन दिनों विख्यात थे। **मिथिला** आधुनिक **मिथिला** ही थी जो **विदेह जनपद** के नाम से विख्यात थी। गंगा के दक्षिण में **मगध** स्थित था और इन दोनों के पूर्व की ओर था **अंग** जनपद, जिसकी राजधानी थी **चंपा** (आधुनिक **भागलपुर**।)

महाभारतकार को सुदूर दक्षिण में स्थित **वनवासी जनपद** का भी ज्ञान था। और कहा गया है कि **वनवासी राज्य** भी यदुकुल के ही एक राजवंश का था।

इनके अतिरिक्त कितने ही पर्वत, नदियों तथा स्थानों–सहस्रों तीर्थों आदि के विवरण महाभारत में मिलते हैं। प्रस्तुत शृंखला के उपन्यासों में संबंधित स्थानों आदि का भौगोलिक परिचय यथास्थान दिया गया है, जिससे पाठकों को किसी स्थान के विषय में पूरी जानकारी मिलती जाएगी। ये कुछ ऐसे स्थान थे, जिनकी वर्तमान पहचान बताने से कथा को सहज ही ग्रहण करने में सुविधा होगी, इस कारण यहां संक्षेप में इनका परिचय दे दिया गया है।

महाभारत की इन गरिमामयी नारियों का समग्र परिचय उपन्यासों के रूप में प्रस्तुत किया गया है, अतः कथा की दृष्टि से रोचकता बनाए रखने के लिए कहीं-कहीं कुछ काल्पनिक प्रसंगों का भी उपयोग किया गया है, किंतु इसका ध्यान रखा गया है कि ऐसे प्रसंग किसी स्थापित तथ्य को स्पष्ट करने के लिए ही हों। मूल कथा के स्वरूप के उद्घाटन में सहायक बनाने के लिए ही ऐसे कथा-संयोजन किए गए हैं–महाभारत के चरित्रों में

किसी प्रकार का परिवर्तन करने के उद्देश्य से नहीं; क्योंकि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि हम उन स्थापित चरित्रों का मूल स्वरूप ही प्रस्तुत कर रहे हैं—उनकी औपन्यासिक पैरोडी नहीं।

कहीं-कहीं तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का वास्तविक रूप दिखाने के लिए ही किसी कथात्मक प्रसंग का संयोजन किया गया है, अन्यथा नहीं।

इन उपन्यासों में **गंधर्व, किन्नर, यक्ष-राक्षस, अप्सरा** आदि **देव योनि** की कही जाने वाली संस्कृतियों का भी वर्णन भी आया है। उनकी संस्कृति और सभ्यता का विवेचन करने के लिए कहीं-कहीं कुछ इतर चरित्रों का विकास किया गया है, किंतु इसका ध्यान रखा गया है कि वे मूल महाभारत में वर्णित प्रसंगों के अनुरूप ही हों।

मूल ग्रंथ में इन चरित्रों के साथ उनको असामान्य बनाने के उद्देश्य से अथवा उनको विशेष गरिमा प्रदान करने की इच्छा से कई असंभव पौराणिक कल्पनाओं का सहारा लिया गया है। हमने उनका भी कथा में समावेश किया है, हां उनका वर्णन ऐसे किया गया है कि वे पाठकों को सहज ही ग्रहणीय हों। स्वयं महाभारतकार ने भी उन **देवजातियों** का उपयोग प्रायः ऐसी ही सहजता से किया है, जैसे अज्ञातवास के समय पांचाली द्वारा अपने पतियों को 'पांच बलशाली गंधर्व' कहा गया है। और भीम कई बार 'महाबली गंधर्व' के रूप में पांचाली की रक्षा के लिए आते भी रहे हैं। यही स्पष्ट कि गंधर्व आदि भी सहज मानव जैसे ही थे और उनको अलौकिकता उनके 'अमानवीय'-से प्रतीत होने वाली कुछ विशेषताओं—रूप, गुणों, संस्कारों तथा पराक्रम के कारण मिली थी।

'...मैं प्रतापी द्रुपद की पुत्री हूं...यज्ञ से जन्म लेने वाले महापराक्रमी पांचाल योद्धा धृष्टद्युम्न की अनुजा हूं...पृथ्वी को जीतकर राजसूय यज्ञ करने वाले अपराजेय भरतवंशी पांडवों की महारानी हूं...कुल-शील तथा पराक्रम के लिए विख्यात कुरुकुल की महामाननीया वधू हूं और यादवकुल के शिरोमणि आप जैसे परमशक्तिशाली लोकनायक वासुदेव कृष्ण की अनन्य सखी हूं...फिर भी उस भरी हुई राजसभा में केश पकड़कर मुझे घसीटा गया, किसी हीन दासी की भांति अनाथ समझकर मेरे पवित्र अंगों का स्पर्श किया गया...मैं रजस्वला थी...एकवसना थी...उस स्थिति में भी मुझे निर्वस्त्र किया जाने का जघन्य प्रयास किया जा रहा था...और यह सब तब हो रहा था जब उस सभा में मेरे पांचों पति उपस्थित थे और कुल के एक से बढ़कर एक पराक्रमी पुरुष भी वहीं बैठे थे! उस समय किसी ने मेरी रक्षा नहीं की। पापी दुर्योधन मेरा अपमान करता रहा और नीच दुःशासन हर प्रकार से मेरी मर्यादा का हरण करने पर तुला रहा...'

यही थी पांचाली!

शक्ति, गौरव, गरिमा और मर्यादा की पराकाष्ठा-सी; तो भी मानवता के समग्र इतिहास में संभवतः द्रौपदी जैसी कोई ऐसी स्त्री नहीं, जिसे ऐसी-ऐसी यातनाएं झेलनी पड़ी हों और अपमान की आग में झुलसते हुए ही, जीवन के लंबे तेरह वर्ष अपनी वेणी को खोलकर बिताने पड़े हों।

पंचाल के राजा द्रुपद को द्रोणाचार्य की आज्ञा से पांडवों ने बंदी बनाकर अपने गुरु के समक्ष उपस्थित कर दिया था और द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद का आधा राज्य छीनकर उनको दंडित किया था। आचार्य द्रोण द्वारा किए गए अपमान से विह्वल द्रुपद उनका पराभव करने वाले पुत्र पाने की कामना से वर्षों भटकते रहे। अंत में पंचालराज ने कल्माषी के महातपस्वी याज और उपयाज को ऋत्विज मानकर एक विशेष यज्ञ करवाया। उसके माध्यम से उन्हें द्रोणाचार्य का हंतपुत्र धृष्टद्युम्न प्राप्त हुआ। उसी यज्ञ से कृष्णा नामक एक महासुंदरी कन्या भी प्राप्त हुई थी—वही थी पांचाली द्रौपदी।

यद्यपि अपने गुरु के आदेश से अर्जुन ने ही राजा द्रुपद को बंदी बनाया था तो भी उसके पराक्रम और शालीन व्यवहार के कारण अर्जुन से द्रुपद बहुत प्रभावित हो गए। उनकी कामना थी कि अपनी महासुंदरी पुत्री द्रौपदी का विवाह वह अर्जुन से ही करें। किंतु सहसा ही सूचना मिली कि अर्जुन आदि पांडव वारणावत में अपनी अंबा कुंती सहित अग्निकांड में भस्म हो गए। हताश द्रुपद ने पांचाली का स्वयंवर रचाया। और संयोग ऐसा रहा कि उसमें निर्धारित असंभवप्राय लक्ष्य को बेधकर अंततः अर्जुन ने ही द्रौपदी को प्राप्त किया।

माता कुंती के आदेश के कारण संयोग से पांचाली को पांचों पांडवों की पत्नी बनकर आना पड़ा।

वह पूरी निष्ठा से अपने पतियों के साथ कुल की मर्यादा के अनुसार जीवन बिताती रही। समय बदला और एक दिन खांडव जैसे दुर्गम वन का राज्य पाने पर भी अपने उद्योग एवं वासुदेव कृष्ण के सहयोग से पांडवों ने अपना शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया। उन्होंने राजसूय यज्ञ किया। दिग्विजय में भी उन्हें अपार वैभव प्राप्त हुआ था। कौरव दुर्योधन उनका यह उत्कर्ष सहन नहीं कर पाया। अपने मातुल—गांधार के शकुनि के साथ षड्यंत्र रचकर उसने अपने पिता राजा धृतराष्ट्र को विवश किया और पांडवों को जुआ खेलने के लिए बुलवाया।

कपट-द्यूत में परास्त होकर पांडवों को दास तक बन जाना पड़ा, फिर उनकी प्रिया पांचाली को भी घोर अपमान सहना पड़ा। पांचाली बार-बार रक्षा के लिए गुहार लगाती रही, पर सभा में सन्नाटा छाया रहा। दुर्योधन के कहने पर दुःशासन पांचाली

को बरबस केश पकड़कर राजसभा में घसीट लाया। रजस्वला होने के कारण पांचाली ने उस समय तन पर मात्र एक वस्त्र धारण कर रखा था। सभा में उसको निर्वस्त्र करने की चेष्टा की जाती रही। दुर्योधन के भय से सभी चुपचाप उसकी यह दुर्दशा देखते रहे। उस समय पांचाली की वेणी खुली थी। उसने प्रतिज्ञा की कि अब इन केशों को तभी बांधेगी जब पापी दुःशासन के रक्त से उनको सींचा जाएगा। उसने कौरवों को और भी भयंकर शाप दिए। वासुदेव कृष्ण की दुहाई देने पर ही उसकी लज्जा की रक्षा हो सकी। गांधारी और विदुर द्वारा बार-बार चेतावनी देने पर अंत में धृतराष्ट्र डर गए और उन्होंने पांचाली को शांत करने के लिए उसे वर मांगने को कहा।

उस अवस्था में भी पांचाली ने मात्र यही वर मांगा कि राजा युधिष्ठिर को दासता से मुक्त कर दिया जाए।

वह संतुष्ट नहीं लगी, अतः राजा ने दूसरा वर मांगने को कहा। इस बार पांचाली ने समस्त आयुधों के साथ अपने सभी पतियों की मुक्ति मांगी।

राजा धृतराष्ट्र ने फिर तीसरा वर मांगने को कहा। वह किसी प्रकार पांचाली की क्रोधाग्नि को शांत करना चाहते थे, किंतु स्वाभिमानिनी पांचाली ने कहा, "मुझे तीसरा वर नहीं चाहिए। मेरे पराक्रमी पति अपने पराक्रम से ही फिर सब कुछ प्राप्त कर लेंगे।"

पांचाली की इस गरिमा से प्रभावित कर्ण ने भी उसकी सराहना की।

एक बार मुक्ति पाने पर भी दुर्योधन के हठ के कारण राजा धृतराष्ट्र ने फिर से युधिष्ठिर को द्यूत का आमंत्रण दिया। इस बार कुटिल शकुनि ने मात्र राज्य को दांव पर लगवाया—निश्चय यह रहा कि जो इस दांव में हारेगा, उसको बारह वर्ष तक बनवास करना होगा और तेरहवां वर्ष अज्ञातवास में बिताना होगा। अज्ञातवास के समय यदि पहचान लिए गए तो फिर उन्हें बारह वर्ष तक वनवास भुगतना होगा। एक प्रकार से यह पांडवों को सदा-सदा के लिए राज्य से निर्वासित कर देने की कूट-युक्ति थी!

दुर्भाग्य ने पांडवों का सब कुछ हरण कर लिया और वे बारह वर्ष के लिए वनवास करने चले गए। उस समय बहुत आग्रह करने पर भी पांचाली अपने पिता के यहां न जाकर पतियों का साथ देने के लिए अडिग रही। मात्र पांचाली ही ऐसी थी, जिसने अपने पतियों के साथ वनवास का दुस्सह दुःख सहन करने निश्चय किया।

जीवन में कितने ही ऐसे प्रसंग आए जिनमें द्रौपदी को ही सबसे अधिक कष्ट उठाने पड़े। अपने विख्यात रूपयौवन के कारण कई बार कामुक राजाओं और राक्षसों द्वारा पांचाली का अपहरण करने का प्रयास किया जाता रहा। कीचक जैसे दुरात्मा ने भी उसकी लज्जा का हरण करना चाहा, पर किसी

प्रकार भीम का आश्रय लेकर पांचाली बचती ही रही। जीवन-भर कितनी ही यातनाएं सहती पांचाली अपनी ओर से अवसर पाते ही युधिष्ठिर से क्षत्रिय-धर्म अपनाकर अपमान का प्रतिकार करने का आग्रह करती रहती और सदा उनसे तर्क-वितर्क भी करती। किंतु अपने साथ भीम, नकुल और सहदेव की सहमति होने पर भी उसने कभी युधिष्ठिर का अपमान नहीं किया और उनकी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए स्वयं घोर अपमान और यातनाएं भी झेलती ही रही।

किंतु उस स्वाभिमानिनी क्षत्राणी को युधिष्ठिर की ओर से प्रस्तुत कौरवों के साथ संधि का प्रस्ताव नहीं भाया। वह सदा उसका विरोध करती रही और जब भीम ने भी भाई की आज्ञा मानकर संधि के लिए कृष्ण के हस्तिनापुर जाने का अनुमोदन कर दिया तो पांचाली आकुल होकर स्वयं कृष्ण को ही अपनी वेणी दिखाती हुई बोली, 'केशव इन केशों को आज तेरह वर्ष से मैंने बांधा नहीं। मेरी प्रतिज्ञा तो आपको याद रहेगी न! मेरे इन केशों को याद करके ही संधि करना...'

कृष्ण नीतिज्ञ थे। उनको विश्वास था कि कुलांगार दुर्योधन और स्वयं राजा धृतराष्ट्र पांडवों के राज्य के लोभ में आकंठ हैं और कदापि संधि नहीं करेंगे, अत: उन्होंने पांचाली को आश्वासन दिया था, 'तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होकर, रहेगी। जिन कौरवों ने तुम्हारा अपमान किया है, अब समय आ गया है कि उनकी लोथों पर इसी तरह वेणी खोलकर उनकी पत्नियां विलाप करेंगी... और उनकी खुली हुई वेणी फिर कभी बंधेगी नहीं...'

कौन जाने कि यदि कौरवों ने संधि कर ही ली होती तो पांचाली और कृष्ण की प्रतिज्ञा का क्या होता! किंतु कितने ही प्रसंग ऐसे हैं, जब पांचाली अपूर्व धैर्य प्रदर्शित किया है। जयद्रथ काम्यक वन से बलपूर्वक उसका अपहरण करके भाग रहा था, तब द्रौपदी ने उसका वध करवा देने की प्रतिज्ञा की थी, किंतु अंत तक जब भीम जयद्रथ को पकड़कर बांध लाए तो युधिष्ठिर और अर्जुन अपनी ही भगिनी दु:शला का पति होने के कारण उसे दास बना देने के बाद जीवित ही छोड़ देना चाहते थे। तब द्रौपदी ने भी उसको जीवित ही छोड़ने का समर्थन किया और दासता से भी मुक्त करके जाने दिया था।

इसी प्रकार युद्ध समाप्त हो जाने पर जब पांडव-शिविर में सब अचेत सो रहे थे तो द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए पांचालों और पांडवों के शिविर में चुपचाप प्रवेश करके द्रौपदी के मातृकुल के सभी पांचालों का संहार कर दिया। उसने द्रौपदी के भ्राताओं धृष्टद्युम्न तथा शिखंडी जैसे प्रतापी योद्धाओं को भी मार डाला। फिर पांडवों से उत्पन्न द्रौपदी के पांचों पुत्रों की भी सोते समय हत्या कर डाली। विलाप करती पांचाली ने

अर्जुन और भीम से उस आततायी को मार डालने की आक्रोश-भरी याचना की थी। किंतु फिर अश्वत्थामा जैसे नृशंस अपराधी को भी द्रौपदी अंत में उस पर तरस खाकर उसे जीवित ही छोड़ देने पर सहमत हो गई थी।

अपनी उदारता और अप्रतिम धैर्य के कारण पांचाली का चरित्र इतना उदात्त हो जाता है कि महाभारत की विभीषिका का मूल कारण द्रौपदी ही थी, फिर भी उसके प्रति मान एवं मोह का भाव बना रहता है।

अंत में द्रौपदी को सूचना मिली कि द्वारका में घोर गृहयुद्ध हो गया है और यादव योद्धा एक-दूसरे का संहार कर रहे हैं, तो उसने अर्जुन से तत्काल द्वारका जाकर वासुदेव कृष्ण को अपने साथ ही ले आने का आग्रह किया।

किंतु अर्जुन के पहुंचने तक सब कुछ समाप्त हो चुका था।

कृष्ण के महाप्रस्थान का संवाद पाते ही मानो पांडवों की जिजीविषा ही मर गई। स्वयं पांचाली भी अवसन्न-सी होकर जीवन से विरक्त हो गई। अपने पौत्र सुभद्रा नंदन अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजसिंहासन पर अभिषिक्त करके पांडवों ने जीवन का त्यागकर देने के लिए हिमालय की ओर प्रस्थान कर दिया। स्वयं पांचाली भी पतियों के साथ अंतिम क्षण जीने के लिए चल पड़ी। और अंत तक वे सभी हिमालय में ही चिरसमाधि में लीन हो गए।

पतियों की सहधर्मिणी पांचाली ने अंतिम पल भी अपने पतियों के साथ ही बिताया था।

—सुशील कुमार

बी-193, अशोक नगर,
शाहदरा, दिल्ली-110093

पांचाली

उस युग तक पंचाल देश मध्यदेश का विख्यात राज्य हो चुका था और पांचाल क्षत्रिय अपने पराक्रम तथा संस्कृति के लिए सारे भरतखंड में महत्त्वपूर्ण माने जाने लगे थे। किंतु पिछले कुछ समय से पंचाल के सृंजय और सोमकवंशी क्षत्रियों को एक अपमान सालता ही रहता था। पांचालराज द्रुपद अपने पराक्रम तथा नीतिप्रियता एवं कुलीन संस्कारों के लिए प्रसिद्ध थे, किंतु उनको कुछ ही दिन पहले एक शस्त्रोपजीवी ब्राह्मण से विचित्र ढंग से पराजित होकर अपना आधा राज्य गंवाना पड़ा था और अब वह केवल गंगा के दक्षिणी तट की ओर बसे पंचाल के ही राजा रह गए थे। उत्तर-पंचाल पर कुरु राज्य के राजपुत्रों के आचार्य द्रोण ने अधिकार कर लिया था और स्वयं अहिच्छत्रा को राजधानी बनाकर उसका शासन करने लगे थे।

इस संघर्ष का एक बड़ा ही रोचक इतिहास है— बहुत पहले की बात है। उस समय पंचाल पर पृषत् नामक पराक्रमी राजा राज्य करते थे। उन्हीं के पुत्र थे द्रुपद। यह उस समय की घटना है, जब द्रुपद की अवस्था अधिक नहीं थी। वे महर्षि अग्निवेश के आश्रम पर जाकर धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

द्रोण महर्षि भरद्वाज के पुत्र थे और उन्हीं की भांति धनुर्वेद में पारंगत होने की चेष्टा कर रहे थे। वह एकनिष्ठ होकर अपनी विद्या का आचार्य बनने का प्रयास करते रहे।

महर्षि भरद्वाज स्वयं धनुर्वेद के ज्ञाता थे, किंतु वह अपने पुत्र को धनुर्वेद का अप्रतिम आचार्य बनाना चाहते थे, अतः उन्होंने कुछ ज्ञान देने के उपरांत द्रोण को अपने परम मित्र और उस युग में धनुर्वेद के महान आचार्य अग्निवेश के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज दिया था। उन्हीं दिनों पंचाल के सोमकवंशी राजा पृषत् के राजपुत्र भी महर्षि अग्निवेश से ही शिक्षा प्राप्त करने वहीं आए। द्रोण और द्रुपद की गहरी मित्रता हो गई। दोनों हर समय एक साथ ही रहते। साथ ही साथ क्रीड़ाएं करते और साथ ही साथ अध्ययन भी। वे युवावस्था में प्रवेश कर रहे थे और परम शक्तिशाली थे तथा धनुर्विद्या के कौशल में भी निष्णात थे। द्रोण के प्रति द्रुपद का व्यवहार अत्यंत उदारता और गहन मैत्री का ही रहा।

एक दिन दोनों भावी जीवन के विषय में बातें कर रहे थे तो द्रुपद ने द्रोण

को आलिंगन में भरकर मधुर स्वर में कहा, ''सखे, मैं पांचालराज श्री पृषत् का परम प्रिय पुत्र हूं। जब वह पंचाल के राजपद पर मेरा अभिषेक करवा देंगे और मैं राज्य का शासन संभाल लूंगा तो मेरा राज्य तुम्हारे उपभोग के लिए सदा प्रस्तुत होगा। मेरे समस्त भोग, वैभव और ऐश्वर्य-सुख पर मेरे समान ही तुम्हारा पूरा अधिकार होगा। सब तुम्हारे अधीन ही रहेंगे।''

अस्त्रविद्या में निष्णात होने के बाद उन दोनों मित्रों ने एक साथ गुरु की आज्ञा से आश्रम से विदा पाई। उस समय भी द्रुपद ने हर प्रकार से मित्र का सम्मान किया और अक्षुण्ण मैत्री का विश्वास दिलाकर उनसे विदा ली।

महर्षि भरद्वाज का परलोकगमन हो जाने पर द्रोण पिता के ही आश्रम में रहते हुए तपस्या करते रहे। धनुर्वेद के साथ ही उन्होंने वेद-वेदांगों का भी अध्ययन किया और उसमें भी निष्णात हो गए। उनकी विद्वत्ता तथा शस्त्रज्ञान के कारण उनका यश चारों ओर फैल गया था। कुछ समय के बाद उन्होंने महर्षि शरद्वान गौतम की पुत्री शुभांगिनी कृपी से विवाह कर लिया। वह कुरुराज्य के कुल गुरु कृपाचार्य की बहन ही थी।

अपने पिता के आश्रम में रहते हुए ही द्रोणाचार्य धनुर्वेद के अभ्यास में निरंतर लगे रहते। अगले ही वर्ष कृपी ने एक हृष्ट-पुष्ट पुत्र को जन्म दिया। वह देखने में अत्यंत बलिष्ठ लगता था, और रोदन करता तो लगता मानो कोई बल्ष्ठि अश्व हींस रहा हो। इस विशेष लक्षण के कारण उसका नाम ही रख दिया गया— अश्वत्थामा।

कुछ समय पश्चात द्रोण को पता लगा कि महेंद्रगिरि पर आश्रम बनाकर रहने वाले महर्षि परशुराम इन दिनों विशेष अनुष्ठान कर रहे हैं और उसमें अपना सर्वस्व दान करने वाले हैं। परशुराम के विषय में द्रोणाचार्य को ज्ञात था कि महेंद्रगिरि के आश्रम पर अतुल संपदा एकत्र हो जाती है और महर्षि परशुराम समय-समय पर ऐसे यज्ञ-अनुष्ठान आदि करते ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त परशुराम के विषय में यह तो विख्यात ही था कि वे सर्वज्ञ तथा समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं। उनको संपूर्ण धनुर्वेद तथा दिव्यास्त्रों का भी ज्ञान है।

द्रोणाचार्य ने महर्षि परशुराम से उन दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से महेंद्रगिरि की यात्रा की और जाकर महर्षि को प्रणाम किया। बोले, ''पूज्य, मेरा जन्म आंगिरस गोत्र में हुआ है। मैं महर्षि भरद्वाज का पुत्र द्रोण हूं और आपके यश तथा अनुष्ठान की ख्याति सुनकर धन प्राप्त करने की इच्छा से ही यहां आया हूं।''

महर्षि परशुराम ने कहा, ''द्विजश्रेष्ठ, आपका स्वागत है। अपनी इच्छा से मुझे अवगत कराइए।''

द्रोण बोले, ''तपोधन, मैं आपके पास ऐसा धन पाने की इच्छा से आया हूं, जिसका कभी अंत ही न हो।''

परशुराम किंचित संशय में पड़कर बोले, ''भरद्वाजनंदन, मेरे पास तो जो भी सुवर्ण-रत्न आदि धन था अथवा जितनी पृथ्वी थी, उसे तो मैं अब दान कर चुका हूं। आप समय पर नहीं पधारे। अब तो मेरा यह शरीर है, मेरे प्राण हैं और मेरे पास अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान मात्र बचा है। आपको मैं क्या दूं?''

द्रोण को तो वास्तव में इसी की कामना थी। उन्होंने महर्षि से प्रयोग, रहस्य तथा संहार विधि सहित, अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान ही देने का अनुरोध किया।

'तथास्तु' कहकर भगुनंदन परशुराम ने द्रोण को संपूर्ण अस्त्रों के साथ-साथ व्रत तथा रहस्य सहित संपूर्ण धनुर्वेद का उपदेश भी किया।

भार्गव परशुराम से दिव्यास्त्रों का ज्ञान पाने के बाद द्रोण अपने समय के उन महान धनुर्वेदाचार्यों में हो गए थे, जिनको अनेक दिव्यास्त्रों का भी ज्ञान था। उनका सामना करने वाला कोई ही विरला आचार्य होगा। किंतु इस ज्ञान को पाने के बाद वह न तो धनोपार्जन के निमित्त किसी की सेवा करना चाहते थे, न इतने संपन्न थे कि आश्रम में ही रहकर उसका सदुपयोग अपने योग्य शिष्यों को ज्ञान देने में कर पाते। वह विपन्न स्थिति में यहां से वहां डोलते रहते थे। उनकी पत्नी गौतमी कृपी हर प्रकार से उनका साथ देती थी। वह जितना पाती उसी में परिवार का पालन करती। उनका पुत्र अश्वत्थामा अब बड़ा हो चला था। वह अब प्राय: अन्य ऋषिकुमारों के साथ खेलता रहता। एक दिन उसी के कारण द्रोणाचार्य को विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ा।

गोधन के धनी ऋषियों के बालक अपने-अपने घरों में गाय का दूध पीने लगे, तब अपने कुटीर पर लौटकर अश्वत्थामा ने भी अंबा से गाय का दूध पीने को मांगा। कृपी विकल हो उठीं। उनके पास अपनी गाय तो थी नहीं, सो वह तरह-तरह से बालक को बहलाने का प्रयास करने लगीं, किंतु अश्वत्थामा ने हठ पर अड़कर रोना आरंभ कर दिया।

उसका मचलना देखकर द्रोणाचार्य व्याकुल हो उठे। उन्होंने मन में सोचा कि यदि मैं किसी से ऐसे ही गाय मांगता हूं तो हो सकता है कि उसके अग्निहोत्र के कार्य में बाधा आ जाए। अत: किसी ऐसे व्यक्ति से ही गाय का दान मांगना उचित होगा जिसके पास पर्याप्त गोधन हो। उन्होंने इस विचार से भटकना शुरू कर दिया, किंतु संयोगवश वे बहुत प्रयास करने पर भी कहीं से कोई दुधारू गाय नहीं पा सके। लौटकर देखा कि उनके बेटे को कई बालक आटे का पानी लेकर ललचा रहे हैं। वह अश्वत्थामा को पानी में आटा घोलकर

पिला रहे थे और उनका अबोध बच्चा आटे के पानी को ही पीकर नाचता हुआ कह रहा था, 'मैंने दूध पी लिया...मैंने दूध पी लिया...'

यह दृश्य उनसे सहा नहीं गया। आंखें भर आईं। ऐसे ज्ञान का क्या लाभ कि अपने छोटे से अबोध बालक को दूध तक नहीं दे सकते!

उनका नन्हा-सा अबोध बालक आटे के पानी को पी-पीकर अब भी नाचता हुआ, 'दूध पी लिया' की रट लगाए हुए था। यह देखकर द्रोणाचार्य का स्वाभिमान भी डगमगा गया। ऋषियों के बालक बार-बार अश्वत्थामा को आटे का वही घोल पिलाकर उसका उपहास कर रहे थे। द्रोणाचार्य की आंखों में पानी भर आया। वह अपने को कोसने लगे—धिक्कार है ऐसे पिता को जो धनहीनता के कारण अपने नन्हें से पुत्र को इस प्रकार तरसाता है।

द्रोणाचार्य के पुत्र की यह गति देखकर और लोग भी उनकी आलोचना करते और उनको धनोपार्जन का प्रयास न करते देख उनकी निंदा करते थे। द्रोण को चारों ओर से अपनी निंदा सुनने को मिलती रहती थी।

क्षोभ से जलते द्रोण को तब सहसा ही अपने मित्र द्रुपद की याद आई। अब तो द्रुपद स्वयं ही पंचाल राज्य के अधिपति हैं, उन्हें अपनी मित्रता तथा अपनी बातें तो याद होंगी ही।

इसी विचार से वह राजा द्रुपद के पास पहुंचे और सीधे राजसभा में उनके पास जाकर बोले, "सखा द्रुपद, मैं द्रोण तुम्हारे पास विशेष उद्देश्य से आया हूं।"

एक दीनहीन ब्राह्मण के मुंह से अपने लिए 'सखा' शब्द का उच्चारण पांचालराज द्रुपद को अपमान जैसा लगा। वह कुपित होकर बोले, "विप्र, तुम्हारी बुद्धि तो सर्वथा संस्कारहीन और अपरिपक्व जान पड़ती है। तभी तो तुम धृष्टतापूर्वक मुझसे कह रहे हो कि तुम मेरे सखा हो। तुमको ज्ञात होगा कि मित्रता सदा समान स्तर के व्यक्तियों के बीच ही हो सकती है। किसी प्रतापी राजा के साथ तुम जैसे दीनहीन ब्राह्मण की मैत्री कैसे संभव है! जो स्वयं राजा नहीं है, वह किसी राजा का मित्र कैसे हो सकता है!"

पांचालराज की ऐश्वर्य के मद में डूबी बातें सुनकर द्रोण मन ही मन तिरस्कार अनुभव करते हुए भी उस समय बिना कुछ कहे, किंतु धन के मद में डूबे राजा द्रुपद को उनके इस अपमानजनक व्यवहार की शिक्षा देने का निश्चय करके, चुपचाप वहां से लौट आए। अब अपने आश्रम पर जाकर फिर दीन-हीन तपस्वी का-सा जीवन बिताने की इच्छा उन्हें नहीं रही। देर तक सोचकर कुछ निश्चय करने के बाद वह पंचाल से सीधे कुरुजांगल प्रदेश की ओर चले आए। उनकी धर्मपत्नी गौतमी कृपी के भाई कृपाचार्य उस समय कुरु

राज्य में कुलपुरोहित तथा राजपुत्रों के धनुर्विद्या के आचार्य थे। द्रोण पत्नी सहित आकर कृपाचार्य के आवास में ही छिपकर रहने लगे।

एक दिन उन्हें कुरुराज्य के राजपुत्रों को खेल-खेल में ही धनुर्विद्या का चमत्कार दिखाने का अवसर मिल गया। वीटा (गुल्ली) कुएं में गिर जाने से दुखी राजपुत्रों को देखकर उन्होंने अपने बाण से पल मात्र में कुएं में गिरी वीटा निकाल दी। उन राजपुत्रों ने द्रोण अनुरोध किया कि आप हमारे साथ चलकर हमारे गुरु कृपाचार्य से मिलिए और उनके साथ ही हमारे आचार्य बनकर अपनी विद्या का दान हमें कीजिए।

किंतु द्रोणाचार्य ने हँसकर कहा, ''तुम लोग जाकर इस घटना के विषय में अपने पितामह आर्य भीष्म को बताना। कदाचित वह मुझे जानते हों। तब जैसा होगा, देखा जाएगा।''

राजपुत्रों से उस श्याम वर्ण के विचित्र ब्राह्मण के विषय में सुनते ही भीष्म समझ गए कि ऐसा पारंगत धनुर्धर ब्राह्मण कौन हो सकता है। वह तत्काल उन राजपुत्रों के साथ ही द्रोण के पास गए और अनुरोध करके उन्हें राजपुत्रों को विशेष स्तर पर अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देने के लिए अपने साथ ही ले आए। उन्होंने आदरपूर्वक आचार्य द्रोण को राजपुत्रों का आचार्य नियुक्त कर दिया और उनके लिए राजा धृतराष्ट्र से कहकर सारी सुख-सुविधा का प्रबंध करवा दिया। इतना ही नहीं, अपने ज्ञान तथा नीति-निपुणता के कारण द्रोणाचार्य को राजसभा में भी अत्यंत योग्य मंत्री का-सा आदरमान दिया जाने लगा। कुछ ही समय बाद आचार्य द्रोण की सम्मति को वैसा ही सम्मान मिलने लगा जैसा महान् योद्धा भीष्म को कुरु राज्य के संरक्षक के रूप में प्राप्त था। स्वयं भीष्म उनका बहुत आदर करते थे।

दो

समय बीतता गया। एक दिन कुरु राज्य के सभी राजपुत्र शस्त्रास्त्र में निष्णात हो गए। आचार्य द्रोण समय-समय पर स्वयं ही अपने शिष्यों के कौशल और ज्ञान की परीक्षा लेते रहते थे। जब उनको पूर्ण संतोष हो गया कि उनके शिष्य अब पूरी तरह निष्णात हो चुके हैं तो उन्होंने एक विशाल मंडप में अपने शिष्यों के कौशल-प्रदर्शन का सार्वजनिक आयोजन किया।

उनके शिष्यों ने अपने-अपने शस्त्रों का कौशल दिखाकर अपने गुरु की कीर्ति को और भी देदीप्यमान कर दिया। युधिष्ठिर का तोमर का कौशल अद्भुत रहा, तो दुर्योधन और भीम ने अपनी बलिष्ठ काया के साथ-साथ

गदायुद्ध का कौशल दिखाकर अपार यश लूटा। उनका तो कौशल-प्रदर्शन ही वास्तविक युद्ध में बदलता-सा लगा क्योंकि भीम के बल के कारण कौरवों को उससे घोर विद्वेष था। दुर्योधन तो कितनी ही बार भीम को मार डालने के षड्यंत्र भी रच चुका था। दो-दो बार उसने भीम को भोजन में कालकूट विष तक देकर उसकी हत्या करने का प्रयास भी कर डाला था, किंतु संयोगवश दोनों ही बार भीम बच निकला था। इस कारण दुर्योधन और भी पीड़ित रहता था। दूसरी ओर, पांडवों को हर क्षेत्र में आगे निकलता देखकर वह क्षुब्ध रहता था। इसी कारण जब उनको परीक्षा अथवा कौशल-प्रदर्शन के लिए गदायुद्ध दिखाने को कहा गया तो दुर्योधन ने क्रोध में आकर भीम पर शत्रु के समान गहरे-गहरे प्रहार करना आरंभ कर दिया था। उत्तर में महाकोपी भीम भी मरने-मारने को तुल गया था। अनर्थ होते देखकर आचार्य कृप के कहने से आचार्य द्रोण के महाबली तेजस्वी पुत्र अश्वत्थामा ने उन दोनों के बीच खड़े होकर उनको रोक दिया।

नकुल का असियुद्ध भी देखने ही योग्य रहा। और सबसे चमत्कारी कौशल तो अर्जुन ने अपनी धनुर्विद्या के दिखाए। ऐसे-ऐसे विलक्षण कृत्य कि सारी रंगस्थली ही दंग रह गई। उस दिन अर्जुन द्वारा धनुष-बाण से अपने दिव्यज्ञान का प्रदर्शन देखकर सब उसको संसार का एकमात्र महाधनुर्धर कहकर उसकी सराहना करने लगे।

किंतु उसी समय एक विचित्र कांड हो गया। सहसा ही रंगमंडप में प्रवेश करके एक सुदर्शन युवा ने अर्जुन को द्वंद्वयुद्ध के लिए ललकारते हुए कहा, ''यह सब कोई महान कौशल नहीं है। कोई भी दिखा सकता है। और मैं आप लोगों को इसी समय उससे भी अधिक चमत्कारी कार्य करके दिखा सकता हूं।''

और वास्तव में उसने भी अनेक चमत्कार कर दिखाए। फिर उसने अर्जुन को ललकारा, ''यदि तुम अपने को अब भी संसार का एकमात्र धनुर्धर मानते हो तो मुझ कर्ण से द्वंद्वयुद्ध करके सिद्ध करो। जो विजयी होगा, वही श्रेष्ठ माना जाएगा।''

किंतु यह कांड आचार्य द्रोण की दृष्टि से बड़ा भयानक हो गया था। उस समय कुरु राज्य के कुलगुरु कृपाचार्य ने तर्क दिया कि पहले तुम अपना परिचय दो। अर्जुन राजपुत्र हैं और यह रंगस्थली भी राजपुत्रों के शस्त्रकौशल के प्रदर्शन का स्थान है। बिना कुल-गोत्र का परिचय दिए, तुमको अर्जुन से द्वंद्वयुद्ध करने का अधिकार नहीं मिल सकता।

तभी से कर्ण पांडवों का, विशेषकर अर्जुन का घोर शत्रु हो गया।

आचार्य द्रोण की प्रसन्नता के लिए अर्जुन प्रबल पराक्रम करके पांचालराज द्रुपद को युद्ध में परास्त करके बंदी बना ले आए और उनको गुरु के समक्ष खड़ा कर दिया था। द्रोणाचार्य ने पांचालराज का कोई वैसा अपमान नहीं किया। उनसे बोले, ''राजन्, तुमने बाल्यकाल में मेरे प्रति जो उदारता दिखाई थी, मैं आज भी उसी के कारण तुम्हारा आदर करता हूं। तुम्हारी उसी उदारता को याद करके मैं समस्त विद्याओं को अर्जित करने के बाद तुम्हारे पास गया था। उस समय तुमने मुझे अपना मित्र कहने योग्य नहीं समझा। मैं तुम्हारी बात का समर्थन करता हूं और मानता हूं कि मैत्री समान के साथ ही शोभा देती है। इसी कारण मुझे विवश होकर तुम्हारा आधा पंचाल राज्य अपने अधिकार में लेना पड़ रहा है। इस प्रकार हम-तुम दोनों समान होकर सदा-सदा के लिए मित्र बने रहेंगे। आज से तुम केवल गंगा के दक्षिण की ओर के पंचाल के राजा रहोगे। उत्तर-पंचाल का राज्य मेरा रहा। मुझे न तो तुम्हारे प्राण लेने की इच्छा है, न मैं तुम्हारा किसी प्रकार से अपमान ही करना चाहता हूं। हम दोनों सदा मित्र बने रहें...इस संबंध में तुम क्या कहते हो?''

पांचालराज द्रुपद मन ही मन अपने अपमान से अत्यंत क्षुब्ध थे, किंतु उस समय वह चुप ही रहे।

द्रोणाचार्य ने हँसकर कहा, ''पांचालराज, मैंने तुम्हारा मित्र बने रहने की कामना से ही तुम्हारा आधा राज्य लिया है। अब यदि तुम उचित मानते हो तो मुझे अपना मित्र मानो।''

आचार्य द्रोण के व्यवहार को तो किसी भी तरह अनुचित नहीं कहा जा सकता था! द्रुपद बोले, ''ब्राह्मण श्रेष्ठ! आप जैसे पराक्रमी महापुरुषों को ऐसी उदारता ही शोभा देती है। मैं आपके व्यवहार से प्रसन्न हूं और अपनी मित्रता देकर आप मुझे सदा ऐसे ही स्नेहभाव से स्मरण करते रहें, यही कामना करता हूं।''

उसके बाद द्रोणाचार्य ने निश्छल मन से पांचालराज का आदर-सत्कार करके उनको मित्र की भांति ही विदा किया था।

किंतु उस समय की दो बातें राजा द्रुपद के मन में ऐसी धंसीं कि निकाले नहीं निकल सकीं—एक तो द्रोणाचार्य द्वारा युद्ध में उनकी पराजय और दूसरी अपने को पराजित करने वाला पांडव युवा अर्जुन। उन्हें याद आता कि युद्ध करने पर उनको परास्त करके बंदी बनाते समय भी अर्जुन ने उनका किसी भी स्तर पर अपमान नहीं होने दिया था; उनके प्रति अर्जुन मन में पूज्य भाव ही बनाए रहा। उनको बंदी बना लेने के बाद अर्जुन ने जब देखा था कि भीमसेन

अब भी पांचाल योद्धाओं का वध करने में लगे हैं तो वहीं से पुकारकर बोला, "अग्रज, हमने पांचालराज को बंदी बना ही लिया है। पूजनीय गुरु आचार्य द्रोण का आदेश तो इतना ही था। अब अकारण ही पांचालों का वध करने की क्या आवश्यकता! आप युद्ध से निवृत्त हो जाएं, हमें ध्यान रखना चाहिए कि पांचालराज हमारे संबंधी हैं और वे हमारे पिता महापराक्रमी पांडु के मित्र रहे, इस कारण पूजनीय भी हैं। उनका किसी भांति अपमान नहीं होना चाहिए।"

आचार्य से संधि हो जाने के बाद संतप्त मन से पांचाल लौटकर द्रुपद गंगातट के जनपदों—माकंदीपुरी तथा चर्मण्वती नदी के दक्षिण के भूभाग पर शासन करने लगे। अब उनकी नवीन राजधानी कांपिल्यपुरी थी। इस भूभाग पर वह निर्द्वंद्व भाव से राज करने तो लगे, किंतु उनके मन में पराजय और प्रतिकार के लिए क्षोभ बना रहा। आचार्य द्रोण ने कितनी भी उदारता दिखाई हो, किंतु जो कुछ हुआ था, उसे पांचालराज अपने माथे पर कलंक-सा मानते थे। वह पराक्रमी थे किंतु एक दीन-हीन ब्राह्मण ने उनको विवश करके उनका आधा राज्य छीन लिया था और उन पर अपनी उदारता का बोझ भी लाद दिया था। उनको लगा कि जब तक द्रोण कुरु राज्य के साथ हैं तब तक उन्हें परास्त करके अपमान का प्रतिकार तो किया नहीं जा सकता। द्रुपद को लगता था कि द्रोण की सारी शक्ति का आधार वास्तव में उनका ब्रह्मतेज है। ब्रह्मतेज को क्षात्रबल से तो परास्त करना असंभव ही लगता है। द्रोण से उनके अपमान का प्रतिकार करने में न तो उनके योद्धा भाई ही समर्थ हैं, न उनका कोई पुत्र ही इतना बलशाली है कि द्रोण को परास्त करके उनके अपमान का बदला ले। उनका प्रतिकार तो अर्जुन जैसा कोई अतिपराक्रमी ही कर सकता है, किंतु कुरुकुल का वह राजपुत्र तो स्वयं शिष्य होने के कारण आचार्य के अधीन है। तो क्या हो सकता है?

इस बीच अपने प्रतापी शिष्य अर्जुन द्वारा विजय से प्राप्त पंचाल के उत्तरी भूभाग में अहिच्छत्रा को राजधानी बनाकर द्रोण आधे पंचाल पर अपना शासन चलाने लगे थे। रात-दिन संताप से जलते द्रुपद को इसका एकमात्र समाधान यही सूझा कि उनको ऐसा पुत्र प्राप्त करना चाहिए जो आचार्य द्रोण का वध करके उनके अपमान का प्रतिशोध करे। किंतु कैसे?

राजकाज में अब राजा द्रुपद का मन ही नहीं लगता था। रातदिन उनको एक ही चिंता लगी रहती कि किसी प्रकार उन्हें द्रोणाचार्य से अपमान का बदला लेने वाला योद्धा पुत्र प्राप्त हो। ऐसे पुत्र की प्राप्ति का तो अब एक ही मार्ग था—तप अथवा कोई विशेष यज्ञ। कोई महान् पुरोहित ही इस यज्ञ का अनुष्ठान करवा सकता है। चिंता से लंबी-लंबी सांसें खींचते राजा द्रुपद ने इस

विषय में अनेक विद्वानों से परामर्श किया, किंतु उनको कहीं से संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। अंत में वह स्वयं ही पर्यटन करने के नाम पर कांपिल्य से निकल पड़े और अपने मनोकामना की पूर्ति करने में समर्थ पुरोहित की खोज में यहां-वहां भटकने लगे। उन्होंने गंगा और यमुना नदियों के तटवासी न जाने कितने ऋषि-मुनियों के दर्शन किए, किंतु उनकी मनोकामना के अनुरूप यज्ञ कराने वाला कोई भी न मिला।

अंततः एक दिन वे एक ऐसी ब्राह्मणों की बस्ती में पहुंचे जहां कठोर व्रत का पालन करते हुए निरंतर वेद की संहिताओं के अध्ययन में रत रहने वाले दो ब्रह्मर्षियों का पता लगा। उनके नाम थे याज तथा उपयाज। दोनों सगे भाई थे। दोनों ही परम निष्ठावान तथा श्रेष्ठ तपोधन कहे जाते थे। याज ज्येष्ठ थे। उनके अनुज उपयाज अपने ज्येष्ठ भ्राता से भी कहीं उत्तम व्रत का पालन करते थे और हर प्रकार से योग्य थे।

सब कुछ जान लेने के बाद द्रुपद सीधे उपयाज के निकट गए और एकांत पाकर उनको अनेक भोग्य पदार्थों का उपहार देने के बाद उनसे विनती की, ''मुझे एक ऐसा बलशाली पुत्र पाने की कामना है जो मेरा अपमान करने वाले द्रोणाचार्य का वध करने में समर्थ हो! आप उस कर्म का उपदेश करें, तथा मेरी कामना को पूर्ण कराने वाले उस अनुष्ठान को विधिवत संपन्न करवा दें। कामना पूरी होने पर ऐसा पुत्र मिला तो मैं आपकी मुंहमांगी सारी वस्तुएं देकर आपका पूजन करूंगा। अपने राज्य की सर्वोतम गायें मैं आपकी सेवा में अर्पित करूंगा।''

यह सब सुनकर निर्लोभी महर्षि उपयाज ने स्पष्ट शब्दों में कहा, ''मैं ऐसा कार्य कदापि नहीं करूंगा।''

द्रुपद को निराशा तो हुई किंतु कोई मार्ग नहीं था। उनको विश्वास था कि उपयाज ही उनका अनुष्ठान करवा सकते हैं। अतः वह वहीं रहकर निरंतर याज तथा उपयाज को प्रसन्न करने की साधना करते रहे। निरंतर साधना करते द्रुपद को पूरा एक वर्ष बीत गया। तब उपयाज ने उन पर करुणा करके कहा, ''राजन्, मेरे अग्रज याज और मैं एक बार वन में साथ-साथ जा रहे थे। उस समय बीच में एक फल मार्ग पर पड़ा दीखा। मैंने तो उपेक्षा कर दी, किंतु अग्रज ने उस फल को उठा लिया, जबकि उस फल के विषय में हमको कुछ पता नहीं था कि वह शुद्ध है अथवा नहीं। मुझे लगा कि मेरे अग्रज उत्तम व्रत का पालन करने में लगे रहते हैं, किंतु ऐसा फल लेने में भी उनको कोई संकोच नहीं...राजन्, मेरे विचार से तो तुम जाकर मेरे अग्रज याज का ही आश्रय लो। वह समर्थ हैं और फल का लोभ होने के कारण वह निश्चय ही तुम्हारा

यज्ञ भी करवाने को तैयार हो जाएंगे।''

याज के विषय में ऐसे आचरण की बात सुनकर प्रतापी एवं चरित्रवान राजा द्रुपद मन ही मन याज की निंदा करने लगे, किंतु उनको तो अपने कार्य की सिद्धि का लोभ था। वह तत्काल ही महर्षि याज के पास जा पहुंचे।

याज को प्रणाम करके उन्होंने अपने अपमानित होने की पूरी कथा उनको कह सुनाई और साग्रह बोले, ''महात्मन्, मैं अपने अपमान से जल रहा हूं। किंतु द्रोणाचार्य में क्षात्रबल के साथ ही ब्रह्मतेज भी है, अतः मैं उनसे बल में हीन होने के कारण उनसे जीत नहीं सकता। आपका ब्रह्मतेज उनकी तुलना में अधिक समर्थ है। मुझे विश्वास है कि आप चाहें तो मेरी मनोकामना पूरी हो सकती है। मैं इसके लिए आपको मुंहमांगी दक्षिणा दूंगा। हजारों उत्तम गौयें दूंगा और पांचाल के सर्वोत्तम रत्न भी आपको अर्पित कर दूंगा। महर्षि, वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य इस समय पृथ्वी के अन्यतम धनुर्धर हैं। मैं ऐसा पुत्र पाना चाहता हूं जो युद्ध में अपराजेय हो और द्रोणाचार्य का विनाश करने में समर्थ हो।''

पल-भर भी सोचे बिना महर्षि याज ने कह दिया—''एवमस्तु!''

और उसी पल से वह यजमान पांचालराज की अभीष्ट सिद्धि के लिए महान यज्ञ का आयोजन कराने के लिए सक्रिय हो गए। उन्होंने इस कामना को पूरा करने वाले यज्ञ तथा उसके साधनों का निश्चय किया। फिर सोचा, यह तो बड़ा ही दुष्कर कार्य है, इसलिए उन्होंने अपने अनुज उपयाज को भी यज्ञ में सहयोग देने को कहा। उनका आदेश मानकर उपयाज ने भी यज्ञ कराने के लिए स्वीकृति दे दी।

तैयारियां होने लगीं।

द्रुपद को उपयाज ने यज्ञ के विषय में उपदेश देने के बाद कहा, ''राजन्, इस यज्ञ से तुम्हारी मनोकामना निश्चय ही पूरी हो जाएगी और तुमको महान पराक्रमी, तेजस्वी तथा शक्तिशाली पुत्र प्राप्त होगा जो तुम्हारे शत्रुओं के लिए विनाशकारी सिद्ध होगा।''

याज तथा उपयाज ने पांचालराज को ऐसा पुत्र दिलाने के लिए प्रतिज्ञा ली और शुभ मुहूर्त में अनुष्ठान आरंभ कर दिया।

यज्ञकार्य निरंतर चलता रहा। इस अद्‌भुत यज्ञ की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी।

कहा जाता है कि हवन के अंत में महातपस्वी याज ने पांचालराज की महारानी को आज्ञा दी, ''महादेवी, अब तुम तत्काल मेरे निकट आओ। इसी समय आकर पवित्र हविष्य ग्रहण करो। इससे तुम्हारे पति की मनोकामना

अवश्य पूरी होगी। तुम्हें एक महाबली पुत्र के साथ ही एक अनन्य सुंदरी कन्या भी प्राप्त होगी, जोकि तुम्हारी इच्छा के अनुरूप ही है!''

किंतु पंचाल की महारानी उस समय अपने प्रकोष्ठ के शृंगार्कक्ष में थीं। वहीं से बोलीं, ''महर्षिश्रेष्ठ, इस समय मैं यज्ञ का पावन हविष्य ग्रहण करने योग्य नहीं हूं। मेरे अधरों पर तांबूल आदि का राग रचा हुआ है और अंगों में भी अंगराग की सुगंधि लिपटी है। ऐसे में पावन हविष्य ग्रहण करने के लिए मैं तुरंत स्नान आदि करके आती हूं। पूज्य, कृपा करके इतनी इतनी-सी देर मेरी प्रतीक्षा कर लें।''

किंतु महातपस्वी याज ने कहा, ''राजा पृषत् की पुत्रवधू! यह पावन हविष्य स्वयं मैंने पकाकर तैयार किया है और इसको उपयाज जैसे ब्रह्मर्षि ने अभिमंत्रित किया है! तुम आती हो तो आओ, अन्यथा वहीं रहो। यह पावन हविष्य तो यजमान की कामना पूरी करके ही रहेगा।''

महर्षि याज ने यह कहते-कहते हविष्य की आहुति कुंड में डाली ही थी कि पांचालों में उत्साह-भरा कोलाहल मच गया। महारानी ने उसी वेश में बाहर निकलकर देखा—यज्ञकुंड के निकट ही एक महातेजस्वी युवक खड़ा है! वह अग्नि के समान ही दहक-सा रहा था। माथे पर किरीट तथा वक्ष पर दिव्य कवच धारण किए उस बलशाली युवक के अंगों से उठती कांति अग्नि की ज्वालाओं के समान उद्भासित हो रही थी। उसको देखते ही मन में आतंक-सा भर जाता था। हाथों में विशाल खड्ग तथा धनुष-बाण धारण करके आया वह बलिष्ठकाय योद्धा सहसा ही लपककर निकट ही खड़े पांचालराज के विशालकाय रथ पर जा चढ़ा। लगा, मानो वह तत्काल कहीं युद्धयात्रा पर जाने को तत्पर हो।

उसी को देखकर पांचाल क्षत्रिय उत्साह से कोलाहल मचा रहे थे और एक-दूसरे का आलिंगन करके हर्षोल्लास व्यक्त कर रहे थे।

महातपस्वी उपयाज ने आकाशवाणी की भांति घोषणा की, ''समस्त लोक सुनें! पांचालराज द्रुपद का यह पुत्र पांचालों के सारे भय दूर कर देगा और महाराज द्रुपद का शोक दूर करेगा। इसका जन्म ही द्रोणाचार्य का अंत करने के लिए हुआ है!''

और इसके कुछ ही पलों के उपरांत महर्षि याज ने एक महासुंदरी कन्या को महारानी के हाथ में सौंपते हुए कहा, ''देवी, लो, इस कन्या से तुम्हारी मनोकामना सफल होगी। तुम जैसी कन्या चाहती थीं, यह सर्वथा वैसी ही है। श्याम वर्ण वाली इस कन्या का नाम आज से कृष्णा होगा। समस्त युवतियों में श्रेष्ठ यह दिव्य सुंदरी पांचाली धरती के दंभी क्षत्रियों का संहार करने के लिए

ही उत्पन्न हुई है।''

इसी प्रकार यज्ञ से उत्पन्न उस महाबली युवक का नाम याज ने 'धृष्टद्युम्न' निश्चित किया था। धृष्टद्युम्न को देखकर उछाह से भरे जो पांचाल कोलाहल मचा रहे थे, वे अब उस श्यामा युवती को देखकर ठगे-से रह गए थे।

दमकती श्याम कांति। उभरे हुए लाल-लाल सुंदर नख। काले-काले लंबे केश। धनुष जैसी तनी-तनी-सी मोहक भौहें। कमलदल के समान खिले-खिले नेत्र। तन्वंगी सुंदरी के उरोज अत्यंत स्थूल और मन को लुभा लेने वाले थे। अंगों से उठती मादक गंध समूचे यज्ञमंडप में व्याप्त हो रही थी। लगता था, मानवी की देह धारण करके साक्षात देवी अपराजिता ही अपने परम सुंदर रूप में समस्त लोकों की विजय के लिए धरती पर उतर आई हों। उस महासुंदरी के समान रूपवती इस धरती पर कोई और युवती तो नहीं ही होगी!

एक बार फिर पांचाल क्षत्रियों में हर्ष के कारण कोलाहल होने लगा।

अपनी रूपसी कन्या पर मुग्ध स्वयं महारानी ने महातपस्वी याज के चरण छूकर आग्रह किया, ''आपने हमको ऐसी सुंदर और अपराजेय संतानें देकर हमारा अभीष्ट सिद्ध करने की कृपा की है तो तपोधन, मेरे आग्रह पर ध्यान देकर इतना वर और दें कि अब मेरा यह पुत्र और लोकविजय करने वाली मेरी यह पुत्री मुझे ही अपनी माता मानें। मेरे अतिरिक्त और किसी स्त्री को ये माता न मानें!''

महर्षि याज ने कहा, ''एवमस्तु!''

तीन

अपने अपमान का प्रतिकार करने के लिए पांचालराज द्रुपद ने यज्ञ करके ऐसा पुत्र प्राप्त किया है जो स्वयं द्रोणाचार्य को पराभूत करके राजा द्रुपद के अपमान का बदला लेगा—यह संवाद स्वयं द्रोणाचार्य ने भी सुना। किंतु कैसी विडंबना है कि वह स्वयं अपने महाशत्रु धृष्टद्युम्न को अपने मित्र पांचालराज का पुत्र मानकर उसे अपने आश्रम में रखकर उसको धनुर्वेद की शिक्षा देने लगे। प्रारब्ध ही बली है और उससे विलग होकर कुछ किया नहीं जा सकता—आचार्य द्रोण यह सोचकर अपना कर्तव्य करने से नहीं चूके। वह गुरु थे, अतः आचार्य के रूप में विद्या की याचना करने वाले किसी शिष्य को शिक्षा देने से वह कैसे चूक जाते!

पांचालराज को धृष्टद्युम्न जैसा पुत्र पाकर तो हर्ष हो ही रहा था, उनको कृष्णा

S.P.S. Library

जैसी पुत्री पाकर और भी प्रसन्नता होती थी। अर्जुन ने जब द्रोण की आज्ञा से पांचाल पर आक्रमण किया था, उसी समय से द्रुपद को अपने परम मित्र तथा संबंधी राजा पांडु के उस पुत्र को अपना बनाने की इच्छा मन ही मन विकल करती रहती थी। और जब द्रौपदी जैसी परम सुंदरी कन्या भी यज्ञ से प्राप्त हो गई तो उनकी इच्छा पूरी होने का आभास-सा होने लगा था। उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि इस विलक्षण कन्या का विवाह अर्जुन से ही किया जा सकता है। अर्जुन ही उसके लिए श्रेष्ठ वर होंगे।

किंतु एक दिन सहसा ही द्रुपद यह सुनकर स्तंभित रह गए कि पांडव तो अपनी माता कुंती के साथ वारणावत में पशुपति पूजन का महोत्सव देखने के लिए आए थे, किंतु वहां सहसा ही एक रात उनके भवन में आग लग गई और पांडव अपनी माता कुंती सहित जलकर भस्म हो गए।

इस भयंकर घटना से मानो द्रुपद की तो मनोकामना ही ध्वस्त हो गई हो। वह फिर रात-दिन विकल रहने लगे। द्रौपदी यज्ञ की वेदी से उनको पूर्णतः वयप्राप्त अवस्था में प्राप्त हुई थी और वह शीघ्र ही हस्तिनापुर के कुरु राजा धृतराष्ट्र तथा वंश के संरक्षक महाप्रतापी आर्य भीष्म से बात करके द्रौपदी का विवाह अर्जुन से करने की सोच ही रहे थे कि ऐसा भयानक कांड हो गया। उनको कितनी ही बातें सुनने को मिली थीं। एक तो यही सूचना मिली कि धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन पांडवों के कारण दुखी रहता था और उन्हें अपने पथ का कांटा समझता था। उसको यह कैसे अच्छा लगता कि जिस कुरु राज्य का वह अपने को एकमात्र उतराधिकारी मानता था, उसमें भाग बंटवाने के लिए एकाएक पांडु के ये पुत्र आ गए! राजा द्रुपद ने सुना था कि भीष्म के कहने पर तथा यादवों की ओर से दबाव पड़ने पर राजा धृतराष्ट्र ने जब युधिष्ठिर को युवराज बना दिया तो कौरवों को और भी क्रोध आया था। कहते हैं, युधिष्ठिर की न्यायप्रियता तथा उदारता और नीतिपरायणता के कारण उनको प्रजा में इतनी लोकप्रियता मिल रही थी कि कौरवों के साथ ही महाराज धृतराष्ट्र स्वयं घबरा गए और अपने पुत्र के मोह से ग्रस्त होकर उन्होंने जानबूझ-कर पांडवों को हस्तिनापुर से दूर कर दिया था। कुछ लोग तो स्पष्ट कहते फिर रहे थे कि राज्य के लोभ में पुत्र के षड्यंत्र में शामिल होकर धृतराष्ट्र ने पांडवों को उनकी हत्या करवाने के लिए ही वारणावत भेज दिया था।

अब कुछ भी सच हो, पांचालराज को तो अर्जुन से काम था! वह जाते रहे तो, उन्हें कुरुकुल से क्या लेना देना है और क्या काम है कुरु राज्य से! अब तो उनको यह चिंता सताने लगी कि सुलक्षणा द्रौपदी के लिए वैसा ही

श्रेष्ठ वर कहां से लाएं।

चारों और दृष्टि डालने पर कोई अर्जुन के समकक्ष लगता ही नहीं। अर्जुन तो वास्तव में अद्वितीय थे— अपने समान एकमात्र योद्धा! द्रुपद रातदिन चिंता में लीन रहने लगे। उन्होंने बहुत सोचा तो लगा कि द्वारका के यादवों में ही से कोई अर्जुन की टक्कर का मिले तो मिले। एक बार यादवों से बात करनी होगी। उस समय अर्जुन के मातुल के पुत्र वासुदेव कृष्ण भी लोक में विख्यात थे। कहा जाता है कि उनमें तो एक से एक बढ़कर अलौकिक गुण हैं। और बाल्यकाल से ही वासुदेव कृष्ण पराक्रम का इतिहास-सा रचते रहे हैं। मथुरा के यादव-गणसंघ को नष्ट करने पर तुले कंस को मारकर उन्होंने एक बार फिर से यादवों की शक्ति का विस्तार किया है। फिर वह वर्षों तक मगध के जरासंध जैसे महाबली राजा की सेना का सामना करते रहे और उसे अनेक बार पराजित भी किया। फिर उसके आक्रमणों से सुरक्षित रहने की सोचकर उन्होंने अपने कुल द्वारा पालित प्राचीन स्थली आनर्त देश में द्वारका जैसी पुरी बनाकर वहां रहना आरंभ कर दिया। और सचमुच जरासंध भी उनकी दुर्गम पुरी की ओर आंख उठाते डरता है। वासुदेव कृष्ण की ऐसे तो अनेक पत्नियां हैं। कौन जाने वह पांचाली को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार भी करेंगे अथवा नहीं। और मानिनी पांचाली भी कौन जाने किसी ऐसे की पत्नी बनने को तैयार होगी कि नहीं, जो अनेक पत्नियों का पति हो! फिर उसे वहां उसके अनुकूल सम्मान भी तो नहीं मिल पाएगा। उससे ज्येष्ठ रानियां उसको उतना महत्त्व पाने नहीं देंगी।

वह इन्हीं उलझनों में फंसे थे कि एक दिन उनके योग्य पुरोहित ने उन्हें परामर्श देते समय रहस्यमय स्वर में कहा, ''हमने चरों से ऐसी चर्चा सुनी है, महाराज, कि वारणावत में वास्तव में पांडवों का अंत नहीं हुआ है। कहते हैं कि पांडव किसी प्रकार वहां से जीवित बच निकले हैं, किंतु वे संभवतः अपने शत्रु कौरवों के भय से अभी प्रकट नहीं हो रहे हैं।''

पांचालराज को ऐसी विलक्षण कल्पनाओं पर विश्वास नहीं था। वह जो कुछ करने की सोच रहे थे, उसके व्यावहारिक पक्ष पर ही अधिक ध्यान देते थे। और जब तक उनका अभीष्ट साकार हो नहीं जाता था, वे ऐसी-वैसी बातों पर ध्यान नहीं देते थे। उनको चिंता थी— नित यौवन की नई सीढ़ियां पार करती पांचाली की, जो उनके मन पर बोझ-सी बन ग़ई थी। ऐसे तो द्रौपदी के सौंदर्य की चर्चा चारों ओर फैली हुई थी! और दूसरी ओर, पांचालराज की ख्याति। कौन उससे संबंध न करना चाहता! सभी लालायित लगते थे, किंतु उनमें से कोई पांचालराज की आंखों में नहीं जमता था।

अवसर एकाएक ही मिल गया। हस्तिनापुर से द्वारका की ओर जाते वासुदेव कृष्ण सहसा ही मुड़कर पंचाल आ पहुंचे। उनको देखकर द्रुपद अत्यंत प्रसन्न हुए। अर्घ्य-पाद आदि से उनका सत्कार करने के बाद वह हँसते हुए बोले, ''आप तो वास्तव में अंतर्यामी भी हैं, वासुदेव! मैं तो कितने ही दिनों से आपसे मिलने को उत्सुक था।''

कृष्ण हँसकर बोले, ''आप हमारे पूज्य हैं। आप जैसे महान् योद्धा का दर्शन करने की इच्छा से मैं स्वयं ही इस ओर आने की बहुत दिनों से सोच रहा था; किंतु संयोग अब आया है।''

कुछ देर तक कुशल-संवाद होता रहा, फिर अचानक ही कुरु राज्य के विषय में बात होने लगी। द्रुपद ने अपने मन की बात कह ही डाली। बोले, ''पांडवों के दारुण अंत की बात सुनकर तो मेरा सपना ही भंग हो गया। मैं तो मन ही मन अपनी पुत्री पांचाली के लिए अर्जुन का वरण कर चुका था, किंतु...'' वह सहसा ही आग्रह-भरे स्वर में बोले, ''अब तो मेरी आशाएं आप पर ही केंद्रित हैं, वासुदेव। आप ही चाहें तो मेरी पुत्री का उद्धार हो सकता है।''

कृष्ण मानो इसी विषय पर स्वयं भी बहुत दिनों से विचार करते रहे हों, तत्काल ही बोले, ''आपकी सुलक्षणा पुत्री की कीर्ति तो मैं हस्तिनापुर से ही सुनता आया हूं, महाराज! ऐसी सर्वगुणसंपन्न पुत्री के लिए आपको चिंता क्यों? उसको भला कौन नहीं चाहता होगा!''

पांचालराज ने कहा, ''किंतु वह विलक्षण है, वासुदेव! उसे पंचाल राज्य के अनुरूप हर प्रकार की शिक्षा दी गई है। और रूपगुण में तो वह वास्तव में उत्तम है ही। उसके लिए तो सर्वथा योग्यवर पांडुनंदन अर्जुन ही थे, किंतु अब तो आपके सिवा मुझे उनके समान गुण-शील तथा पराक्रम में कोई नहीं दिखता, पांचाली को ऐसे ही किसी सामान्य राजपुत्र के हाथ तो नहीं दिया जा सकता। उसकी गरिमा और उसके गौरव के अनुरूप ही वर हो तभी तो उसका जीवन सुगम होगा।''

कुछ देर तक चुप्पी छाई रही। फिर द्रुपद ने ही कहा, ''मेरे योग्य कुलपुरोहित का कहना तो यही है कि राजकन्या के लिए हमें प्राचीन स्वयंवर प्रथा का आश्रय लेना चाहिए। सोचता हूं कि क्या करूं।''

राजा द्रुपद मन ही मन सोच रहे थे कि यदि वासुदेव कृष्ण स्वयं पांचाली के लिए आग्रह करें तो संभवतः पांचाली भी उन जैसा पराक्रमी पति पाकर प्रसन्न हो जाए, किंतु संकोचवश वह स्वयं यह आग्रह नहीं कर पा रहे थे। वह मन ही मन देवताओं से प्रार्थना-सी करते हुए चुप बैठे, कृष्ण के बोलने की

प्रतीक्षा करते रहे।

"यह विचार तो वास्तव में उत्तम जान पड़ता है, महाराज, आपके पुरोहित प्रवर ने वास्तव में उचित ही परामर्श दिया है। आप यही क्यों नहीं करते? मुझे विश्वास है कि स्वयंवर में निश्चय ही पांचाली के योग्य उत्तम वर प्राप्त हो सकता है। उसमें तो स्वयं कन्या को अपने योग्य वर का चयन करने की सुविधा रहती है।"

राजा द्रुपद ने कहा, "सुविधा तो रहती ही है, किंतु वासुदेव, वर प्राप्त कहां से होगा? जब कोई राजपुत्र वैसा होगा तभी तो प्राप्त होगा न। आपको कोई ऐसा समर्थ और पराक्रमी योद्धा धनुर्धर लगता है जो अर्जुन के समकक्ष हो।" फिर जरा रुककर बोले, "और क्या आप उस स्वयंवर में भाग लेंगे?"

कृष्ण ने हँसकर कहा, "आप अधीर क्यों होते हैं, महाराज! पांचाली जैसी लोकविख्यात सुंदरी और सुलक्षणा कन्या अविवाहित तो रह नहीं जाएगी। उसके लिए भी विधाता ने अवश्य ही कहीं योग्य वर तो बनाया ही होगा। स्वयंवर से हमको उसी वर को पाने की सुविधा हो जाएगी।"

पांचालराज निरुत्साहित-से होकर कुछ देर चुप रहे।

फिर बोले, "मैं तो ऐसे ही चिंता से विकल हो रहा हूं, वासुदेव। आपसे सच कहता हूं, मेरा मन अब एक नया विवाद खड़ा करने को तत्पर नहीं होता। आप तो जानते हैं कि स्वयंवर से और चाहे जो सुविधा मिलती हो, कभी-कभी दुराग्रही राजाओं अथवा कुछ दंभी राजपुत्रों के कारण मिथ्या विवाद भी आरंभ हो जाता है। कितनी ही बार तो कन्या का हारण तक करने का प्रयास किया जाता है! और पांचाली की जो ख्याति है, उससे देखते हुए मुझे तो हर पल आशंका बनी रहती है कि कहीं उसके कारण पांचालों को कभी युद्ध ही न लड़ना पड़ जाए। और आप तो ऐसे भी जानते हैं कि स्वयंवर में हम किसी के आने पर रोक तो नहीं लगा सकते। रोक होने पर भी जरासंध जैसे निरंकुश राजा को कौन रोक पाएगा? वही आकर यहां वितंडा खड़ा कर दे तो।"

कृष्ण ने हँसकर कहा, "महाराज, आप तो वास्तव में अधीर हैं। आप जो कह रहे हैं, वह निश्चय ही सत्य है, किंतु इस प्रकार के किसी भय से पांचाली का विवाह तो नहीं रोका जा सकता। वह तो यदि होना है तो फिर स्वयंवर न सही, विवाह के सामान्य परंपरा के समय भी कोई दंभी आपत्ति नहीं खड़ी कर देगा, यह तो नहीं कहा जा सकता। किंतु यदि ऐसा ही हो तो भी आप निश्चिंत रहें। यदि आप चाहेंगे तो हम किसी प्रकार का अन्याय नहीं होने देंगे। आपके न्याय का पक्ष लेकर हम यादवों का बल अनाचारियों का विरोध करेगा। मेरे विचार से तो आप स्वयंवर का ही आयोजन करने की तैयारी करें। उससे

वास्तव में हित ही होगा।''

द्रुपद ने अकस्मात् ही कहा, ''वासुदेव, हमने तो कुछ ऐसा भी सुना है कि पांडव संभवत: उस रात वारणावत के अग्निकांड से बच निकले हैं और कहीं छिपे हैं...''

कृष्ण ने सहज हँसी के साथ कहा, ''हमने भी कुछ ऐसा ही सुना है, महाराज, और सच कहूं, मुझे तो पहले ही पल से विश्वास नहीं आया था कि पांडव जैसे पराक्रमी और बुद्धिमान किसी षड्यंत्र में फंसकर सहज ही मारे जा सकते हैं। किंतु प्रारब्ध को क्या कहा जाए! फिर भी मुझे यही विश्वास है कि पांडव कहीं न कहीं जीवित ही हैं।''

पांचालराज उत्साहित होकर बोले, ''तो किसी प्रकार अर्जुन से अर्थात् पांडवों को खोजकर उनसे....''

कृष्ण ने गंभीर होकर कहा, ''महाराज, वास्तव में आपको पांचाली का स्वयंवर करने का आग्रह करने के पीछे मेरा उद्देश्य यही है! यह एक प्रकार से पांडवों की खोज एक अमोघ प्रयास ही होगा।''

''वह कैसे होगा, वासुदेव?''

कृष्ण ने कहा, ''हम स्वयंवर के बहाने ऐसा कूट उपाय करेंगे, महाराज, कि पांडव कहीं भी छिपे हों, यह उनको आकर्षित करने का एक अचूक आकर्षण होगा। यदि वे जीवित हैं तो आप विश्वास रखें, पांचाली के स्वयंवर में भाग लेने अवश्य आएंगे।''

द्रुपद कुछ देर गंभीर होकर सोचते रहे, फिर सशंक होकर बोले, ''ऐसा कौन-सा उपाय होगा, वासुदेव कि वे अवश्य आएंगे? मुझे तो शंका होती है कि वह यदि जीवित हैं तो निश्चय ही भयवश कहीं छिपकर जीवनयावन कर रहे होंगे। तो फिर स्वयंवर के समय कैसे प्रकट हो जाएंगे? उनको भय तो बना ही रहेगा न!''

कृष्ण ने कहा, ''पूज्य! पांडवों के विषय में—उनसे केवल एक-दो बार ही मिलने के बाद भी—मेरा तो यही विचार है कि पांडव नीतिज्ञ हैं, और कायर तो कदापि नहीं हैं। सच कहूं तो वे भय का नाम ही नहीं जानते। हमारी बुआ के पति महाराज पांडु जितने पराक्रमी थे, पांडवों में उससे कहीं अधिक उत्साह तथा पराक्रम है और वे नीति के कारण भले ही कुछ दिन के लिए अज्ञातवास कर रहे हों, कम से कम भय तो उसका कारण हो नहीं सकता।''

द्रुपद ने भी उत्साह के साथ कहा, ''अर्जुन जैसे पराक्रमी तो औरों के लिए भय के कारण हो सकते हैं। तो फिर रहस्य क्या है?''

''कुछ भी हो, आर्य! किंतु भय इसका कारण नहीं है। मेरा अनुमान तो

यह है कि उनको अब कौरवों की ओर से तथा स्वयं अपने ज्येष्ठ पिता राजा धृतराष्ट्र की ओर से भी निराशा और चिंता हो गई है। वह समझ गए हैं कि अब उनके साथ रहकर उनका जीवन सहज नहीं हो सकता। लेकिन इसके लिए उनके साथ अपने मित्र भी तो होने चाहिए। वह अकेले ही तो कौरवों की शक्ति का सामना नहीं कर पाएंगे। ऐसे में वह निरंतर अपने संबंधियों से संपर्क बनाने की चेष्टा कर रहे होंगे। हमारी बुआ पृथा को तो विश्वास है ही कि हम सारे वृष्णिवंशी यादव उनके लिए कितने चिंतित रहते हैं। हमारे पितृव्य अक्रूर ने तो जाकर हस्तिनापुर में पांडवों पर होने वाले अत्याचारों को स्वयं अनुभव किया है और इसके लिए उन्होंने राजा धृतराष्ट्र से स्पष्ट कहा भी था। उसी का तो परिणाम रहा कि युधिष्ठिर को युवराज घोषित कर दिया गया। किंतु यह दिखावा-भर था। पांडवों को तो कांटे की तरह किसी प्रकार निकालकर दूर कर देने की कुचेष्टा चलती ही रही है। और वही हुआ...विधाता उनका कल्याण करें...''

बहुत देर बाद पांचालराज ने विश्वास से भरकर कहा, ''तो फिर आप ही जानें, जनार्दन! आपको तो—जो कहा जाता है...वास्तव में संभवतः मोहिनी विद्या सिद्ध है। आपने तो पलक झपकते मुझ पर न जाने कैसी माया कर दी कि मुझे जो अब तक पर्वत जैसा दिखता था, वह सहसा ही राई लगने लगा है। अब मैं स्वयं को और अपनी पांचाली को भी आपके ही समक्ष समर्पित करता हूं। आप जैसा चाहें, वैसा ही करें।''

ठीक उसी समय महाराज की परिचारिका उनका संकेत पाकर राजप्रासाद से पांचाली को लेकर आई।

रूपयौवन की पराकाष्ठा-सी उस युवती को देखकर वासुदेव भी एक पल को तो अवाक्-से रह गए, किंतु वासुदेव कृष्ण को देखती पांचाली स्वयं भी ठगी-सी खड़ी रह गई थी।

द्रुपद ने पुत्री को उस प्रकार स्तब्ध खड़ी देखा तो बोले, ''भद्रे! देवकीनंदन कृष्ण लोक में माननीय हैं। ज्येष्ठ हैं। श्रेष्ठ हैं! उन्हें प्रणाम करो, पुत्री!''

पांचाली सहसा जाग-सी उठी। उसने विशाल नेत्रों से कृष्ण की ओर देखा और किंचित लज्जा के साथ मंद स्मित से कंपित अधरों से बोली, ''प्रणाम स्वीकार हो, पूज्य। अपराध क्षमा हो। वास्तव में आपकी अनेक लोक-लीलाओं के विषय में सुनकर कुतूहलवश मैं जड़-सी रह गई। विश्वास ही नहीं आया कि आज मैं स्वयं उनको, उन लोकनायक को ही प्रत्यक्ष देखने का अवसर पा गई हूं। और वास्तव में मेरा नहीं, दोष यदि है तो आपके अपने इस अलौकिक

व्यक्तित्व का जो हर किसी को विस्मयविमुग्ध कर लेता होगा।''

कुछ विचलित-से होकर पांचालराज ने जल्दी से कहा, ''आपको देखकर वह सहसा ही प्रगल्भ हो उठी है, वासुदेव! ऐसा स्वभाव तो है नहीं कृष्णा का।''

कृष्ण ने हँसकर कहा, ''आप चिंता न करें, महाराज! यह सहजमना पांचाली तो साकार शालीनता है।'' फिर वह पांचाली की ओर देखकर बोले, ''शुभे, मेरा आशीर्वाद है, तुमको शीघ्र ही लोकविख्यात वर प्राप्त हो...''

लजाकर पांचाली ने फिर उनको प्रणाम कर लिया और पिता के चरण छू लिए। द्रुपद ने उसे अंक में लेकर उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहा, ''पुत्री, हम तेरा स्वयंवर कर रहे हैं। उसमें कुछ ऐसे प्रसंग आ सकते हैं कि उस समय तुम्हारी सक्रियता ही हितकर होगी। मैं चाहता हूं कि तुम अपने भ्राताओं के साथ वासुदेव से गहन चर्चा करके उस विषय में सब समझ लो।''

उसके बाद स्वयं पांचाली ही कृष्ण को मार्ग दिखाती हुई राजप्रासाद में अपनी अंबा के पास ले आई।

वासुदेव को अतिथि के रूप में पूरे एक पक्ष तक पांचाल में ही रहना पड़ा। इस बीच शिखंडी तथा धृष्टद्युम्न तथा मंत्रियों आदि के साथ विस्तार से चर्चा होने के बाद स्वयंवर के विषय में पूरा निश्चय हो गया। फिर तो पांचाल में महोत्सव का-सा परिवेश बन गया। कांपिल्य नगरी की साज-सज्जा होने लगी।

कृष्ण समय पर फिर कांपिल्य आने का वचन देकर द्वारका चले गए।

चार

कृष्ण द्वारा निश्चित परिमाणों के अनुसार ही पांचाल के अतिनिपुण शस्त्रकारों ने एक विलक्षण महाधनुष का निर्माण किया था। उसके साथ ही उन्होंने एक अद्‌भुत यंत्र भी बनाया था, जो रंगमंडप के ऊपर तक एक ऊंचे स्तंभ के साथ लगाया गया था और समय पर तीव्र वेग से नचाया जा सकता था। उसके भी ऊपर एक मत्स्य बनाकर लक्ष्य के रूप में लगाया गया था। उस नाचते हुए यंत्र के छिद्रों के बीच से लक्ष्य दिखता था।

यंत्र के ठीक नीचे एक विशाल कड़ाह में तेल भरकर रखा गया था। उसके ऊपर लगे यंत्र के नाचने पर उसके छिद्रों से मत्स्य दिखता था। तेल में उसी के प्रतिबिंब को देखकर मात्र पांच बाणों से लक्ष्य को भेदना होगा। जो भी योद्धा उसको भेद देगा, वही विजयी होगा और पांचाली उसका ही वरण करेगी!

सब कुछ अद्‌भुत ही था। पांचालों में भी एक से बढ़कर एक धनुर्धर थे,

किंतु वे भी उस महाधनुष को देखकर विस्मित रह जाते—इसे तो कोई दानव ही उठाए तो उठाए। इस पर अकेले तो कोई योद्धा प्रत्यंचा चढ़ा नहीं सकता। फिर तेल के कटाह में लक्ष्य की परछाईं देखकर लक्ष्य को भेदना तो असंभव-सा ही लग रहा था। कितने ही तो चर्चा करते थे कि यह सब एक इंद्रजाल जैसा है। ऐसे कौन लक्ष्य वेधकर पांचाली को जीतेगा भला!

यह चर्चा राजभवन तक में होती ही रहती थी।

महारानी को चिंता लगी थी। इस प्रकार की असंभव परीक्षा रखकर भला पांचाली का स्वयंवर करने का क्या अर्थ होता है? किंतु उनके दोनों पुत्र धृष्टद्युम्न तथा शिखंडी को भी वासुदेव कृष्ण पर पूरा विश्वास था। उनका कहना था कि कृष्ण ने कुछ सोचकर ही यह सब करवाया है। हमारी पांचाली को निश्चय ही पृथ्वी का अन्यतम योद्धा ही वरकर ले जाएगा।

स्वयं पांचाली को तो इतने दिनों में ही वासुदेव कृष्ण के प्रति अंधश्रद्धा-सी हो गई थी। वह महारानी से कहती ही रहती, "अंबा, मुझे तो लगता है कि निश्चय ही कृष्ण तेरी इस पुत्री का हित करने के लिए ही अपने-आप उस दिन पंचाल चले आए थे। जो उनका निश्चय है, मुझे विश्वास है कि वही होकर रहेगा। तुम देख लेना, अंबा, वासुदेव ने कहा है, तो कर भी दिखाएंगे! निश्चय ही तेरी यह पुत्री एक दिन पृथ्वी के महानतम धनुर्धर की पत्नी बनेगी। उनके सिवा इस महाधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर ऐसे विकट लक्ष्य को भेद ही कौन सकता है?"

पांचाल की महारानी पुत्री की बातें सुन-सुनकर चकित होतीं और कभी-कभी तो उसकी ही भांति विश्वास करके गौरव अनुभव करतीं कि द्रौपदी वास्तव में पृथ्वी के अन्यतम योद्धा की पत्नी बनेगी।

अंततः स्वयंवर का दिन आ ही गया—पौष मास की शुभ तिथि शुक्ला एकादशी। स्वयंवर का मुहूर्त विद्वान् आचार्यों ने रोहिणी नक्षत्र में निश्चित किया था।

कांपिल्य नगर के ईशान कोण पर निश्चित भूमि की पूजा करने के उपरांत वहां भव्य समाजवाट का निर्माण किया गया था। वह रंगमंडप जहां बना था, उसके चारों ओर भव्य भवनों का घेरा-सा था। उसके चारों ओर परिखा तथा प्राकार थे। सभी भव्य तोरण-द्वार आदि से सुशोभित किए गए थे। चारों और रंगबिरंगे वितानों से उसे सुसज्जित किया गया था। परिवेश में अगरु तथा धूप की सुगंध फैल रही थी। रथ्या-वीथी में तथा प्रशस्त स्थलों पर सुरभित जल का छिड़काव करने के साथ ही वहां सुरभित फूलों की मालाएं तथा वंदनवार

बांधे गए थे।

आसपास के विशाल प्रासाद भी उसी प्रकार सजाए गए थे। कितने ही ऊंचे-ऊंचे श्वेत रंग के विमान जैसे भवन बने थे और उनको सुनहरी जालियों तथा झालरों से सुसज्जित किया गया था। उनकी दीवारों पर धातुओं से बने रंगों की रंगाई करके उनकी शोभा को और बढ़ा दिया गया था। उन अट्टालिकाओं में दूर-दूर से आए हुए राजाओं तथा राजपुत्रों के निवास की व्यवस्था की गई थी। भव्य आसनों तथा पर्यंकों पर बहुमूल्य आस्तरण सुशोभित थे। सोपानों तक पर सुंदर आस्तरण डाले गए थे और चारों ओर कितने ही प्रकार की सुगंधियों के धूम्र की व्यवस्था थी, जो कई कोस तक फैल रहा था।

उन विमान जैसे भवनों से तरुण राजपुत्र तथा मनमोहक व्यक्तित्व वाले अनेक राजा मूल्यवान वस्त्र तथा प्रसाधनों से सज-संवरकर मंडप में आ-आकर विराजमान होने लगे।

कांपिल्य नगर में बहुत दिनों से स्वयंवर को देखने के लिए आने वाले दूर-दूर के यात्रियों की भीड़ बढ़ गई थी। कितने ही याचक वहां मनमानी दान-दक्षिणा की ही कामना से भी आए थे, जो अब स्थान-स्थान पर धन-आदि का दान ग्रहण करने में लगे थे।

मंडप में भी समारोह तथा स्वयंवर के समय राजाओं का पराक्रम और सबसे बढ़कर दिव्य रूपांगना पांचाली को देखने के लिए अपार भीड़ आ जुटी थी। देश-देश के राजा और राजपुत्र आकर अपने-अपने योग्य आसन ग्रहण कर चुके थे। ब्राह्मणों का विशाल समूह भी वहीं आकर एक भाग में बैठ गया था।

और जब, सबसे अंत में, राजदुहिता पांचाली रंगस्थली में आई तो सब उसकी ओर अपलक निहारते ही रह गए। स्नान आदि करके विचित्र शृंगार से सुशोभित द्रौपदी ने भव्य वस्त्र एवं अलंकार धारण कर लिए थे। उस विश्वमोहिनी रमणी ने हाथों में अलंकृत, कांचनी वरमाला ले रखी थी।

राजदुहिता के आने के बाद सोमवंशी पांचाल क्षत्रियों के पुरोहितों ने वेदी के चारों ओर कुश बिछाकर वेदविहित विधि के अनुसार मंत्रोच्चार करते हुए प्रज्वलित अग्नि में घृताहुति डाली और स्वस्तिवाचन किया। उसके बाद समाजवाट के चारों ओर बजते हुए भेरी आदि वाद्यों को बंद करवा दिया गया।

जब चारों ओर शांति छा गई गई तो द्रौपदी का ज्येष्ठ भ्राता पराक्रमी धृष्टद्युम्न उठकर रंगमंडप के बीच में खड़ा हो गया। उसने गंभीर वाणी में स्वयंवर-संबंधी घोषणा की, "इस स्वयंवर-मंडप में उपस्थित सभी राजा तथा राजपुत्र ध्यान से सुनें—मंडप के मध्य में विशाल मंच पर यह विशाल धनुष रखा है और उसके ही निकट पांच प्रखर बाण भी रखे हैं। आप लोग ध्यान से

देख लें। वह स्तंभ के ऊपर लक्ष्य है। जो भी धनुर्धर इस नाचते हुए यंत्र के ऊपर से दिखते उस लक्ष्य को नीचे इस तेल से भरे कटाह में उसका प्रतिबिंब देखकर इन पांच बाणों से वेधकर गिरा देगा, मेरी यह सुलक्षणा भगिनी पांचाली उसी पराक्रमी का पति के रूप में वरण करेगी।''

इसके पश्चात् स्वयं धृष्टद्युम्न ही स्वयंवर मंडप में उपस्थित राजाओं तथा राजपुत्रों के नाम, गोत्र तथा उनके पराक्रम और कीर्ति की चर्चा करता हुआ अपनी भगिनी द्रौपदी को उनका परिचय देने लगा।

उस समय महासुंदरी पांचाली के रूपयौवन तथा गुणों की चर्चा सुनकर मोहित, भरतखंड के लगभग सभी दिशाओं से एक से एक पराक्रमी राजा आए थे। क्रम से उनका परिचय कराते हुए धृष्टद्युम्न ने पांचाली को एक-एक के विषय में विस्तार से बताया। कौरवों में से दुर्योधन के अतिरिक्त उसके अनेक भाई भी आए थे, जो एक से बढ़कर एक पराक्रमी थे। वे सब कुरुकुल के महाबली योद्धा आर्य भूरिश्रवा के संरक्षण में आए थे। उनके साथ द्रोणाचार्य का महाबलशाली पुत्र, शास्त्रों तथा शस्त्रों में समान रूप से निपुण, अश्वत्थामा भी था और दुर्योधन का परम प्रिय मित्र महाधनुर्धर अंगराज कर्ण भी था। पांचाली ने धृष्टद्युम्न के इंगित पर एक बार बड़ी गहरी दृष्टि से सूतपुत्र कर्ण की ओर निहार लिया। कौरवों के बीच वह श्यामवर्ण का युवक योद्धा कौरवों की अपेक्षा कहीं अधिक तेजस्वी तथा सुदर्शन दिखाई पड़ रहा था। विशाल स्कंधों वाले उस योद्धा को देखकर मन ही मन पांचाली को क्षोभ-सा हुआ। पिछले दिनों कर्ण की चर्चा कितनी ही बार होती रहती थी। वह अर्जुन के समान ही महाधनुर्धर था और इसी कारण उसका अर्जुन से विवाद भी हो गया था। उसे देखते ही पांचाली की कुशल आंखों ने देख लिया कि उसकी विशाल भुजाओं पर धनुर्धर होने के अनेक लक्षण उसके कौशल का स्पष्ट आभास करा देते हैं, किंतु वह सूतपुत्र होने के कारण कितनी बार अपने अधिकारों से वंचित रह जाता है।

उसके विषय में बताते समय कृष्ण ने आशंका भी प्रकट की थी, ''इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर लक्ष्यवेध करने में समर्थ या तो अर्जुन है अथवा दूसरा मैं स्वयं हूं, किंतु बहुत सोच-विचारकर कोई ऐसा बंधन नहीं रखा गया था कि स्वयंवर में मात्र क्षत्रिय ही भाग लेंगे। कृष्ण का इस विषय में कहना यही था कि पता नहीं, यदि अर्जुन आदि पांडव जीवित ही हों तो न जाने किस वेश में हों। ऐसी स्थिति में यदि कोई जाति अथवा गोत्र-वर्ण आदि का बंधन लगा दिया गया तो अर्जुन संभवतः अपने वेश के कारण आ ही न सकें अथवा आने पर भी हो सकता है कि उनको स्वयंवर में भाग लेने का अवसर ही न मिले। इस

कारण बंधन तो नहीं लगाया गया, किंतु इससे एक संकट आ सकता है, वह यह कि...''

कृष्ण ने कहा था, ''एक तीसरा व्यक्ति भी इस लक्ष्य को बेधने में समर्थ है, वह है अंगराज कर्ण! ऐसी अवस्था में कहीं उसने पहले ही लक्ष्यवेध कर दिया तो उसको किस आधार पर रोका जा सकता है?''

यह प्रश्न वास्तव में संकटजनक था। अंत में कृष्ण ने ही कहा था, ''ऐसे में तो स्वयं पांचाली ही चाहे तो इस समस्या का समाधान कर सकती हैं... वास्तव में वीर्यशुल्क पर आधारित स्वयंवर में भी परंपरा के अनुसार तो कन्या की रुचि को ही महत्त्व दिया गया है! वह यदि चाहे तो किसी भी अयोग्य वर को किसी भी आधार पर वरने से मना कर सकती है, इसी कारण पराक्रम-शुल्क लगाकर भी इस विधि को स्वयंवर ही कहा जाता है, क्योंकि तब भी कन्या की इच्छा महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।''

और पांचाली ने उनका आशय समझकर कहा था, ''आप निश्‍िचत रहें, ऐसा समय आने पर मैं देख लूंगी।''

सुदर्शन, तेजस्वी कर्ण की ओर पांचाली ने एक बार फिर ध्यान से देखा और मन ही मन कुछ अशांत-सी होकर आगे बढ़ गई।

गांधार से राजा सुबल के सभी पुत्र आए थे—शकुनि, वृषक, वृहद्बल। अभिमानी राजा पौंड्रक वासुदेव भी आया था जो कृष्ण को अपना जन्मजात वैरी मानता था। कलिंग और ताम्रलिप्ति के नरेश भी आए थे। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त भी आए थे, जो अपने बल-विक्रम के लिए विख्यात थे। मद्रराज शल्य भी आए थे और उनके दोनों पुत्र रुक्मांगद तथा रुक्मरथ भी। कुरुकुल के प्रतापी योद्धा वाह्लीक के पुत्र आर्य सोमदत्त के तीनों बलशाली पुत्र भूरिश्रवा, भूरि तथा शल भी आए थे। कांबोज राज्य के राजा सुदक्षिण तथा पुरुवंशी दृढ़धन्वा भी मंडप में उपस्थित थे। मगध का महाबली सम्राट् जरासंध भी अपने पुत्र सहदेव के साथ स्वयंवर में भाग लेने को आया था। विदर्भ, कोसल, चेदि, करुष आदि राज्यों के राजा भी आए थे। इनके साथ ही वासुदेव बलराम तथा कृष्ण के साथ हृदिकपुत्र कृतवर्मा, युयुधान सात्यकि, अक्रूर, गद, उद्धव आदि योद्धा तथा यादवों का विशाल महाबल भी वहां उपस्थित था। किंतु पांचाली को पहले से ही ज्ञात था कि कृष्ण की इच्छा के अनुसार, यादवों में से कोई भी स्वयंवर में भाग नहीं लेगा। वे तो एक प्रकार से दर्शक मात्र बनकर वहां उपस्थित रहेंगे। कृष्ण ने स्वयंवर-समारोह के संरक्षक के रूप में वहां रहने का वचन दिया था और उसे निभाने के लिए वह यादवों के महाबल तथा अपने अग्रज महाबलशाली हलधर सहित वहां उपस्थित थे। मन ही मन पांचाली ने

देख लें। वह स्तंभ के ऊपर लक्ष्य है। जो भी धनुर्धर इस नाचते हुए यंत्र के ऊपर से दिखते उस लक्ष्य को नीचे इस तेल से भरे कटाह में उसका प्रतिबिंब देखकर इन पांच बाणों से वेधकर गिरा देगा, मेरी यह सुलक्षणा भगिनी पांचाली उसी पराक्रमी का पति के रूप में वरण करेगी।''

इसके पश्चात् स्वयं धृष्टद्युम्न ही स्वयंवर मंडप में उपस्थित राजाओं तथा राजपुत्रों के नाम, गोत्र तथा उनके पराक्रम और कीर्ति की चर्चा करता हुआ अपनी भगिनी द्रौपदी को उनका परिचय देने लगा।

उस समय महासुंदरी पांचाली के रूपयौवन तथा गुणों की चर्चा सुनकर मोहित, भरतखंड के लगभग सभी दिशाओं से एक से एक पराक्रमी राजा आए थे। क्रम से उनका परिचय कराते हुए धृष्टद्युम्न ने पांचाली को एक-एक के विषय में विस्तार से बताया। कौरवों में से दुर्योधन के अतिरिक्त उसके अनेक भाई भी आए थे, जो एक से बढ़कर एक पराक्रमी थे। वे सब कुरुकुल के महाबली योद्धा आर्य भूरिश्रवा के संरक्षण में आए थे। उनके साथ द्रोणाचार्य का महाबलशाली पुत्र, शास्त्रों तथा शस्त्रों में समान रूप से निपुण, अश्वत्थामा भी था और दुर्योधन का परम प्रिय मित्र महाधनुर्धर अंगराज कर्ण भी था। पांचाली ने धृष्टद्युम्न के इंगित पर एक बार बड़ी गहरी दृष्टि से सूतपुत्र कर्ण की ओर निहार लिया। कौरवों के बीच वह श्यामवर्ण का युवक योद्धा कौरवों की अपेक्षा कहीं अधिक तेजस्वी तथा सुदर्शन दिखाई पड़ रहा था। विशाल स्कंधों वाले उस योद्धा को देखकर मन ही मन पांचाली को क्षोभ-सा हुआ। पिछले दिनों कर्ण की चर्चा कितनी ही बार होती रहती थी। वह अर्जुन के समान ही महाधनुर्धर था और इसी कारण उसका अर्जुन से विवाद भी हो गया था। उसे देखते ही पांचाली की कुशल आंखों ने देख लिया कि उसकी विशाल भुजाओं पर धनुर्धर होने के अनेक लक्षण उसके कौशल का स्पष्ट आभास करा देते हैं, किंतु वह सूतपुत्र होने के कारण कितनी बार अपने अधिकारों से वंचित रह जाता है।

उसके विषय में बताते समय कृष्ण ने आशंका भी प्रकट की थी, ''इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर लक्ष्यवेध करने में समर्थ या तो अर्जुन है अथवा दूसरा मैं स्वयं हूं, किंतु बहुत सोच-विचारकर कोई ऐसा बंधन नहीं रखा गया था कि स्वयंवर में मात्र क्षत्रिय ही भाग लेंगे। कृष्ण का इस विषय में कहना यही था कि पता नहीं, यदि अर्जुन आदि पांडव जीवित ही हों तो न जाने किस वेश में हों। ऐसी स्थिति में यदि कोई जाति अथवा गोत्र-वर्ण आदि का बंधन लगा दिया गया तो अर्जुन संभवत: अपने वेश के कारण आ ही न सकें अथवा आने पर भी हो सकता है कि उनको स्वयंवर में भाग लेने का अवसर ही न मिले। इस

कारण बंधन तो नहीं लगाया गया, किंतु इससे एक संकट आ सकता है, वह यह कि...''

कृष्ण ने कहा था, ''एक तीसरा व्यक्ति भी इस लक्ष्य को बेधने में समर्थ है, वह है अंगराज कर्ण! ऐसी अवस्था में कहीं उसने पहले ही लक्ष्यवेध कर दिया तो उसको किस आधार पर रोका जा सकता है?''

यह प्रश्न वास्तव में संकटजनक था। अंत में कृष्ण ने ही कहा था, ''ऐसे में तो स्वयं पांचाली ही चाहे तो इस समस्या का समाधान कर सकती हैं... वास्तव में वीर्यशुल्क पर आधारित स्वयंवर में भी परंपरा के अनुसार तो कन्या की रुचि को ही महत्त्व दिया गया है! वह यदि चाहे तो किसी भी अयोग्य वर को किसी भी आधार पर वरने से मना कर सकती है, इसी कारण पराक्रम-शुल्क लगाकर भी इस विधि को स्वयंवर ही कहा जाता है, क्योंकि तब भी कन्या की इच्छा महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।''

और पांचाली ने उनका आशय समझकर कहा था, ''आप निश्चिंत रहें, ऐसा समय आने पर मैं देख लूंगी।''

सुदर्शन, तेजस्वी कर्ण की ओर पांचाली ने एक बार फिर ध्यान से देखा और मन ही मन कुछ अशांत-सी होकर आगे बढ़ गई।

गांधार से राजा सुबल के सभी पुत्र आए थे—शकुनि, वृषक, वृहद्बल। अभिमानी राजा पौंड्रक वासुदेव भी आया था जो कृष्ण को अपना जन्मजात वैरी मानता था। कलिंग और ताम्रलिप्ति के नरेश भी आए थे। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त भी आए थे, जो अपने बल-विक्रम के लिए विख्यात थे। मद्रराज शल्य भी आए थे और उनके दोनों पुत्र रुक्मांगद तथा रुक्मरथ भी। कुरुकुल के प्रतापी योद्धा वाह्लीक के पुत्र आर्य सोमदत्त के तीनों बलशाली पुत्र भूरिश्रवा, भूरि तथा शल भी आए थे। कांबोज राज्य के राजा सुदक्षिण तथा पुरुवंशी दृढ़धन्वा भी मंडप में उपस्थित थे। मगध का महाबली सम्राट् जरासंध भी अपने पुत्र सहदेव के साथ स्वयंवर में भाग लेने को आया था। विदर्भ, कोसल, चेदि, करुष आदि राज्यों के राजा भी आए थे। इनके साथ ही वासुदेव बलराम तथा कृष्ण के साथ हृदिकपुत्र कृतवर्मा, युयुधान सात्यकि, अक्रूर, गद, उद्धव आदि योद्धा तथा यादवों का विशाल महाबल भी वहां उपस्थित था। किंतु पांचाली को पहले से ही ज्ञात था कि कृष्ण की इच्छा के अनुसार, यादवों में से कोई भी स्वयंवर में भाग नहीं लेगा। वे तो एक प्रकार से दर्शक मात्र बनकर वहां उपस्थित रहेंगे। कृष्ण ने स्वयंवर-समारोह के संरक्षक के रूप में वहां रहने का वचन दिया था और उसे निभाने के लिए वह यादवों के महाबल तथा अपने अग्रज महाबलशाली हलधर सहित वहां उपस्थित थे। मन ही मन पांचाली ने

वासुदेव कृष्ण का आभार माना। कुछ भी हो, यादवों के यह युवा नेता वासुदेव कृष्ण ऐसे ही तो लोकख्यात नहीं हैं। अपने गुणों और नीतिनैपुण्य के कारण ही वह लोक में पूजे जाते हैं। द्रौपदी तो उनका स्नेह पाकर गद्गद हो गई थी। कृष्ण उसको अपनी सखी कहने लगे थे। किस तरह वह मन पर अनजाने ही छा जाते हैं और सामने वाले से अपने मन की करवा लेते हैं, द्रौपदी यह देखकर भी स्वयं आंख मूंदकर उन पर विश्वास करने लगी थी।

और फिर विधिवत स्वयंवर प्रारंभ हो गया। द्रौपदी के रूपयौवन से मुग्ध राजा-राजपुत्र आदि मन को वश में नहीं रख पा रहे थे। कामावेग से उनके हृदय में पांचाली के लिए अदम्य कामना जाग उठी थी। वे सभी मन में ऐसा सोच रहे थे कि यह कामिनी मेरी ही होगी।

किरीट, अंगद आदि आभूषणों से अलंकृत योद्धा अपनी विशाल भुजाओं को देखकर लक्ष्य वेधने को आतुर हो रहे थे। किंतु मंच पर रखे धनुष तक पहुंचते ही अधिकांश का उत्साह भंग हो जाता। कितने ही तो उस धनुष को टस से मस तक नहीं कर पाए। कितने ऐसे रहे कि किसी प्रकार धनुष को उठा तो लिया, लेकिन उसको झुकाकर प्रत्यंचा चढ़ाने के प्रयास में झटका खाकर दूर जा गिरे। उनके आभूषण, किरीट आदि छिटककर दूर जा पड़ते और वह क्षुब्ध, लज्जित-से चुपचाप सिर झुकाए ग्लानि से भरे लौट आते थे। ऐसे अनेक राजा और राजपुत्र अपमानित अनुभव करते हुए लज्जावश आंख उठाकर पांचाली की ओर देखने का साहस तक नहीं कर पा रहे थे।

तभी अकस्मात् सबको विस्मित कर देने वाली एक घटना हुई। एकाएक अंगराज कर्ण उठकर मंच तक जा पहुंचा। उसने सहज ही उस महाधनुष को उठा लिया और उसको कौशलपूर्वक झुकाकर उसकी प्रत्यंचा भी चढ़ा दी। उस तेजस्वी योद्धा ने एक बार पांचाली की ओर देखकर सहसा पांचों बाणों को उठाया और एक साथ ही धनुष पर सुयोजित कर लिया, और लगा कि वह अगले ही पल लक्ष्य को भी सहज ही वेध देगा। उस समय सारे मंडप में सन्नाटा छा गया था। तेजस्वी कर्ण घुटने के बल बैठकर तेल के कटाह में लक्ष्य की परछाईं देखता हुआ संधान कर ही रहा था कि रंगस्थली को झंकृत-सी करती सहसा पांचाली ने कहा, ''मैं सूतपुत्र को नहीं वरूंगी।''

पांचाली का स्वर निषेधात्मक था, फिर भी उसकी मधुर वाणी मानो सुरीली घंटी की ध्वनि के समान सारी रंगस्थली में विचित्र ढंग से कांपती-सी देर तक गूंजती रही।

कर्ण ने एक बार फिर पांचाली की ओर देखा फिर अमर्ष-भरी हँसी हँसकर उसने एक बार सूर्य की ओर दृष्टि डाली मानो उनको उलाहना-सा दे

रहा हो, फिर उसने प्रत्यंचा उतारकर उस महाधनुष को चुपचाप यथास्थान रख दिया और धीर-गंभीर गति से लौटकर अपने स्थान पर बैठ गया। उसका सुंदर मुखमंडल तप-सा रहा था। उसकी आंखें क्रोधावेश के कारण और लाल हो उठी थीं।

पांचाली को न जाने कैसा लग रहा था मानो उसने जानबूझकर एक ऐसे योद्धा का अपमान कर दिया हो, जिसने वास्तव में उसका कोई अपराध नहीं किया था....

उसी समय मानो इस नाटकीय कांड से पांचाली को मुक्ति देने के लिए ही मगध सम्राट् जरासंघ उठकर मंच की ओर चल पड़ा। उसका पर्वताकार शरीर देखकर ही भय लगता था। पांचाली कुतूहलवश देखने लगी। जरासंध मंच के पास जाकर अभिमान के साथ जैसे गुर्रा उठा, किंतु धनुष उठाकर खड़ा होते ही मानो उसको किसी ने झटका-सा दिया और वह सहसा ही मुंह के बल गिर पड़ा। वहां से उठकर उसने एक बार चारों ओर विचित्र दृष्टि से देखा, फिर उसी समय अपने दल-बल को मगध लौटने का आदेश देकर चल पड़ा। उसको मानो अब स्वयंवर में कोई रुचि नहीं रही।

फिर एक के बाद एक अनेक क्षत्रिय आए और अपमानित-लज्जित-से होकर वापस चले गए। महामल्ल के रूप में लोकप्रसिद्ध योद्धा मद्रराज शल्य भी आए, किंतु उन्होंने भी धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने में हारकर घुटने टेक दिए। चेदिराज दमघोष का बलवान पुत्र शिशुपाल भी आया, किंतु वह धनुष उठाने में ही डगमगाकर गिर पड़ा। फिर कौरवों की ओर से हलचल मची। अपने महाबली भाइयों के बीच से राजोचित अलंकार धारण किए गर्वोन्नत मस्तक के साथ दुर्योधन आया और उसने मंच पर से धनुष उठा लिया। चाप उठाकर उसने एक बार फिर गर्व से भरकर पांचाली की ओर कामावेश के साथ देखा और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने लगा। किंतु एक तीखा झटका लगा तो वह चित लोट गया। धनुष की नोक से उसकी अंगुलियां आहत हो गई थीं। वह भी लज्जित-सा आकर फिर अपने स्थान पर बैठ गया।

समग्र भरतखंड के एक से एक प्रसिद्ध योद्धा भी परास्त हो चुके थे। क्षत्रियों के बीच घबराहट-सी व्याप गई। अब तो रंगमंडप में भी सन्नाटा व्याप गया था—धनुष और लक्ष्यवेध की बात तक नहीं हो रही थी।

उसी समय सहसा ब्राह्मणों के समूह के बीच से श्याम वर्ण का एक अत्यंत सुशोभन युवा उठ खड़ा हुआ। गौरव से तना उसका विशालकाय शरीर शालवृक्ष की भांति ऊंचा था। वह मंच की ओर चला तो उसका मंतव्य समझकर ब्राह्मणों में कोलाहल मच गया। कितने ही वयोवृद्ध ब्राह्मण उसको

रोकने की चेष्टा करने लगे। जिस धनुष को इतने पराक्रमी क्षत्रिय योद्धा तक नहीं चढ़ा सके, उसको भला यह अल्पवय का ब्राह्मण कैसे चढ़ा लेगा! उनको इससे ब्राह्मणों का उपहास करवाने की आशंका हो रही थी। किंतु कुछ उत्साही युवा ब्राह्मण इस विचित्र विशालकाय योद्धा जैसे ब्राह्मण को मंच के पास जाकर प्रयास करने का अवसर देने के लिए कोलाहल मचाने लगे।

उनके कोलाहल के बीच वह युवक गौरव के साथ सीधा मंच के पास जा पहुंचा। उसने पर्वत की भांति अविचल खड़े होकर एक पल महाधनुष पर दृष्टिपात किया। फिर उसकी परिक्रमा-सी की। और सहसा ही उसने अत्यंत सहज प्रयास से महाधनुष को उठाकर सबके देखते-देखते, बिना किसी विशेष चेष्टा के ही, उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। ब्राह्मणों में उत्साह के साथ साधुवाद का नाद गूंजने लगा। और उस युवक ने बिना कोई विशेष श्रम किए पांचों बाण उठा लिए। एक बार कटाह में भरे तेल पर दृष्टि डाली और पलक झपकते सहसा ही वेग से नाचते यंत्र के उस पार टंगे लक्ष्य का प्रतिबिंब देखकर उसे पल मात्र में वेधकर कटाह में ही गिरा दिया।

अवाक् उसी ओर देखती पांचाली की छाती तेजी से धड़क उठी। रंगमंडप में घोर कोलाहल होने लगा था। पांचाली ने लक्ष्य किया कि यादवों के बीच किसी कारण उछाह-भरा कोलाहल हो रहा था। पल-भर को पांचाली ने कृष्ण के खिले हुए मुखमंडल की ओर देखा फिर मंच के निकट लक्ष्य वेधकर हाथ में धनुष उठाए उस यशस्वी योद्धा की ओर, जिसने वह पराक्रम कर दिखाया था जो अब तक कोई भी राजा अथवा राजपुत्र नहीं कर पाया था। वह अपलक पांचाली की ओर ही देख रहा था। एक पल को दोनों की आंखें मिलीं और पांचाली को लगा मानो वह तीव्र आकर्षण से स्वतः उसकी ही ओर खिंची जा रही हो। अपने भ्राता धृष्टद्युम्न के साथ वह मध्यम गति से बढ़ी।

उत्साह में भरकर सहस्रों ब्राह्मण मानो अपने युवा योद्धा का विजयध्वज फहरा रहे हों, इस प्रकार अपने-अपने उत्तरीय लेकर हर्षनाद करते हुए फहराने लगे। उस महान पर्व पर राजा द्रुपद की आज्ञा पाते ही सहसा भेरी तथा तूर्य के साथ विविध वाद्ययंत्रों की उल्लास तथा उत्साहवर्धक ध्वनि गूंजने लगी। विलक्षण प्रतिज्ञा को पूरी करने वाले उस शालवृक्ष के समान लंबे ब्राह्मण युवक को देखकर पांचालराज भी उत्साह से भर उठे। उनको तो इस बीच घोर निराशा हो रही थी कि यह सारा स्वयंवर-समारोह ही उनके लिए उपहास का कारण बनकर रह जाएगा। लेकिन इस महान् योद्धा ने रक्षा कर ली। वासुदेव का अनुमान ही ठीक निकला था। वह कोई भी हो, वास्तव में वह पांडुपुत्र अर्जुन के समान ही धनुर्विद्या में कुशल जान पड़ता है। उस लक्ष्य को वेधना कोई

साधारण कार्य नहीं था। मंडप में आकर विराजमान समस्त क्षत्रिय राजा तो अपनी-अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर ही चुके थे। एक बार तो पांचालराज को पछतावा होने लगा था कि यह विकट लक्ष्य कहीं असंभव तो नहीं! जब कोई धनुष उठाकर उस पर प्रत्यंचा तक नहीं चढ़ा पा रहा था तो उस असंभवप्राय लक्ष्य को वेध कौन पाएगा? किंतु कर्ण ने तो उस पर प्रत्यंचा चढ़ा ही दी थी। इसी से द्रुपद को आशा बंधी थी कि वह असंभव नहीं है, किंतु पांडव अर्जुन जैसा कोई समर्थ धनुर्धर ही उसको सिद्ध कर पाएगा। वासुदेव द्वारा निर्धारित यह लक्ष्य वास्तव में धरती के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर के योग्य ही था।

राजा द्रुपद अचानक सशंक हो उठे— वहां आए क्षत्रिय राजा और उपराजा अब बार-बार धृष्टता के साथ पांचालों पर अपना कोप उतार रहे थे। उनको एक ब्राह्मण युवक द्वारा पांचाली को जीतकर ले जाना सहन नहीं हो रहा था। किंतु वे स्तब्ध होकर, मंच की ओर खड़े देवराज इंद्र की भांति सुशोभन उस युवक की गरिमामय भंगिमा को देखते रहे। फिर पांचाल की राजदुहिता जब कंचन की अलंकृत वरमाला लेकर किंचित मुसकान के साथ उस ब्राह्मण युवक विजेता की ओर चली तो क्रोध और अपमान की अनुभूति के कारण उन सबकी आंखों में विकृति-सी आ गई थी।

उस समय यादवों के समुदाय में कुछ विचित्र-से संकेतों का आदान-प्रदान चल रहा था। वासुदेव कृष्ण ने अपने अग्रज हलधर बलदेव का हाथ धीमे से दबाकर कहा, ''तात, यह वही हैं! मैं जानता था, धनंजय के अतिरिक्त और कोई सहज ही यह पराक्रम नहीं कर सकता। पांडव वास्तव में जीवित हैं, तात! पांचालराज के स्वयंवर का उद्देश्य पूरा हो गया। ब्राह्मणों के बीच स्वाध्यायी ब्रह्मचारियों के रूप में वे पांचों पांडव ही हैं।

स्वयं बलदेव भी संतुष्ट थे। जिस सहजता के साथ उसने महाधनुष को उठाकर उसे बलपूर्वक सहज ही झुकाकर प्रत्यंचा चढ़ा दी थी और फिर जितनी सहजता से अनायास ही उसने लक्ष्य वेधकर कटाह में गिरा दिया था, वह सब देखकर लगता था कि निश्चय ही यह अर्जुन ही हैं। अर्जुन का हस्तलाघव वह पहले भी देख चुके थे। उन्होंने भी धीरे से कृष्ण का हाथ दबाकर उनको आश्वस्त कर दिया।

पांचाल राजदुहिता हाथों में कंचन से अलंकृत श्वेत पुष्पों की माला लिए आगे बढ़ी। उसके अधरों पर लगता था— मंद हँसी हो, किंतु वास्तव में उसका रूप ही ऐसा अनोखा था कि वह बिना हँसी के भी मधुर हँसी हँसती-सी जान पड़ती थी। उसने किसी मादक पेय का सेवन नहीं किया था, फिर भी उस मनोरम रमणी की चाल कुछ डगमग-सी हो रही थी, ऐसा उसकी मादक अंग-

शोभा के कारण लगता था। और संभवत: वह मन ही मन अपने विजेता के प्रति अनुराग से आंदोलित-सी हो रही थी। कितने ही राजाओं, उपराजाओं तथा विख्यात योद्धाओं के उस समुदाय के समक्ष उसने अपनी भुजलताएं उठाकर वरमाला अर्जुन के कंठ में डाल दी और विनीत भाव से अनुगामिनी की भांति सिर झुकाए खड़ी रह गईं। विलक्षण श्रृंगार से सजी-संवरी द्रौपदी उस समय ऐसी लग रही थी मानो सुशोभना पांचाली के वेश में स्वयं त्रैलोक्यसुंदरी अपराजिता पार्वती ने देवाधिदेव महेश्वर का वरण किया हो और लज्जा से सकुचाई-सी अपने महान पति की नेहदृष्टि की प्रतीक्षा कर रही हों।

उसी समय वासुदेव कृष्ण ने रंगमंडप से निकलकर जाते तीन ब्राह्मणकुमारों की ओर इंगित करके अग्रज बलभद्र से कहा, ''तात, वह देखिए, लंबी, सुंदर नासिका तथा कमलदल के सदृश विशाल नेत्रों वाले वह जो सिंह के समान उन्नत-ललाट कुमार चल रहे हैं, वह ज्येष्ठ पांडव युधिष्ठिर ही हैं और उनके साथ जाते हुए वह युगल कार्तिकेय के समान सुंदर तथा बलशाली दोनों युवा और कोई नहीं, निश्चय ही माद्रीनंदन नकुल-सहदेव हैं।''

बलदेव ने समर्थन में सिर हिलाकर जताया कि निश्चय ही वही हैं।

रंगमंडप में उसी समय सहसा कोलाहल होने लगा—पांचाली को एक ब्राह्मण ने जीत लिया और उन सब राजाओं की आशाओं पर तुषारपात हो गया तो वे क्षोभ से बकवाद करने लगे। कोई कह रहा था, ''यह द्रुपद हम सब क्षत्रियकुल के राजाओं तथा राजकुमारों की उपेक्षा करके उस श्रेष्ठ वरांगना युवती का विवाह एक हीन ब्राह्मण से करना चाहता है! इसे क्या इतने विशाल क्षत्रिय-समुदाय में कोई भी अपनी पुत्री के योग्य नहीं लगता। पहले तो इसने पौधा लगाया और उसका पोषण किया, किंतु अब जबकि उसके फल देने का समय आया तो यह मूर्ख राजा उसे काटकर गिराने वाला काम कर रहा है। यह वृद्ध द्रुपद वृद्धोचित सम्मान का पात्र नहीं है। इसने हमको आमंत्रित किया और इतने आदर-सत्कार का दिखावा तो किया किंतु अब हमें अपमानित कर रहा है। इसको तो तत्काल मार डालना चाहिए। इस चपलबुद्धि ब्राह्मण युवक को तो छोड़ो, किंतु कन्या को छीन लो। और यदि वह सुंदरी हममें से किसी के साथ विवाह करना चाहे तो ठीक, अन्यथा उसको भी जलती हुई आग में झोंक दो...मारो...''

गोह के आंगुलित्र धारण किए क्षत्रिय योद्धाओं ने सहसा ही द्रुपद पर आक्रमण करना चाहा तो राजा द्रुपद ने ब्राह्मणों के पीछे छिपकर अपनी जान बचाई। क्रोध में भरे हुए कुटिल राजा अर्जुन और पांचाली की ओर झपटे। किंतु उसी समय ब्राह्मणों के बीच से एक महाकाय युवा उछलकर उठा और उसने

निकट ही लगे एक विशाल वृक्ष को सहसा ही उखाड़कर उसे यमराज के दंड की भांति तानकर राजाओं के मार्ग में, अर्जुन एवं पांचाली को घेरकर उनकी रक्षा के लिए चट्टान की भांति अडिग खड़ा हो गया।

पांचाली की ओर अपलक निहारते अर्जुन ने सहसा अपने अग्रज मध्यम पांडव का यह अचिंत्य कर्म देखा तो मुसकराए और स्वयंवर के निमित्त लिया हुआ धनुष ही साधकर उन मूर्ख राजाओं को दंड देने के लिए सन्नद्ध खड़े हो गए।

यह देखते ही हलधर बलभद्र ने सहसा आक्रोश से भरकर अपने आयुधों—हल तथा मूसल की ओर दृष्टि डाली।

कृष्ण उनका तात्पर्य समझकर हँसते हुए बोले, ''हमें उद्विग्न नहीं होना चाहिए, तात! अर्जुन के हाथ में आयुध हो तो उनके सामने ये राजा तो किसी गिनती में नहीं आते। आयुधधारी अर्जुन तो एक बार देवताओं को भी बचकर नहीं जाने देंगे। तो भी आप विश्वास रखें। यदि अर्जुन को हमारी सहायता की आवश्यकता होगी तो हम तत्पर ही हैं।''

हलधर संतुष्ट होकर बोले, ''किंतु ये मूर्ख यह उचित नहीं कर रहे हैं, देवकीनंदन। वैसे मुझे आज अपार हर्ष हो रहा है कि हमारी बुआ पृथा के पुत्र पांचों महाबली पांडव उस कुचाली के लाक्षागृह से बच गए हैं!''

क्षत्रियों को इस प्रकार अकेले अर्जुन पर आक्रमण करते देखकर ब्राह्मणों को क्रोध आ गया। वे अपने दंड तथा कमंडल हिलाते हुए आकर उनके समीप ही एकत्र हो गए और बोले, ''तुम डरना नहीं, वत्स, हम भी तुम्हारे साथ इन अनाचारी क्षत्रियों से युद्ध करेंगे।''

अर्जुन ने हँसकर कहा, ''आप सभी एक ओर होकर देखते रहें। इन सबका आवेश तो मैं अभी पलमात्र में तृप्त किए देता हूं।''

अर्जुन और भीम को उस रूप में युद्ध के लिए तत्पर देखकर दंभी कुटिल राजाओं ने तत्काल धर्म का आश्रय लेकर घोषणा कर दी, ''कोई चिंता नहीं, धर्म के अनुसार युद्ध की इच्छा से तत्पर खड़े ब्राह्मण का वध करना भी शास्त्रानुकूल ही माना जाता है! मारो!''

क्षत्रियों ने झपटकर उनको अपनी चपेट में लेना चाहा, किंतु उसी समय भीम ने अपना अद्‌भुत शाल-दंड नचाकर उन पर धावा बोल दिया। एक साथ कितने ही क्षत्रिय उस झपाटे में आकर गिर पड़े। हाहाकार मच गया और इस बीच अर्जुन ने स्वयंवर वाले धनुष पर ही प्रत्यंच चढ़ाकर स्वयं भी विकट वेग से प्रखर बाणों की वर्षा आरंभ कर दी। द्रौपदी के भ्राता धृष्टद्युम्न ऐसे अवसर के लिए पहले से ही तत्पर खड़े थे। उन्होंने पांचाल सैनिकों को ललकारकर

आदेश दिया, किंतु अर्जुन ने हँसकर कहा, ''आप मात्र दर्शक बनकर देखें, राजपुत्र! मैं अपनी पत्नी की रक्षा करने में समर्थ हूं। इन कीट-पतंगों को मैं कुछ नहीं गिनता!''

फिर अर्जुन ने किंचित हँसी के साथ पांचाली को देखकर कहा, ''शुभे, तुम निर्भय एक ओर खड़ी रहो। मुझे इन सबको आज शिक्षा देने का अवसर मिला है, तो तुमको कौतुक देखने का!''

निर्भीक पांचाली ने मानो पूर्ण विश्वास के साथ मृदु हँसी से अपने विजेता पति की अर्चना की और निश्चल, निर्भीक वहीं खड़ी रही। उसको मानो विश्वास था कि लक्ष्य को वेधकर उसको पाने वाला महाधनुर्धर कोई साधारण ब्राह्मण नहीं, विलक्षण धनुर्धर है। वह अवश्य पत्नी की रक्षा करने में समर्थ है।

आक्रमण का वेग बढ़ गया था और उसी गति से भीम तथा अर्जुन की ओर से प्रत्याक्रमण होने लगा। देखते ही देखते कितने ही योद्धा आहत होकर हाहाकार करते हुए तड़पने लगे। राजाओं की यह गति देखकर कौरवों को भी रोष आ गया और वे भी युद्ध में कूद पड़े।

दुर्योधन आदि कौरव भी रंगमंडप में शस्त्र लेकर ब्राह्मणों पर ही टूट पड़े। किंतु किसी को आघात पहुंचता, इसके पहले ही अर्जुन के बाणों ने उन सबको जहां का तहां स्तंभित-सा कर दिया। कौरवों का यह हाल देखकर उनका रक्षक अंगराज कर्ण भी अपना धनुष उठाकर युद्ध करने लगा। अर्जुन और कर्ण में कुछ देर तक भयंकर युद्ध होता रहा। कर्ण को देखकर अर्जुन ने अचानक ही कई तीक्ष्ण बाण मारकर उसे विह्वल कर दिया। कर्ण मूर्च्छित-सा होने लगा। तब उसको लगा कि उसके समक्ष आज निश्चय ही अर्जुन के समान ही कोई कुशल धनुर्धर आ गया है। वह कौतुक छोड़कर संहारक बाणों का प्रयोग करने लगा। दोनों का युद्ध कुछ देर तक बड़े विकट वेग से चलता रहा। अर्जुन के समस्त बाणों को तिल-तिल काटकर कर्ण ने एक बार जोर से सिंहनाद-सा किया। दर्शकों में उसके पराक्रम की सराहना होने लगी।

किंतु अगले ही क्षण अर्जुन ने उसका धनुष काटकर उसे बीसों बाणों से बींध डाला।

कर्ण को लगा कि उस ब्राह्मण युवा को परास्त कर पाना असंभव-सा है। तब उसने विचलित होकर कहा, ''विप्रवर, आप तो वीर शिरोमणि लगते हैं! आपका हस्तलाघव तो किसी सामान्य ब्राह्मण योद्धा का नहीं लगता। आप अपना वास्तविक परिचय दीजिए।''

अर्जुन ने हँसकर कहा, ''मैं कोई देवता-राक्षस तो नहीं हूं, गुरुकृपा से मैंने युद्धकौशल की शिक्षा प्राप्त की है। अंगराज, आज मैं तुम्हारी युयुत्सा को

तृप्त करने ही आया हूं, युद्ध करो!''

अर्जुन की गूढ़ बात सुनकर न जाने कर्ण के मन में क्या आया कि वह सहसा ही युद्ध से विरत होकर दूर हट गया।

कर्ण के हटते ही कौरवों के उत्साह पर पानी फिर गया। वे भी एक-एक करके युद्ध से हट गए। लक्ष्य वेध कर द्रुपदकुमारी को जीतने वाले उस ब्राह्मण युवा का हस्तलाघव देखकर सभी चकित थे।

उसी समय महामल्ल के रूप में लोकविख्यात मद्रराज शल्य सहसा ही लपककर उस महाकाय योद्धा से भिड़ गए, जो शालवृक्ष से ही क्षत्रियों पर आघात करता हुआ उनको आहत कर रहा था। यमराज के दंड के समान उस वृक्ष के तने से ही प्रहार करता हुआ वह महाबली सभी को आतंकित कर रहा था। गंधर्वों को भी मल्लयुद्ध में पराजित करके यश कमाने वाले मद्रराज शल्य से यह सहन नहीं हुआ। उनको लगा कि आदिकाल के गुहावासी मानवों की भांति बिना अस्त्र-शस्त्र के ही ये दोनों ब्राह्मण युवा महासुंदरी पांचाली को बरबस ही लिए जा रहे हैं। यह क्षत्रिय योद्धाओं का अपमान था, जो वह सह नहीं पा रहे थे। उनको परास्त करके पांचाली को जीतने की कामना से शल्य ने उस बलशाली योद्धा को सहसा ही पकड़ लिया और दांव लगाकर उन्होंने उसे बरबस ऐसा झटका दिया कि वह धरती से उठ-सा गया। शल्य ने उसे एक ही झटके में उठाकर सिर से ऊपर ले जाने का प्रयत्न किया, किंतु उस महाबली ने अचानक न जाने किस दांव से स्वयं शल्य को पल-भर को स्तंभित किए रखा, फिर एक ही झटके में उनको उठाकर सिर के ऊपर ले गया। वह बड़ी देर तक मद्रराज को आकाश में ही अनगिनत बार घुमाता रहा, फिर उसने एक स्थल पर कोमल घास देखकर उनको वहीं दे मारा। ऐसा लगा मानो वह मद्रराज को मारना नहीं चाहता था, अन्यथा यदि वह चाहता तो उनको मंच पर ही दे मारता और उनके शरीर के चिथड़े उड़ जाते। तो भी धरती पर गिरने के आघात से ही मद्रराज बड़ी देर तक अचेत-से पड़े रहे।

भीम का यह अद्‌भुत कर्म देखकर अर्जुन ने साधु-साधु कहकर अग्रज की सराहना की। वास्तव में नकुल तथा सहदेव के सगे मातुल होने के कारण मद्रराज उनको भी प्रिय थे। यदि भीम ने क्रोध में उनका वध कर दिया होता तो ज्येष्ठ पांडव युधिष्ठिर उनको कभी क्षमा नहीं करते। और विजय के उस पर्व पर तो स्वयं अर्जुन समर्थ होते हुए भी रक्तपात नहीं होने दे रहे थे।

शल्य जैसे पराक्रमी महामल्ल की पराजय देखकर सभी स्तब्ध रह गए। फिर भी कितने ही राजपुत्र अब फिर समूहबद्ध होकर उनसे पांचाली को छीन लेने के लिए तत्पर होने लगे थे।

यह देखकर वासुदेव कृष्ण ने सहसा मंच से उठकर अपना पांचजन्य शंख फूंका। पल-भर में वहां का कोलाहल शांत हो गया। यादवों को सहसा उठकर खड़े होते देखकर सब सशंक-से होकर उसी ओर देखने लगे।

वासुदेव ने निस्तब्धता भंग करते हुए उच्च स्वर में घोष-सा किया, ‘‘समस्त माननीय राजा, राजपुत्र तथा महान् योद्धा सुनें, इन महानुभाव ने अपने पराक्रम से स्वयंवर में निश्चित शुल्क देकर, उस विकट लक्ष्य को वेधकर, विधिवत् पांचाल की राजदुहिता को प्राप्त किया है। धर्मपूर्वक पांचाली को जीतने वाले इन श्रेष्ठ योद्धा के साथ इस प्रकार उनको सर्वथा अरक्षित अथवा निर्बल समझकर उनसे युद्ध करना अनाचार है। यह अधर्म है। यद्यपि यह कल्पना ही मूढ़ता है कि आप सब अथवा कोई भी उनको परास्त करके उनसे पांचाल की माननीया राजदुहिता को छीन सकता है। आप लोगों ने ध्यान नहीं दिया कि पांचाल के महापराक्रमी राजपुत्र धृष्टद्युम्न स्वयं अपनी विशाल सेना को सन्नद्ध करके उनकी रक्षा को तत्पर हैं। किंतु इन महाप्रतापी धनुर्धर ने ही अपनी पत्नी की रक्षा स्वयं करने में अपने को समर्थ घोषित करके उनको वर्जित कर दिया और अब तक वे पराक्रम के साथ अपनी और पांचाली की रक्षा भी करते ही रहे हैं। तो भी यदि आपमें से कोई उन पर अब भी आक्रमण करना चाहता हो तो मेरा निवेदन सुने, हम यादवों का महाबल लेकर यहां मात्र पांचालराज द्रुपद के आदेश से इस स्वयंवर-समारोह की रक्षा के निमित्त ही आए हैं। और अपने अग्रज हलधर बलभद्र का आदेश मानकर मैं आप सबको सावधान करता हूं कि अब इन विजेता धनुर्धर पर आक्रमण करने वाला व्यक्ति महाबली हलधर की आन का उल्लंघन करेगा और यादवों को इस युद्ध में रक्तपात करने को विवश करेगा!’’

सभामंडप में मात्र वासुदेव का गंभीर घोष मानो अब भी प्रतिध्वनित हो रहा था। सन्नाटा छाया रहा। फिर योद्धाओं का समुदाय बेबसी के साथ युद्ध की कामना त्यागकर लौट पड़ा और अपने-अपने आवास की ओर जाने लगा।

विस्मय के साथ इस विचित्र समारोह की चर्चा करते हुए दर्शक भी उत्साह से भरे हुए, सभामंडप से निकलकर अपने-अपने ठिकानों की ओर चल पड़े। ब्राह्मणों की भीड़ के बीच से पांचाली के साथ भीम और अर्जुन को बड़ी कठिनाई से मुक्ति मिली। दोनों पराक्रमी भ्राताओं के बीच पूर्णतः सुरक्षित, निर्भीक पांचाली मुसकराती हुई उनके साथ-साथ चल रही थी।

कांपिल्य नगरी के एक कोने में पहुंचकर पांचाली विस्मित-सी हो गई। यहां तो वह कभी आई ही नहीं थी! किंतु आसपास का वातावरण देखकर उसने

अनुमान लगा लिया कि यह कुंभकारों की वीथी थी। एक द्वार पर खड़े होकर धनुर्धर ने सहसा ही पुकारकर कहा, ''अंबा, हम भी भिक्षा लेकर आ गए!''

भीतर से एक कोमल, स्नेह-भरा स्वर सुनाई पड़ा, ''तुम सभी उसका उपभोग करो!'' साथ ही द्वार खुला। उस अवस्था में भी सामने खड़ी स्त्री अत्यंत रूपवती तथा तेजस्विनी जान पड़ी। द्रौपदी उसको देखती ही रह गई। द्वार खोलते ही उसकी दृष्टि दोनों पुत्रों के साथ खड़ी पांचाली पर पड़ी तो उसने दांतों तले जीभ दबाकर कहा, ''हाय, मैंने यह कैसी अनुचित बात कह दी!''

पांचाली स्वयं स्तब्ध-सी होकर उस पर विचार करके लज्जित हो रही थी। यह तो निश्चित ही है कि यह उनकी माता है....किंतु ऐसी बात कहने के कारण वह स्वयं भी खिन्न हो उठी थीं।

वह पांचाली को साथ लेकर भीतर पहुंची, जहां तीन-तीन सुदर्शन युवक धरती पर ही विश्राम कर रहे थे।

उनमें से सबसे ज्येष्ठ लगते तेजस्वी गौर वर्ण के युवक को संबोधित करके मां ने कहा, ''वत्स! यह निश्चय ही पांचालराज द्रुपद की पुत्री है। किंतु बिना देखे ही मेरे मुंह से निकल गया कि तुम सब मिलकर उसका उपभोग करो। अब तुम कोई ऐसा उपाय करो कि पांचाली को कलंक भी न लगे और मेरा वचन भी मिथ्या न हो।''

कुछ देर तक उन पांचों भाइयों के बीच चर्चा चलती रही। ज्येष्ठ युधिष्ठिर ने कहा कि अर्जुन ने उसको पराक्रम से प्राप्त किया है, अत: उनको पांचाली से विधिवत विवाह करना चाहिए। किंतु अर्जुन इसके लिए तैयार नहीं थे। ज्येष्ठ भ्राताओं के रहते वह अपना विवाह करना अधर्म मानते थे।

कुछ देर तक तो चुप्पी छाई रही। सभी राजदुहिता पांचाली की ओर एकटक देखते रहे।

विधाता ने मानो स्वयं ही अपने हाथों से गढ़कर पांचाली की कमनीयता को संवारा था। वह अपनी अनुपम शोभा तथा रूपयौवन से संसार के किसी भी पुरुष का मन मोहित कर लेती थी। पांचों उसकी ओर अपलक देख रहे थे। और स्वयं पांचाली उन्हीं की ओर अत्यंत आत्मीयता-भरी दृष्टि से निहार रही थी। उसकी कजरारी आंखों में उनके लिए मोह जाग उठा था। वे भी पांचाली के प्रति आसक्त हो उठे थे। अंतत: युधिष्ठिर ने अपने भ्राताओं का मन भी भांपकर कहा, ''तो फिर यही हो! पांचाली हम सभी भ्राताओं की पत्नी होगी!''

द्रौपदी पल-भर तो स्तब्ध रही, फिर उसने नेह के साथ उन सबकी ओर निहारकर सलज्ज मंद हँसी के साथ आंखें झुका लीं।

इस विचित्र निर्णय पर सभी चुप थे। सन्नाटा छाया रहा। अचानक तभी

वासुदेव कृष्ण तथा बलदेव ने प्रवेश किया और अपना नाम तथा गोत्र बताकर 'बुआ' कहते हुए कुंती को प्रणाम किया। वासुदेव कृष्ण को वहां देखने के बाद पांचाली पूरी तरह से आश्वस्त हो गई। कृष्ण वहां अधिक देर नहीं रहे। वह चाहते थे कि अभी पांडवों का रहस्य न खुले तभी ठीक होगा।

जाते-जाते वासुदेव ने मधुर हँसी के साथ पांचाली को आशीर्वाद देते हुए कहा, "तुमको जिनकी प्रतीक्षा थी, ये वही सव्यसाची हैं और यही पांचों पांडव वीर हैं! इनको पाकर तुम निश्चय ही सारे आर्यावर्त की परम सौभाग्यवती राजवधू मानी जाओगी।"

कुछ ही देर बाद पांचालराज के पुरोहित आए और पांडवों से उनका कुलगोत्र पूछने लगे।

फिर पांचालराज का आमंत्रण पाकर पांडवों ने राजप्रासाद में जाकर उनका आतिथ्य ग्रहण किया। उसी समय उन्होंने पहली बार महाराज द्रुपद को अपना परिचय दिया। सुनकर पांचालों के बीच हर्षोल्लास का सागर-सा उमड़ पड़ा। कांपिल्य में रात-दिन उत्सव मनाया जाने लगा।

एक साथ पांच पतियों की पत्नी बनने की बात पर पांचालराज को कदापि सहमत नहीं किया जा सकता था। वह इस महान घटना से तो परम संतुष्ट थे कि उनकी मनोकामना देवताओं ने सफल कर दी थी। उनकी पुत्री अंत तक उसी महाधनुर्धर द्वारा ही प्राप्त की गई थी जिसका वह सपना देखा करते थे। किंतु यह कैसे हो सकता है! पांच-पांच पतियों से पांचाली का विवाह तो पांचाल के गौरवशाली कुल के लिए कलंक की बात होगी।

किंतु उस युग के परम प्रतिष्ठित महर्षि व्यास ने आकर उनकी शंका दूर कर दी। और उनके वचनों को प्रमाण मानकर पांचाली का विवाह-संस्कार एक-एक दिन के अंतर से पांचों पांडवों के साथ संपन्न कर दिया गया। विवाह के अवसर पर पांचालों ने पांडवों को अपार संपदा उपहार में दी। पांचालराज ने स्वयं ही उनको इतना धन, वाहन तथा दास-दासी आदि दिए कि वह किसी राजा से भी अधिक संपन्न लगने लगे। यादवों की ओर से कृष्ण ने भी अनेक उत्तम उपहार देकर पांडवों को प्रसन्न किया।

विवाह के बाद पांडव कोई एक वर्ष तक पंचाल में ही रहकर आनंद से पांचाली के साथ विहार करते रहे।

तब एक दिन हस्तिनापुर से कुरुकुल के महामंत्री विदुर अपने साथ पांचालराज तथा पांडवों के लिए अनेक बहुमूल्य उपहार लेकर आ पहुंचे। महाराज धृतराष्ट्र तथा महारानी गांधारी ने विशेष रूप से अपनी पुत्रवधू पांचाली

के लिए अनुपम वस्त्र तथा रत्नजटित अलंकार आदि भेजे थे।

विदुर से हस्तिनापुर का सारा समाचार ज्ञात हुआ। कुंती, कृष्ण, बलदेव तथा पांचाली सहित पांडवों को विदुर ने हस्तिनापुर में मची हलचल के विषय में विस्तार से बताया। उनसे पता लगा कि महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य तथा समस्त सभासदों के आग्रह पर राजा धृतराष्ट्र ने पांडवों को अब हस्तिनापुर बुलवाया है। उनसे ही ज्ञात हुआ कि यहां से लौटकर जाने के बाद से ही कौरवों को घोर अवमानना भुगतनी पड़ी। वे तो यहीं पांडवों के साथ घात करने को तैयार थे, किंतु अनुभवी योद्धा आर्य भूरिश्रवा ने उनको समझाया तो वे मानकर चुपचाप लज्जित-से लौटकर गए थे। अब भी दुर्योधन तथा उसके कुटिल अनुगामी तो नहीं ही चाहते कि पांडवों को फिर से वहां आने दिया जाए।

विदुर ने खिन्न होकर कहा, ''हमारे अग्रज राजा धृतराष्ट्र तो जैसे कुरुकुल की परंपरा को कलंकित करने के लिए ही जनमे हैं। उनको अपने पुत्र दुरात्मा दुर्योधन से अंधमोह है और वे उस कुटिल पुत्र की इच्छा के अनुसार ही चलते हैं। किंतु प्रजा और राज्य के महान मंत्रियों और कुलपुरुषों की अवहेलना तो नहीं कर सकते। हम सभी चाहते हैं कि पांडवों को उनका अधिकार दिया जाए। हारकर महाराज ने पांडवों को बुलाने के लिए मुझे भेजा तो है, किंतु उनके मन में क्या है, कुछ कहा नहीं जा सकता। ऐसे तो अब पांडवों के साथ पांचालराज तथा अन्य संबंधियों, विशेषकर यादवकुल का बल देखकर उनको चिंता होने लगी है। महात्मा भीष्म ने तो स्पष्ट रूप से कह दिया है कि हमको जितना तुम्हारे पुत्रों की चाह है, पांडु के पुत्र भी हमें उतने ही प्रिय हैं। हम उनको ऐसे भटकते नहीं देख सकते। उनको उनका भाग तो देना ही होगा...''

कुछ देर शांत रहने के बाद कुंती ने कहा, ''तुमने ही पुत्रों की भांति पांडवों की रक्षा की है, महाभाग! अब तक मैं तो जैसे कोयल के बच्चों का पालन करती रही! मैं इनका भविष्य नहीं जानती। अब तुम इनको संभालो। जो चाहो करो। मुझे कुछ पता नहीं।''

अंबा की आंखें भरी देखकर भीम कुछ बोलने को ही थे कि युधिष्ठिर ने उनको दबा दिया, फिर भी अपने भाइयों को संतुष्ट करते हुए वह स्वयं बोले, ''अंबा, हमारे इन विश्वविजय करने में भी समर्थ अनुजों के रहते तुम इस प्रकार आंसू मत बहाओ। हमको अपना अधिकार दिलाने के लिए पितृव्य और पितामह भीष्म जैसे महान् लोग प्रयास कर रहे हैं तो तुमको चिंता कैसी? प्रारब्ध जो करना चाहे करे, किंतु ऐसा तो नहीं कि हर बार प्रारब्ध हमें ही दंड देता रहेगा। अब हस्तिनापुर जाने का उचित समय आ गया है।''

कृष्ण ने कहा, ''बुआ, तुम्हारे साथ हम—मैं और हलधर भी हस्तिनापुर

चलेंगे!''

तब मानो कुंती को विश्वास हो गया। वह हँसती हुई बोलीं, ''जब तुम सभी साथ हो तो प्रारब्ध भी हमारे पुत्रों का क्या कर लेगा!''

उनका उछाह देखकर सभी हँस पड़े।

पांचाली ने बढ़कर सहसा अंबा कुंती के चरण छू लिए। उस तेजस्विनी अंबा के ही प्रताप से पांडवों को जीवन के इस सोपान तक आने का अवसर मिला है। अब उनकी ही तपस्या से पांडवों की काल भी रक्षा करेगा— यह पांचाली का विश्वास था।

पांच

और पांडवों को वास्तव में राज्य मिल गया! उस दिन तो सुनकर पांचाली कुछ समझ ही नहीं पाई थी, किंतु उसको खांडवप्रस्थ पहुंचने के बाद वास्तविकता का भान हुआ। युधिष्ठिर ने उसको बताया था कि यही हमारे पूर्वजों की वह धरती है, जहां हमारे कुल का प्राचीन राज्य स्थापित था। फिर हमारे आदि पुरुष महाराज पुरूरवा ने ब्राह्मणों से भी कर लेना चाहा तो उनके कोप से विद्रोह-सा हो गया और यहां की सारी शोभा नष्ट हो गई। उसके बाद से ही यह स्थान उजाड़ पड़ा है। अब हम फिर से इसे बसाकर अपनी नई राजधानी बनाएंगे।''

पांचाली हतप्रभ-सी देखती रही। किंतु उसको पता था कि स्वयं वासुदेव कृष्ण ने ही पांडवों को अपने भाग में इसी खांडववन को लेने की प्रेरणा दी थी, अत: वह कुछ बोली नहीं। हँसकर रह गई। कृष्ण का चमत्कार इससे पूर्व वह देख चुकी थी और उन पर पूरी तरह से विश्वास करने लगी थी। कृष्ण जो भी चाहें, कर सकते हैं। उनके कहने पर ही तो पांचाली के स्वयंवर-समारोह का आयोजन किया गया था और वह सफल ही रहा। वासुदेव की इच्छा के अनुसार, अर्जुन ने प्रकट होकर लक्ष्यवेध करके उसे प्राप्त किया। पिता को कृष्ण ने जो वचन दिया था वह पूरा करके रहे तो फिर पांडवों के लिए इस दारुण वन को राजधानी बनाने की प्रेरणा देने के पीछे भी कृष्ण का कोई विशेष उद्देश्य तो होगा ही।

वह सहसा कृष्ण की ओर देखकर हँस दी।

कृष्ण ने भी हँसकर ही कहा, ''शुभे, तुम वास्तव में पांडवों के लिए शुभ बनकर आई हो। वन-वन भटकते पांडवों को तुम्हारे आते ही उनका पैतृक राज्य मिल गया! अब तो तुम स्वयं ही इस राज्य की महारानी हो। इसके राजा महाराज युधिष्ठिर हैं। दोनों मध्यम पांडव भीमसेन और अर्जुन तथा माद्रीनंदन नकुल और सहदेव— ये चारों लोकपालों की भांति इस राज्य के रक्षक हैं। और

तुम स्वयं इस राज्य के विशाल रथ की वह धुरी हो, जिसके बल पर यह रथ चलता है। अब तुम अपना कर्तव्य निश्चित करके इसका संचालन करो...और हम सभी कर्मठ मंत्रियों की भांति महाराज का सहयोग करेंगे।''

पांचाली को लगा कि हँसी-हँसी में ही कृष्ण ने वास्तव में उसको पलक झपकते पांडवों की प्रिया के पद से उठाकर सहसा ऐसे उच्च सिंहासन पर आसीन कर दिया, जहां वह स्वयं अपने को एक विलक्षण गरिमा से ओत-प्रोत पाने लगी।

समय मानो कृष्ण के संकेत पर ही नाच रहा हो...

देखते ही देखते यक्षों, राक्षसों तथा भूतों से भरा वह विकट वनप्रांत एक नया ही आकार लेने लगा।

एक दिन पांचाली अत्यंत व्यस्त-सी होकर अतिथियों के सत्कार में लगी थी कि कुंती ने आकर कहा, ''तुमको यह हो क्या गया है, वधू? कभी अपना भी तो ध्यान रखा करो। तुम रानी हो—इंद्रप्रस्थ की महारानी। तुमको इतने दास-दासियों के रहते स्वयं यह सब करने की क्या आवश्यकता है?''

पांचाली ने हँसकर आंचल से ही माथे का स्वेदबिंदु पोंछा और बोली, ''अब मुझे अनुभव होता है, अंबा कि तुमने किस प्रकार अपने पुत्रों का पालन किया होगा। इसमें श्रम तो है, किंतु आनंद भी तो है न!''

कुंती ने कहा, ''यह तो तुमको तब अनुभव होगा, वधू, जब तुम पुत्रवती होकर उनका सुख अनुभव करोगी।''

''वही तो कर रही हूं, अंबा। वासुदेव ने तो ऐसा मंत्र दिया कि अब ये सब मुझे अपनी संतान ही लगते हैं। इनको तृप्त होते देखकर वास्तव में अपार सुख मिलता है। तुमको तो इस सुख का अनुभव है, अंबा।''

कुंती ने सहसा ही राजवधू की बात समझी तो उसको खींचकर छाती से लगा लिया और आशीर्वाद दिया, ''तुम जीवन-भर ऐसे ही सुख का अनुभव करो, पुत्री, इसी में महारानी का ही नहीं, नारी मन की सार्थकता है। तुम वास्तव में अंबा हो। प्रकृति ने अंबा बनाकर नारी को वह विलक्षण गरिमा प्रदान कर दी है जिसकी कोई तुलना नहीं। यही तुमको जीवन की सार्थकता का बोध कराती है। सुखी रहो, सौभाग्यवती रहो।''

और इन सुखों को सहज ही भोगती हुई पांचाली को भी मानो सब कुछ सपना-सा लगता था! यह सब कब हो गया! वह स्वयं इसका बहुत कुछ करती रही है, किंतु वह स्वयं नहीं जानती कि कब वह विशाल इंद्रप्रस्थ राज्य की महारानी बन बैठी। किसी ने मानो जादू से सब कुछ बदल डाला। इंद्रजाल जैसा लगता था, किंतु था वह सत्य ही।

और एक दिन पांचाली ने सुना कि महाराज ने राजसूय करने का निश्चय किया है। उन दिनों वासुदेव कृष्ण द्वारका चले गए थे। महाराज युधिष्ठिर ने सारथी इंद्रसेन को रथ सहित भेजकर आग्रह करके उनको बुलवाया था।

उस समय इंद्रप्रस्थ में महारानी द्रौपदी के अधीन पांडवों का अंतःपुर अनेक राज्यों की सुंदर रमणियों से भरा जगमग करता रहता था। पांचाली के अतिरिक्त पांडवों की और भी पत्नियां आ गई थीं।

शिवि राज्य की राजपुत्री देविका राजा गोवासन की पुत्री थी। स्वयंवर में उसने राजा युधिष्ठिर का वरण किया था।

काशिराज की एक कन्या का नाम था बलंधरा। कहते हैं कि उसके स्वयंवर में शुल्क में बल ही रखा गया था। अर्थात् जो बलशाली हो, वही उसका पति होगा। स्वयंवर में अपार बल दिखाकर सबको संतुष्ट करने के बाद उस राजकन्या को भीमसेन ने प्राप्त किया था। उसे बलंधरा कहा जाता था, ऐसे वह अत्यंत रूपवती थी।

इस बीच अर्जुन ने वासुदेव की सहमति से उनकी अनुजा मधुरभाषिणी सुभद्रा का भी हरण कर लिया था। अंत में यादवों ने उनको योग्य वर मानकर सुभद्रा का विवाह उनके साथ ही कर दिया था।

चेदि राज्य की राजकन्या को नकुल ने स्वयंवर में प्राप्त किया था। करेणुमती नामक वह सुंदरी अपने आचार-व्यवहार से सबको मोहित कर लेती थी।

इसी प्रकार मद्रराज के वंश के राजा द्युतिमान की पुत्री विजया को सहदेव ने भी स्वयंवर में ही प्राप्त किया था और वह अतीव रूपसी थी। इसके पूर्व वारणावत से बच निकलने के बाद महावन में भीम ने हिडिंब नामक राक्षस का वध कर डाला था और हिडिंब की बहन रूपवती हिडिंबा ने भीम पर अनुरक्त होकर देवी कुंती तथा युधिष्ठिर की अनुमति से भीम को पति के रूप में वरण किया था। वह मात्र एक पुत्र उत्पन्न होने तक ही भीम के साथ रही। फिर अपने राक्षस राज्य की रानी बनकर वहां शासन करने लगी थी।

इन सभी एक से एक सुंदरी रानियों के बीच अपने कमनीय रूपयौवन के बल पर चंद्रमा की भांति निर्द्वंद्व शासन करती पांचाली का गौरव देखते ही बनता था।

वासुदेव कृष्ण आए और धर्मराज युधिष्ठिर से उनकी कई दिनों तक वार्ता होती रही। द्रौपदी को यह सुनकर चिंता हो रही थी कि राजसूय के लिए मगध के अभिमानी महाबली जरासंध पर विजय प्राप्त करना अनिवार्य था और यही

सुनकर महाराज का मन हिचक रहा था। किंतु पांचाली को विश्वास था कि वासुदेव कृष्ण यदि चाहेंगे तो कोई भी बाधा धर्मराज के राजसूय को बाधित नहीं कर सकती। यही हुआ। पांचाली को अपने पतियों के पराक्रम पर अटल विश्वास था।

एक दिन मध्यम पांडव भीम और अर्जुन के साथ कृष्ण ने मगधराज को नीति से जीतने का संकल्प लेकर इंद्रप्रस्थ से प्रस्थान कर दिया।

लगभग दो मास के पश्चात सहसा सारे आर्यावर्त में विस्मय के साथ कहा-सुना जाने लगा कि यादवों का सबसे विकट शत्रु जरासंध अंततः मध्यम पांडव से द्वंद्व-युद्ध करते समय मारा ही गया।

फिर राजसूय की तैयारी होने लगी।

युधिष्ठिर की आज्ञा से चारों अनुजों ने दिशा-दिशा को विजय करने के लिए प्रस्थान किया। और कुछ ही समय के बाद उनकी दिग्विजय से पांडवों का ऐश्वर्य चौगुना हो गया। अर्जुन ने उत्तर दिशा की विजय करके अपार संपदा प्राप्त की थी। उनके आने के कुछ ही दिनों बाद भीम, नकुल तथा सहदेव भी विजय करके अपने साथ अतुल संपदा लेकर आए। इंद्रप्रस्थ का राजकोष रत्नों से भर गया।

फिर महाराज युधिष्ठिर ने विधिवत् राजसूय यज्ञ की दीक्षा ली। देश-देश के राजा आने लगे।

युधिष्ठिर के अनुरोध पर हस्तिनापुर से पितामह भीष्म के साथ कुरुकुल के सभी पुरुष-स्त्री तथा परिचारक तक राजसूय यज्ञ में भाग लेने के लिए सहर्ष इंद्रप्रस्थ आए। उनके साथ कौरवों की माननीया भगिनी दुःशला का पति जयद्रथ भी आया था। सौवीर के उस संबंधी की भांति ही कुरुकुल के और भी कितने ही संबंधी यज्ञ के अवसर पर आए।

आर्य भीष्म के आग्रह पर युधिष्ठिर ने आदर तथा स्नेह के साथ अपने सभी बंधु-बांधवों को यज्ञ के विभिन्न कार्यों को संभालने के लिए नियुक्त कर दिया।

पांचाली को यज्ञ के अवसर पर आए, देश-देश के चारों वर्णों के अतिथियों की सारी सुख-सुविधा का ध्यान रखना पड़ता था। चाहे किसी भी वर्ण का कोई भी व्यक्ति हो, पांडवों की महारानी राजपुत्री द्रौपदी से मिलकर अपने मनचाही वस्तु का आग्रह करता तो कभी निराश नहीं होता था। स्वयं कुंती अपनी पुत्रवधू की तत्परता देखकर अपने पुराने दिनों की स्मृतियों में खो जातीं। कुरुराज पांडु के समय में इसी प्रकार वह भी तत्परता से सभी को प्रसन्न करके अपने पुण्यबल से महाराज के लिए शुभकामना अर्जित करती थीं।

महाराज युधिष्ठिर ने तो कोई भेदभाव किए बिना ही कौरव भ्राताओं को हर प्रकार के अधिकार सौंपे थे।

दु:शासन को यज्ञ समारोह में आए समस्त अतिथि वर्ग के भोजनपान की व्यवस्था सौंपी गई थी।

स्वयं ज्येष्ठ कौरव दुर्योधन को युधिष्ठिर ने यज्ञ के अवसर पर कर के साथ संपदा तथा रत्नों आदि के रूप में राजाओं द्वारा लाए गए उपहारों को स्वीकार करने तथा उनको सुरक्षित राजकोष में रखवाने का कार्यभार सौंपा था। और पांडवों के प्रति घोर विद्वेष रखने वाला दुर्योधन उनका ऐश्वर्य-वैभव देखकर चौंधिया-सा रहा था। इतने ही दिनों में वन का राज्य पाकर भी पराक्रम से पांडवों की कीर्ति तथा ऐश्वर्य का विस्तार देखकर दुर्योधन को विश्वास ही नहीं आ रहा था। उसको यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि अनेक राजा इतनी अतुल संपदा तथा विविध रूपों में बहुमूल्य उपहार लेकर आते थे मानो उनमें होड़-सी लगी हो कि महाराज युधिष्ठिर उनके ही धन से राजसूय यज्ञ पूरा करें!

राजा युधिष्ठिर तो मानो समृद्धि में देवता वरुण की समानता कर रहे हों। अनेक सुंदर पुष्करिणियों तथा मोहक जलाशयों से घिरे कितने ही विमान जैसे ऊंचे और भव्य प्रासादों में पांडवों ने दूर-दूर से आए अतिथियों के निवास की व्यवस्था की थी। हर प्रकार के ऐश्वर्य के साधनों तथा सुंदरता में अतुलनीय सारे भवन सेनाओं द्वारा सुरक्षा के घेरे में थे। कहीं किसी प्रकार का उपद्रव होने का अवकाश नहीं था। एक ओर ब्राह्मणों के लिए सुविधाजनक आवासों का निर्माण किया गया था, जिनमें विद्वान् तथा श्रीसंपन्न महात्माओं का निवास था।

राजसूय यज्ञ में आए हुए सभी जनों को पूरी तरह से संतुष्ट करके पांडवों ने अपार यश प्राप्त किया। यज्ञ समारोह अन्न तथा भक्ष्य-भोज्य उत्तम पदार्थों से भरा-पूरा था। यज्ञ के अवसर पर आए सभी अतिथि कितने ही दिनों से सुस्वादु व्यंजनों सहित उत्तम भोजन प्राप्त करके पूर्णत: तृप्त अनुभव करते थे। कोई भी उस अवसर पर भूखा नहीं रहने पाता था। महारानी पांचाली स्वयं भी अंत:पुर के साथ ही समस्त अतिथियों का सत्कार करने में व्यस्त रहती थीं। कोई भी ऐसा नहीं था जो किसी भी कारण असंतुष्ट दीखता हो। भोजन के पश्चात् उनको रत्नों का ही उपहार दिया जाता था।

दुर्योधन यह सब देखकर मन ही मन सुलगता रहता था— पांडवों का राजकोष मानो अक्षय हो। उसमें से विपुल मात्रा में धन-रत्न आदि का निरंतर दान किया जा रहा था। वह सब व्यय स्वयं आर्य विदुर की देख-रेख में होता था। वही सुंदर रत्नों को परखकर उनको श्रेणीबद्ध करके रखवाते थे। किंतु राजकोष तो रीतने में ही नहीं आता था। प्रतिदिन विशाल मात्रा में धन निकाला

जाता रहता था, किंतु लगता था मानो दूसरी ओर से नित्य उससे दोगुनी मात्रा में रत्नराशि आकर फिर से कोष में समा जाती थी।

ऐसे तो महाराज युधिष्ठिर ने कहा ही था कि यह सारा धन आप लोग अपना ही समझकर निस्संकोच धर्मकार्यों में व्यय कीजिए; और दुर्योधन ईर्ष्यावश अवसर पाकर एक की जगह चार-चार खर्च करता रहता था, तो भी पांडवों की अथाह संपदा उसे दोबारा उतनी की उतनी ही लगती थी। इस कारण वह मन ही मन प्रबल दाह अनुभव करता था।

यज्ञ का अनुष्ठान विधिवत् चल रहा था। स्वच्छ, मूल्यवान कौशेय वस्त्र धारण करके, इंद्र के समान तेजस्वी महाराज युधिष्ठिर जैसे यजमान से एक से एक योग्य ऋत्विज शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ करा रहे थे। मंत्रशिक्षा में विशारद महर्षियों द्वारा उस महायज्ञ के एक-एक अंग का अनुष्ठान पूरे विस्तार से कराया जा रहा था। महर्षियों द्वारा इडा अर्थात् उच्च स्वर में किए गए मंत्रोच्चार तथा स्तुति आदि के साथ ही तिल आदि शाकल्य पदार्थों की पावन आहुति से मानो देवता भी प्रसन्न होकर युधिष्ठिर को सफल कर रहे थे।

अनुष्ठान के अंतिम चरण में पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा, ''राजन्, अब तुम यहां पधारे समस्त माननीय अतिथियों का अर्घ्य देकर उचित सत्कार करो। शास्त्रों में कहा गया है कि आचार्य, ऋत्विज, संबंधी, स्नातक, प्रिय मित्र तथा राजा—इन छहों का अर्घ्य देकर विधिवत् पूजन करना चाहिए। फिर यह भी निर्देश है कि यदि वे एक वर्ष की अवधि का अंतराल देकर पधारें तब तो निश्चय ही उनका अर्घ्य से ही सत्कार करना उचित है। फिर यहां आए ये राजा-महाराज तो हमारे यहां न जाने कितने दिनों के बाद पधारे हैं और अब न जाने कितने दिनों के बाद फिर आएं, अतः तुम उनको अर्घ्य अर्पित करके उनका पूजन करो।''

युधिष्ठिर ने तत्काल पितामह की आज्ञा के अनुसार अर्घ्य द्वारा समस्त माननीय अतिथियों का सत्कार तथा अर्चन करने के लिए तत्परता दिखाई। वह जब प्रस्तुत हो गए तो पितामह भीष्म ने ही कहा, ''अब तुम इन सबमें जो परम श्रेष्ठ तथा शक्तिशाली हो, सबसे पहले उसे ही अर्घ्य समर्पित करो।''

युधिष्ठिर ने एक बार समस्त यज्ञमंडप पर दृष्टि दौड़ाई। वहां एक से एक प्रतापी और श्रेष्ठ राजा उपस्थित थे। कुछ सशंक होकर युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म का ही आश्रय लिया और उनसे ही ऐसे श्रेष्ठ तथा उत्तम व्यक्ति का निश्चय करने को कहा जो अग्रपूजा के योग्य हो।

भीष्म ने स्वयं एक दृष्टि यज्ञमंडप में उपस्थित राजसमाज पर डालकर कुछ देर विचार किया। फिर बोले, ''कुंतीनंदन, इस विशाल राजसमाज में तो

वासुदेव कृष्ण ही अपने तेज, बल एवं पराक्रम से सूर्य की भांति देदीप्यमान हो रहे हैं। मेरे विचार से तो वही अग्रपूजा के अधिकारी हैं।''

उनका निर्णय सुनते ही कनिष्ठ पांडव माद्रीनंदन सहदेव ने वासुदेव कृष्ण को अर्घ्य अर्पित करके उनका पूजन किया।

और कृष्ण ने शास्त्रीय विधि के अनुरूप ही सहदेव द्वारा पांडवों की ओर से निवेदित अर्घ्य को स्वीकार कर लिया।

यह देखकर चेदिराज शिशुपाल क्रोधित होकर तीक्ष्ण स्वर में कृष्ण तथा स्वयं भीष्म की कटु आलोचना करने लगा। वह जरासंध का परम प्रिय महाबली सेनापति था और कृष्ण ने ही भीम द्वारा जरासंध का वध करवा दिया था, इस कारण रोष से भरा वह कृष्ण की अग्रपूजा को किसी भी प्रकार सहन नहीं कर पा रहा था।

ऐसे तो वह कृष्ण की बुआ श्रुतश्रवा का ही पुत्र था। वसुदेव की दूसरी भगिनी शूरसेन की राजकन्या श्रुतश्रवा का विवाह चेदिराज दमघोष के साथ हुआ था। उन दिनों उस क्षेत्र के अनेक राजाओं की भांति चेदिराज दमघोष को भी विवश होकर जरासंध की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। यादवों का तो जरासंध घोर शत्रु था ही। कृष्ण ने ही उसके जमाता कंस का वध कर डाला था और दिग्विजय की कामना से उत्तर की ओर लपकने को तत्पर जरासंध की गति वहीं अवरुद्ध कर दी थी, अतः जरासंध को कृष्ण से विशेष वैर था। शिशुपाल को बाल्यकाल से ही न जाने किस कारण यादवों से वैर था। और अपनी माता का कृष्ण के प्रति विशेष अनुराग देखकर भी वह कृष्ण का वैरी हो गया था। उस पर जरासंध का प्रबल प्रभाव था और जरासंध ने उसको अपने पुत्र का-सा स्नेह दिया तो वह पूरी तरह से उसी का होकर रह गया। उसको आशा थी कि वह जरासंध की सहायता से यादवों से कहीं अधिक शक्ति अर्जित करके उनके समान ही प्रभावशाली हो जाएगा। किंतु कृष्ण से उसकी हर टक्कर में उसको मात ही मिलती थी।

विदर्भराज भीष्मक भी जरासंध के अधीन ही थे और उसकी इच्छा के विपरीत नहीं जा सकते थे। उनका महाबली पुत्र रुक्मी भी जरासंध का ही अनुगत था। इसी कारण रुक्मी की शिशुपाल से भी घनिष्ठ मैत्री थी और उसने जरासंध के कहने पर अपनी परम रूपवती भगिनी रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करने के लिए विधिवत आयोजन भी किया था। किंतु वहां तो कृष्ण ने सहसा स्वयंवर को ही रोक दिया। रुक्मी नहीं माना तो कृष्ण ने पूजन के लिए कुलदेवी के मंदिर पर गई रुक्मिणी का हरण कर लिया। जरासंध भी उस समय विदर्भ की राजधानी कुंडिनपुर में ही था, किंतु वे सब मिलकर भी

यादवों की विशाल सेना लेकर कृष्ण की रक्षा करने को आए बलभद्र के कारण कृष्ण का कुछ बिगाड़ नहीं सके थे। रुक्मी को कृष्ण ने भयंकर युद्ध करके बांध लिया था, किंतु बलदेव के कहने पर तथा अपनी प्रिया रुक्मिणी को भी भाई के लिए विकल देखकर कृष्ण ने उसको मुक्त कर दिया था। उसके बाद रुक्मी लौटकर कुंडिनपुर नहीं गया और सीमा पर ही अपनी नगरी भोजकट बसाकर वहीं रहने लगा था।

उस अपमान को शिशुपाल कभी भूल नहीं पाया था। आज इतने विशाल राजसमाज में कृष्ण की अग्रपूजा होते देखकर वह सहन नहीं कर पाया और आक्रोश से भरकर कृष्ण तथा भीष्म की भर्त्सना करने लगा।

उसने भीष्म को वृद्धावस्था के कारण असमर्थ और मूढ़ बताते हुए उनका घोर अनादर किया और बोला, ''कृष्ण है ही क्या? इस यज्ञमंडप में कितने ही पराक्रमी और तेजस्वी राजा उपस्थित हैं, ऐसे में कृष्ण को किस आधार पर प्रथम अर्घ्य का अधिकारी माना जा सकता है? यदि तुम यह सोचकर कृष्ण की पूजा करना चाहते हो कि यह तुम्हारा सबसे बड़ा हितैषी और परम सुहृद है तो यह भी सत्य नहीं, क्योंकि इस मंडप में ही तुम्हारे सबसे बड़े हितैषी स्वयं पांचालराज द्रुपद उपस्थित हैं। अपने को सर्वश्रेष्ठ योद्धा मानने वाले भीष्म, तुमने तो यह अनीतिकारक कृत्य करके अपने को कलंक तथा अपमान का पात्र बना लिया है। तुम क्या इस कृष्ण को आचार्य मानते हो जो द्रोणाचार्य तथा ऋत्विजों में श्रेष्ठ महर्षि द्वैपायन व्यास जैसे पूजनीय की उपस्थिति की अवहेलना करके भी तुम इस गोपकुल के कृष्ण की पूजा करवा रहे हो? यहां तो महान् पराक्रमी अनेक राजा हैं। तुमको क्या यह कृष्ण— छलपूर्वक हत्याएं करने वाला कुटिल योद्धा कृष्ण ही पूज्य लगा? इसे तुम किस कारण पूज्य मानते हो? पराक्रमी भी तो यहां एक से एक बढ़कर आए हैं। राजा द्रुपद की ही भांति यह राजा भीष्मक वयोवृद्ध और उतने ही पराक्रमी हैं। यह महाबली कर्ण तो परशुराम के शिष्य हैं और अपने बल-विक्रम से न जाने कितने राजाओं को पराजित करके इन्होंने कुरु राज्य के राजकोष को अपने विजय के समय लाई गई धनराशि और रत्नों से भर दिया है। तुमको यह पूजनीय क्यों नहीं लगे? धनुर्धर एकलव्य तथा मद्रराज शल्य जैसे महाबली की उपेक्षा करके तुमने कृष्ण की ही पूजा करवाने का विचार किस कारण किया? यदि तुमको इसकी ही पूजा करनी थी तो फिर हम सब राजाओं को यहां बुलाकर हमें अपमानित करने का विचार किया था क्या? कुंतीनंदन युधिष्ठिर, तुम तो अपने धर्म के कारण राजसूय कर रहे हो, इसीलिए हमने तुमको कर दिया है कि चलो, एक धर्मनिष्ठ राजा सम्राट् बनता है तो बने, किंतु लगता है कि तुमको भी सहज ही यश पाकर दंभ हो गया है,

तभी तुम यहां आए महापुरुषों की अवमानना करके इस छत्र-चमर से हीन कृष्ण की पूजा कर रहे हो, जो राजपद से ही वंचित है! यह तो ऐसा ही हुआ मानो किसी नपुंसक का विवाह रचाया जा रहा हो अथवा अंधे को दर्पण देकर उसका रूप दिखाया जा रहा हो। इस कृष्ण की पूजा तो वास्तव में उपहास करने वाली बात ही है। इस अग्रपूजा से किसी राजा-महाराज का अपमान नहीं होता, यह तो उलटे तुम्हारी ही बुद्धिहीनता और इस कृष्ण की हीनता का प्रमाण है। यह गोप दंभ में आकर कितना प्रसन्न हो रहा है, किंतु इसे पता नहीं कि यहां उपस्थित राजाओं का समुदाय इसको घोर तिरस्कार-भरी दृष्टि से देखकर उस पर हँस रहा है...''

युधिष्ठिर अपने संबंधी शिशुपाल को ऐसी बकवाद करते देखकर तुरंत उसके पास गए और उसे समझाने लगे कि महात्मा भीष्म तो हर दृष्टि से आर्यावर्त के समस्त राजाओं द्वारा समादृत और धर्म का तत्त्व जाने वाले महापुरुष हैं। तुम उनका अनादर मत करो। और कृष्ण की महानता से कौन अपरिचित है! उनको अग्रपूजा देने का निर्णय पितामह भीष्म ने धर्म के अनुकूल ही किया है।

किंतु शिशुपाल इस पर भी कृष्ण तथा भीष्म को दुर्वचन कहता ही रहा।

तब संकट में पड़े युधिष्ठिर को सांत्वना देते हुए पितामह भीष्म ने कहा, ''कुंतीनंदन, तुम व्यर्थ इस मूढ़बुद्धि की मनुहार मत करो। यहां बैठे समस्त राजाओं में और तो कोई ऐसा नहीं है जो कृष्ण की अग्रपूजा को अनुचित मानता हो! इसकी जो इच्छा हो, कर ले!''

इस अवहेलना से शिशुपाल और भी संतप्त हो उठा। वह अपने पक्ष के राजाओं को ललकारता हुआ बोला, ''भूपालो, तुम सब तत्पर हो जाओ। मैं यहां तुम सबका सेनापति बनकर आह्वान करता हूं। तुम सब निर्भीक होकर इन पांडवों तथा यादवों की सेनाओं का सामना करने को डट जाओ। हम अपने अपमान का प्रतिकार करेंगे।''

शिशुपाल के साथ रुक्मवान आदि कई राजा युद्ध करने को तैयार होकर खड़े हो गए। आक्रोश में भरे उन राजाओं के चेहरे क्रोध से लाल हो रहे थे। वे रह-रहकर सिंहनाद करने लगे।

तभी कनिष्ठ पांडव सहदेव ने क्रोध के साथ ललकारकर कहा, ''मैंने तो वासुदेव कृष्ण को अर्घ्य अर्पित करके उनकी अग्रपूजा कर दी। अब जिसको यह अच्छा नहीं लगता हो, उसके लिए मेरा एक ही कथन है कि मैं ऐसे समस्त बलवानों के सिर पर पांव रखता हूं! जो भी चाहे मेरे समक्ष खड़ा हो जाए। मैं उसका निश्चय ही वध कर दूंगा।''

सहदेव की ललकार सुनकर तो मंडप में कोलाहल होने लगा। कितने ही ऐसे राजा थे जो सहदेव की सराहना करने लगे। शिशुपाल अपने साथी राजाओं को उत्साहित करके युद्ध का उपक्रम करने लगा। वह फिर से भीष्म की निंदा करने लगा, ''भीष्म, तुम संतानहीन, मूढ़बुद्धि, वृद्ध और मिथ्या धर्म का अनुसरण करने वाले हो और रातदिन इसी कृष्ण जैसे पराक्रमियों की चाटुकारिता करते हुए दिन काट रहे हो। तुमको तो कुरुकुल का अन्नदास बनकर जीवन बिताने की सुविधा मिली हुई है। धर्म और पराक्रम से तुमको क्या काम! तुम जैसे हीन आचरण करने वाले को तो जीने का अधिकार ही नहीं! ये क्रोध से दहकते राजा तुम जैसे मूर्ख को क्षमा कर रहे हैं तो मात्र इस कारण कि तुम निर्बल हो। हमें तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि ये पांडव भी तुम्हारे भुलावे में आकर अनर्थ कर रहे हैं। किंतु इनका भी क्या दोष! स्त्री के स्वभाव वाले तुम जैसे नपुंसक वृद्धों द्वारा जिस कार्य का निर्देश किया जाए, वह तो ऐसा ही होगा।''

पितामह की निंदा सुनकर भीम सहसा क्रोध से गरजकर शिशुपाल की ओर झपटे, लेकिन पितामह भीष्म ने उनको बलपूर्वक अपनी भुजाओं से बांधकर वहीं स्थिर कर दिया और बोले, ''तुम शांत रहो, वत्स! यह क्रोध करके उसी नीच की मनोकामना पूरी करने वाली हिंसा करने का समय यह नहीं है।''

बलवान भीम संभवत: चाहते तो बंधन तोड़कर शिशुपाल का उसी समय अंत कर देते, किंतु पितामह की आज्ञा का उल्लंघन वह नहीं कर पाए।

शिशुपाल उस समय भी हँसी उड़ाता हुआ बोला, ''अरे, भीष्म, उसे छोड़ दो। यहां उपस्थित राजा अभी देख लें कि छल से जरासंध जैसे महात्मा की हत्या करने वाला यह भीम किस प्रकार मेरे क्रोध से दग्ध हो जाता है।''

तो भी भीष्म ने भीम को समझाते हुए कहा, ''तुम इस मूर्ख की चिंता मत करो। मुझे तो लगता है कि इस मूढ़ का काल ही इससे यह सब करवा रहा है। मैंने सुना है कि इसको बाल्यकाल में ही कृष्ण ने कोपकर मार डाला होता। किंतु इसकी माता ने कृष्ण से विनती की तो इन्होंने उनको वचन दिया था कि शिशुपाल के सौ अपराध मैं क्षमा कर दूंगा। और यदि इस दुष्ट ने कभी इस सीमा को पार कर दिया तो मैं क्षमा नहीं करूंगा....यह निश्चय ही कृष्ण का अपराधी है और उनके ही हाथों इसका अंत होने वाला है।''

यह सुनते ही शिशुपाल ने चीखकर कहा, ''इस दुष्ट भीष्म को तो तुरंत ही मार डालना चाहिए, किंतु.... तुझे तो ये बलवान नरेश केवल बूढ़ा और बलहीन जानकर ही क्षमा कर रहे हैं। अब तो....''

फिर तो युग के सर्वश्रेष्ठ योद्धा भीष्म को क्रोध आ गया। वह गरजकर बोले, ''नीच शिशुपाल, तेरे सिर पर और तेरे नीम साथियों– उन सभी बलवान नरेशों के सिर पर मेरा यह पांव रहा! मैं तो इनको तिनके के समान भी नहीं मानता!''

यह सुनते ही कितने ही राजा चिल्लाकर आक्रोश प्रकट करने लगे। ''यह भीष्म तो सचमुच महादंभी और कुटिल है!''

''इस पाखंडी का तो गला दबाकर ही मार डालना चाहिए!''

''इस बूढ़े पापी को कदापि क्षमा नहीं करना चाहिए!''

''इस घमंडी को तो जीता ही फूस की आग में जला देना चाहिए....''

भीष्म ने सिंहनाद करते हुए कहा, ''तुम सबको अलग-अलग उत्तर देने का समय नहीं है। मैं तो तुम सभी के सिर पर पांव रखकर कहता हूं कि आओ, और यदि तुममें शक्ति है तो मेरा गला दबाकर मार डालो अथवा फूस की आग में जलाकर देखो...''

राजसभा इस प्रसंग से स्तब्ध थी।

भीष्म ने एकाएक फिर ललकारकर कहा, ''हमने तो इन महामाननीय वासुदेव की पूजा कर ही दी। अब तुममें से जिसको मृत्यु का आलिंगन करने की बहुत जल्दी हो रही हो, वह इन वासुदेव कृष्ण को ही युद्ध के लिए ललकारे।''

और अभिमानी शिशुपाल ने तत्काल कृष्ण को ललकारते हुए कहा, ''कृष्ण, तुम तो गोपकुल के हो ही और कभी मथुरापति कंस की दासता करते थे। तुम किसी प्रकार न तो राजा हो, न राजा बनने योग्य ही हो, फिर भी इन पांडवों ने तुम्हारी पूजा की। इतने महान् राजाओं की अवमानना की और तुमने उनकी पूजा को बड़े गर्व से स्वीकार भी किया है! इस कारण तुम और ये सारे मूर्ख पांडव मेरे द्वारा निश्चय ही वध्य हो। सावधान! मैं तुमको ललकारता हूं। तुम सभी को पराक्रमी होने का दंभ भी है तो आओ, हमसे युद्ध करो।''

शिशुपाल दहाड़ता हुआ अपने पक्ष के राजाओं के आगे खड़ा हो गया।

अब की बार उसकी ललकार सुनकर कृष्ण ने हँसकर गुरु-गंभीर स्वर में कहा, ''भूमिपाल महान् नरेशो, यह शिशुपाल ऐसे तो यादवों की कन्या– हमारे पूज्य पिता वसुदेव की स्नेहमयी भगिनी देवी श्रुतश्रवा का ही पुत्र है, किंतु इसको न जाने किस कारण सदा से यादवों से द्वेष रहा है। यादवों ने कभी इसका कोई अपराध नहीं किया तो भी यह क्रूरात्मा उनका अहित करने में लगा रहता है। एक बार जब यादव द्वारका से दूर कहीं संबंधियों के यहां गए थे, तो इसने घोर अनर्थ किया। यह हमारे पिता का भागिनेय है तो भी इसने

द्वारकापुरी में आग लगवाकर उसे नष्ट करने का प्रयास किया था। इसी प्रकार रैवतक पर्वत पर क्रीडा करने के लिए गए हमारे भोजराज महाराज उग्रसेन को इसने अकेले में घेर लिया और उनके अनुचरों की हत्या करके उनको बरबस पकड़कर अपने नगर में ले गया था। फिर जब मेरे पराक्रमी पिता वसुदेव अश्वमेध की दीक्षा लेकर बैठे थे, तब इसने रक्षकों के साथ छोड़े गए यज्ञाश्व को ही चुराकर यज्ञ में विघ्न डालने का प्रयास किया था। फिर इसने प्रतापी वभ्रु की सुंदरी पत्नी का द्वारका जाते समय सहसा अपहरण कर लिया था, जबकि उस युवती को इससे किंचित मात्र अनुराग नहीं था...इसके अपराधों को कहां तक गिनाया जाए! इसने विशालानरेश की कन्या का अपहरण उस समय छद्मवेश धारण करके कर लिया था जब वह आसक्ति के साथ करुषराज को पति के रूप में पाने का प्रयत्न कर रही थी। इस मूर्ख ने तो विदर्भनरेश महाराज भीष्मक की सुलक्षणा कन्या देवी रुक्मिणी को पाने के लिए जरासंध के साथ मिलकर देवी रुक्मिणी के बंधु-बांधवों से याचना भी की थी, किंतु जिस प्रकार श्वान को पावन हवि खाने को नहीं मिलता, उसी प्रकार यह नीच, कामी भी उनसे वंचित रह गया....''

यह सुनते ही शिशुपाल ने हुंकार भरकर कहा, ''कृष्ण! तू तो महानिर्लज्ज है जो राजाओं से भरी इस सभा में अपनी पत्नी को दूसरे की मनोनीत पत्नी कहता है। अपनी पत्नी को दूसरे की वाग्दत्ता पत्नी स्वीकार करते तुझको लज्जा नहीं आती! तुझ जैसे अनार्यधर्मा दास के सिवा कौन अपने इस महान् कर्म का इस प्रकार भरी सभा में वर्णन करेगा!''

कृष्ण द्वारा बताए गए शिशुपाल के घृणित अपराधों को सुनकर वहां उपस्थित अनेक राजा शिशुपाल को धिक्कारने लगे थे, किंतु वह तो दंभ के साथ खिलखिलाकर हँसता रहा।

कृष्ण ने कहा, ''आप सभी साक्षी हैं कि मैं मात्र अपनी स्नेहमयी बुआ को दिए गए वचन के कारण ही आप सबके सामने किए गए इसके अपराधों को सहन करता रहा हूं। इसने परोक्ष में जो अपराध किए थे, अब आप लोगों ने उनके विषय में भी सुन लिया। आज इसने मान्य राजाओं की सभा में मुझे जो-जो दुर्वचन कहे हैं, वह तो आपने सुने ही हैं! अब इसकी अभद्रता के लिए मैं इसको क्षमा नहीं करूंगा...''

''अरे कृष्ण, तू तो मात्र डींगें मारकर मुझे डराना चाहता है.... अथवा अपनी कमनीया पत्नी की गाथाएं सुनाकर इन भूपालों से सहानुभूति पाने की चेष्टा कर रहा है। तू अपनी बुआ.... मेरी माता को दिए गए वचन का बहाना करके बचना चाहता है तो जा.... मैं तुझे अभय देता हूं.... नहीं तो आकर

मुझसे युद्ध करके अपना वह पराक्रम सिद्ध कर दे जिसके दंभ में तूने हम सबकी अवमानना करके मूर्ख पांडवों की ओर से दी गई वह अग्रपूजा ग्रहण की है...आज मैं तुझे और तेरे इन चाटुकारों के साथ इस महामूढ़ भीष्म को भी....''

कृष्ण ने अकस्मात अपना विशाल चक्र उठा लिया। उसके तीव्र गति से नाचते अरों से मानो सूर्य का-सा तीखा प्रकाश छिटक रहा था।

यज्ञमंडप में एकत्र राजाओं में सन्नाटा छा गया।

शिशुपाल के चेहरे पर घोर आतंक की कालिमा व्याप्त हो गई थी। वह एकटक भयभीत-सा-चक्र की ओर ताकता रह गया था।

वासुदेव कृष्ण ने उद्‌घोष किया, ''अब तक तो मैं अपने वचन के अनुसार इसके अपराध क्षमा करता रहा, किंतु अब इसने अभद्रता और मर्यादा की सीमा पार कर ली है अत: अब मैं इसे दंड दूंगा!''

आवेश से दहकते लाल-लाल नेत्रों वाले कृष्ण ने सहसा अपना अमोघ चक्र नचाकर छोड़ दिया।

और तब शिशुपाल को मृत्यु का भय जकड़ने लगा। वह महाकाल के इस प्रचंड कोप से बचने के लिए इधर-उधर छिपने का आश्रय खोजने लगा और भागकर पास ही खड़े राजाओं की ओट लेकर छिप गया, किंतु चक्र ने तो मानो किसी सजीव कालशस्त्र की भांति उसको खोजकर सहसा उसका शीश काट दिया और तत्काल ही लौटकर फिर से कृष्ण के हाथ में आ गया।

कुछ देर को तो गहन सन्नाटा व्याप्त रहा, फिर अचानक ही घोर कोलाहल मच गया। लगा मानो आज प्रलय ही हो जाएगा। बाहर खड़ी यादवों की सेनाएं सहसा ही प्रचंड सिंहनाद करने लगीं। शिशुपाल के सभी पक्षधर उस समय हतप्रभ रह गए। किसी को इतना साहस नहीं हुआ कि शिशुपाल के वध का विरोध करता। उन सभी को मानो सहसा ही भान हो गया कि वह इस समय पृथ्वी के महाशक्तिशाली पुरुष की अनुकंपा पर ही जीवित रहेंगे.... सबके सब सिर झुकाए अनुगत की भांति बैठे रहे।

कुछ ही पलों में सहदेव के आदेश पर शिशुपाल का रक्तरंजित शरीर वहां से हटाकर मंडप की धरती को निर्मल कर दिया गया।

और फिर अनुष्ठान इस प्रकार चलने लगा मानो कुछ हुआ ही न हो।

छः

समय बीत चला। राजसूय यज्ञ संपन्न हो गया था। वासुदेव कृष्ण ने एक प्रकार से जरासंध का वध करवाने के लिए ही राजसूय करवाया था, इस कारण कि

जरासंध ने एक साथ बंदी बनाए गए सौ राजाओं की रुद्र देवता को नरबलि देकर जो महायज्ञ करने का निश्चय किया था, उसके लिए अभी वह सोलह और राजाओं को बंदी बनाना चाहता था। उस नरमेध को रोकने के लिए जो राजसूय करवाया गया था, वही भविष्य के एक और भी भयावने नरमेध का कारण बन जाएगा, इसकी कल्पना उस समय किसी ने नहीं की थी...

राजसूय के समय दुर्योधन स्वयं पांडवों के राजकोष में आने वाली संपदा-सुवर्णराशि बहुमूल्य पदार्थों और रत्नों का प्रबंध कर रहा था। उसने अनुभव किया कि पांडवों का राजकोष तो अब भी— यज्ञ के अवसर पर इतना खुलकर दिए गए दान और दक्षिणा के बाद भी— भरा-पूरा है। वह द्वेष की प्रचंड आग से जलता रहा।

कुछ समय पश्चात् यज्ञ के अवसर पर आए अतिथि एक-एक करके जाने लगे। तो भी युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर से आए अपने कुल के समस्त बंधु-बांधवों को किसी-न-किसी बहाने बहुत दिनों तक रोके रखा। अंत में विदुर आदि के कहने पर उन्होंने विवश होकर उनको भी समारोह के साथ विदा किया। किंतु उस समय भी शकुनि और दुर्योधन वहीं रुके रहे। पांडवों ने अग्रज की आज्ञा का पालन करते हुए उनका हर प्रकार से सत्कार किया। भीम तो दुर्योधन के द्वेष के कारण कितनी ही बार-बार मृत्यु के मुंह में जाकर भी लौट आए थे, तो भी वह शांत रहकर दुर्योधन का सत्कार करने में लगे रहे।

एक दिन दुर्योधन ने उनसे पांडवों का लोकविख्यात भवन देखने का आग्रह किया तो भीम उसको संग लेकर इंद्रप्रस्थ के भव्य प्रासाद तथा विलक्षण सभा का अवलोकन करवाने लगे। दुर्योधन को हर पग पर सब कुछ अपनी कल्पना से परे लगता था। उसका हठ मानकर जब बड़ी युक्ति से पांडवों को आधे राज के नाम पर खांडववन का यह दुर्गम क्षेत्र थमाकर वहां से उसी दिन निर्वासित कर दिया गया था, तो सभी कौरव बहुत प्रसन्न थे। शकुनि को तो बेचारे पांडवों पर तरस आने लगा था कि उनको इतने दिनों बाद वारणावत के अग्निकांड से बचकर वन-वन भटकने के बाद फिर से वन में ही भेज दिया गया था। अब तो उनको अपना पेट पालने के लिए भी जीवन-भर भिक्षा ही मांगनी होगी। उस वन में तो उनको भोजन मिलने से रहा। वहां की तो धरती को समतल करने में ही उनका जीवन बीत जाएगा।

किंतु पांडवों ने तो मानो इंद्रजाल का सहारा लेकर यहां गंधर्व नगर की-सी मायानगरी बसा ली थी! और इतना ही नहीं, उन्होंने अपने पराक्रम के बल पर ही राजसूय तक कर डाला था, जो उनके कुल में आज तक किसी ने नहीं किया था।

राजप्रासाद में घूमते समय दुर्योधन को कितनी ही अद्‌भुत स्थितियों का सामना करना पड़ा। ऐसा विचित्र वास्तुशिल्प देखकर दुर्योधन को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं आता था। किंतु उसने सुना था कि कृष्ण के प्रयत्न से मय दानव के उन वंशजों ने उनके लिए इस सभा तथा विशाल राजप्रासाद का निर्माण किया था जो वास्तुशिल्प के लिए देवताओं के महान् शिल्पी विश्वकर्मा के समकक्ष माने जाते थे। कहा तो यह जाता है कि मय के वंशजों ने ही प्राचीन काल में हस्तिनापुर का निर्माण भी किया था। किंतु पांडवों का इंद्रप्रस्थ तो अद्‌भुत ही था!

दुर्योधन उस वैभवशाली राजप्रासाद को देख तो रहा था, किंतु हर पग पर पांडवों का ऐश्वर्य उसके वक्ष पर नाग की भांति डस रहा था। दुर्योधन को बार-बार पांडवों के कोषागार की याद आ रही थी। राजसूय के इस समारोह के समय न जाने कितनी बार दुर्योधन ने अथाह धनराशि कोष से निकाल-निकालकर दी और न जाने कितना धन और रत्न लुटा दिए गए। किंतु युधिष्ठिर का राजकोष तो मानो कोई अक्षय जलाशय हो, जिसमें दूर-दूर से आने वाले राजाओं की ओर से नदियों के प्रवाह की भांति अनवरत राशिलक्ष्मी आ आकर राजकोष में समाती जा रही थी और वह फिर ज्यों का त्यों भरा दिखाई पड़ता था।

मूर्द्धाभिषेक करवाकर राजसिंहासन पर बैठे युधिष्ठिर के चरणों पर अपने-अपने मुकुट रखकर प्रणाम करते नरेशों के समुदाय ने अपने-अपने राज्यों से अपार धन लाकर उनके समक्ष अर्पित कर दिया था। वह सब याद आता तो दुर्योधन के हृदय में दाह-सा होने लगता। किंतु वह करता ही क्या! हां, जिस समय अग्रपूजा को लेकर शिशुपाल ने अपने राजा मित्रों के साथ सहसा ही पांडवों को ललकारा था, उस समय तो दुर्योधन की बाछें खिल उठी थीं। यद्यपि शिशुपाल बार-बार पितामह भीष्म की आलोचना कर रहा था, तो भी दुर्योधन ने निश्चय कर लिया था कि यही समय है, जब इस महायज्ञ में विघ्न डालकर चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में लोक-विख्यात होने की युधिष्ठिर की इच्छा को विराम दिया जा सकता है। वृद्ध भीष्म तो वास्तव में पांडवों और वासुदेव कृष्ण के प्रति अंधभक्ति से विवश हैं। अब उनका क्या करें। जो होगा, हो, भीष्म अपने कर्मों का दंड भुगतें।

मन ही मन दुर्योधन पूरी तरह से शिशुपाल का साथ देने को तत्पर हो गया था। इन पांडवों के दंभ का जहां का तहां मर्दन करके उनको शिक्षा तो देनी ही होगी। दुर्योधन इस विषय में शकुनि और दुःशासन तथा कर्ण का भी परामर्श लेने की सोच रहा था— कर्ण की भांति ही यदि पांडवों का परम द्रोही

महावीर शिशुपाल भी उसके पक्ष में आ जाए तो फिर दुर्योधन इन पांडवों को कभी भी परास्त करके इस अतुल ऐश्वर्य का स्वामी बन सकता है....

और जब सहदेव ने समस्त राजसमूह को चुनौती देकर उनके सिर पर पांव रखने की बात कही थी, तब तो निश्चित-सा हो गया था कि अब युद्ध होकर रहेगा।

जब राजाओं के दल के दल शिशुपाल के साथ सन्नद्ध खड़े होने लगे, तब दुर्योधन भी उठकर उसके पक्ष में अपना मत जताने को उत्सुक हो उठा था। किंतु इसी समय शिशुपाल से चुपचाप अपनी निंदा और भर्त्सना सुनते कृष्ण ने मानो अचानक ही जागकर उस पर आरोपों की झड़ी-सी लगा दी थी। और फिर! ओह कितना भयानक कांड हो गया था! पलक झपकते कृष्ण ने सहसा ही शिशुपाल का सिर काट लिया था। सारी राजसभा आतंकित हो उठी थी। स्वयं शिशुपाल का पक्ष लेकर उसको निरंतर प्रोत्साहित करने वाले राजाओं का भी मानो सारा बल-विक्रम खंडित हो गया था। उसका वध होते ही वे सबके सब तत्काल सिर झुकाकर अनुगत की भांति बैठ गए थे। उनको मानो यह भय सता रहा था कि कहीं कृष्ण का अमोघ चक्र फिर से किसी की ओर न चल पड़े। किंतु कृष्ण को मानो सब कुछ पहले से ही ज्ञात रहा हो। उन्होंने फिर ऐसी कोई चेष्टा नहीं की।

उसी समय महर्षियों के आदेशानुसार, यज्ञ पूरा करने के लिए चेदिराज के पद पर शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु का अभिषेक कर दिया गया था। विवश धृष्टकेतु ने युधिष्ठिर की पदपूजा करके उनकी अधीनता के साथ ही शासन की याचना की थी। कितनी बड़ी विडंबना थी यह!

किंतु उस समय दुर्योधन स्वयं ही आतंकित, स्तंभित-सा रह गया था। उसने यदि ऐसे अवसर पर किसी प्रकार का द्रोह आरंभ करने की चेष्टा की तो स्वयं उसके कुल के लोग ही उसका साथ नहीं देंगे! और पांडवों के मित्र तो उसको ही बंदी बनाकर पांडवों के चरणों पर डाल देंगे। नीति यही कहती है कि धैर्य से काम लिया जाए और दुर्योधन को ऐसे अवसर की नीति का अच्छा ज्ञान था! वह चुप ही रहा।

चलते-चलते अचानक ही दुर्योधन संभलकर रुक गया। वह विचारों में खोया-सा सामने के विशाल कपाट से टकरा गया था। वह विस्मित-सा निहारता रह गया। यह कैसी माया है! द्वार तो खुला ही है, फिर वह टकरा काहे से गया? उसने एक बार फिर द्वार से निकलने का प्रयास किया किंतु इस बार फिर टकराकर पीछे हट गया। वह खड़ा-खड़ा आश्चर्य से उसी ओर निहारता रह गया। तब भीम ने कहा, "यह तो मय दानवों का चमत्कार है,

सुयोधन! वास्तव में यहां द्वार नहीं है, किंतु दीवार पर ऐसी विचित्र रचना की गई है कि लगता है, मानो कपाट खुला ही हो।''

दुर्योधन ने अपनी लज्जा पर हँसी का परदा डालकर दूसरी ओर मुंह फेर लिया। भीम तथा अनुचरियों के साथ वह दूसरी ओर चलने लगा। कुछ दूर पर उसको एक बार फिर कपाट दिखा तो वह हिचककर जहां का तहां रुक गया, किंतु भीम उसका मंतव्य समझ गए और स्वयं कपाट से बाहर निकल आए, तब दुर्योधन को पता लगा कि वह वास्तव में द्वार ही है, माया नहीं।

वहां से निकलकर वे एक विशाल सभाभवन में पहुंचे। जिसके फर्श पर अमूल्य मणि-माणिक्यों से कितनी ही मोहक रचनाएं की गई थीं। कहीं-कहीं तो लगता था, रंग-बिरंगे फूल खिले हों, किंतु वह सब सुंदर पाषाणों से बनी हुई आकृतियां ही थीं। दुर्योधन ससंभ्रम क्यारी जैसी रचनाओं को निहारता हुआ चलता रहा। उसे लगा कि यह अत्यंत ही नवीन कल्पना है। अपने सभाभवन में भी वह ऐसी ही रचनाएं निर्मित करवाएगा। सभा में प्राकृतिक उपवन जैसी आभा-शोभा कितनी मोहक लगती है!

अचानक ही बीच में एक छोटी-सी पुष्करिणी दीख पड़ी। किंतु यह कैसी रचना है! यह तो उसको नहीं जंची! सभा के बीच कम से कम जलाशय की बात तो नहीं ही जंचती। दुर्योधन ने कहीं और मार्ग नहीं देखा तो अपने वस्त्रों को समेटकर ऊपर किया और बहुत संभालकर उसमें पांव रखा तो ठगा-सा रह गया—वह तो सूखी धरती ही थी! इसकी रचना ही ऐसी थी। लेकिन दुर्योधन उस दिन न जाने किस महूर्त में निकला ही था कि पग-पग पर ऐसा ही कोई न कोई प्रसंग आ जाता था कि उसको लज्जा उठानी पड़ती थी। उसे मार्ग दिखाती हुई कंचुकी की भूमिका इस समय जो सुंदरी करती चल रही थी, उससे दुर्योधन परिचित था। वह उसे देखकर विस्मित था कि स्वयंवरा इन पांडवों के राजप्रासाद में कहां से आ गई! उसने शकुनि को इस विषय में संकेत भी किया था, किंतु भीम आदि की उपस्थिति में दोनों के बीच कोई बात नहीं हो सकी। दुर्योधन तो यह देखकर चकित था कि वह मद्रदेश की गणिकापुत्री कामलेखा अब तक ज्यों की त्यों थी। एकदम अक्षययौवना है यह तो! पुरोचन के साथ वह भी वारणावत गई थी—पांडवों को लुभाकर वश में रखने के लिए। फिर वह न जाने कहां लुप्त-सी हो गई थी। और आज वह फिर यहां दिख रही है। कहीं कोई षड्यंत्र तो नहीं!

सहसा स्वयंवरा दुर्योधन को सामने की ओर मार्ग दिखाकर आदरवश पीछे हो रही। दुर्योधन ने सामने बिछे दिव्य आस्तरण पर पांव रखा ही था कि गड़ाप से वह कमर भर पानी में गिर पड़ा। यह आस्तरण भी भ्रम ही था! वहां

मात्र भ्रम ही भ्रम था। दुर्योधन के गिरते ही न जाने किस ओर से अत्यंत मादक-सी सुरीली हँसी सुनाई पड़ी। दुर्योधन का समूचा शरीर मानो दग्ध होने लगा था। उसका विश्वास था कि वह हँसी और किसी की नहीं, उसी रूपगर्विता पांचाली की है। 'तो वह जानबूझकर मेरा अपमान करवाने के लिए ही यह सब कर रही है।'

उस समय साथ चलते परिचारक तक मुंह छिपाकर हँस रहे थे। भीम भी किसी प्रकार अपनी हँसी रोककर उसका हाथ थामकर निकलने में सहायता करने लगे, किंतु दुर्योधन ने क्रोध से उनका हाथ न थामकर शकुनि का हाथ थाम लिया और उस जलाशय से अपने को निकाला। अपने राजसी वस्त्रों पर घृणा-भरी दृष्टि डालकर वह तत्काल मुड़ चला। उसने सभा के पूर्व की ओर द्वार देखा और झपटकर उसी ओर बढ़ चला, किंतु वह फिर टकरा गया। वहां भी दीवार ही थी। तब वह फिर एक स्थान पर पहुंचा जो द्वार ही था। किंतु उसने सोचा, कहीं यह भी दीवार ही न हो। भ्रम दूर करने के लिए उसने जोर से धक्का मारा और एकाएक उस पार निकलकर बाहर जा गिरा। और तब क्षुब्ध दुर्योधन वहां से लगभग भागता-सा उस भव्य कक्ष की ओर चला गया, जहां उसका आवास था।

एकांत में पहुंचते ही वह क्रोध और ग्लानि से जलता हुआ बोला, ''मातुल, मैं तो अब लौटकर हस्तिनापुर नहीं जाऊंगा। मुझे अब जीवित रहने की इच्छा ही नहीं रह गई है!''

शकुनि के बहुत समझाने पर उसने कहा, ''अब तो मैं यहीं अनशन करके प्राण दे दूंगा अथवा ऐसा ही ऐश्वर्य प्राप्त करूंगा, तभी मुझे शांति मिलेगी।''

शकुनि ने उसे हर प्रकार से सांत्वना देकर समझाया और दोनों ने वहीं प्रतिज्ञा कर ली कि छल-बल से अथवा जैसे भी संभव होगा, वे युधिष्ठिर के इस ऐश्वर्य का हरण करके ही रहेंगे।

और उसी समय शकुनि ने कहा था, ''अब पांडवों को बल से जीतना तो असंभव-सा नहीं, वरन असंभव ही है। हां, यदि तुमको ऐसा ही आक्रोश है तो अब मेरा महाबल ही तुम्हारी इच्छा पूरी कर सकता है।''

दुर्योधन ने चकित होकर मातुल की ओर देखा। फिर व्यंग्य से बोला, ''तो अब तक जो होता रहा है, जिस प्रकार वे दोनों— मात्र अर्जुन और भीम प्रागैतिहासिक गुहावासी मानवों की भांति बर्बरता से सबको परास्त करके उस दिन पंचाल में उस महासुंदरी युवती को लेकर चले गए, उस समय तुम भी तो वहीं थे, मातुल! तब तुम्हारा महाबल कहां गया था?''

शकुनि ने हँसकर कहा, "वह अब काम करेगा, युवराज! तुम धीरज से काम लो, वत्स! मैंने गांधारी के विवाह के समय ही प्रतिज्ञा की थी कि हस्तिनापुर का राजा हमारी गांधारी का पुत्र ही होगा, और वही करके भी दिखा दिया। अब एक बार फिर प्रतिज्ञा करता हूं कि पांडवों का अतुल वैभव ही नहीं, इन पांडवों को भी तुम्हारा दास बनाकर तुम्हारे चरणों पर डाल दूंगा।"

और बड़ी रात गए तक दोनों अपनी इच्छा पूरी करने के अनेक उपायों पर विचार करते रहे।

अंत में उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर से विदा मांगी। युधिष्ठिर ने दुर्योधन का सच्चे मन से सत्कार किया और उसको मुंहमांगी वस्तुएं देने को तत्पर हो गए। किंतु दुर्योधन ने हँसकर कहा, "आपसे ही शिक्षा प्राप्त की है, अग्रज कि क्षत्रिय को मांगकर नहीं, जो भी प्राप्त करना हो, अपने पराक्रम से प्राप्त करना चाहिए? हमें तो बस, आपका स्नेह ही चाहिए। आप हमारे उसी प्रकार अग्रज बने रहें और स्नेह देते रहें, बस, इतनी ही कामना है।"

इंद्रप्रस्थ के बाहर आते ही जब उनको पहुंचाने के लिए आए पांडव विदा लेकर लौट गए तो शकुनि ने अपने भागिनेय की सराहना करते हुए कहा, "यह हुई न राजावाली बात! आज तो तुम्हारी बातों से मन प्रसन्न हो गया, सुयोधन। तुम विश्वास रखो, यदि इसी प्रकार तुमने मेरे वचनों का पालन किया तो निश्चय ही पांडवों की राजलक्ष्मी कल तुम्हारा ही वरण करेगी।"

सात

पांचाली यह सुनते ही चकित रह गई कि हस्तिनापुर से महात्मा विदुर को भेजकर महाराज धृतराष्ट्र ने पांडवों को कुछ समय के लिए हस्तिनापुर आकर बंधु-बांधवों के साथ द्यूतक्रीड़ा से मनोरंजन करने को आमंत्रित किया है।

युधिष्ठिर अपने सभी भ्राताओं से तथा पांचाली से भी नितांत पारिवारिक विषयों पर चर्चा अवश्य करते थे। फिर यह तो ऐसा प्रसंग था कि वह अकेले निर्णय लेना भी नहीं चाहते थे।

सुनकर और किसी ने तो विरोध नहीं किया, किंतु पांचाली ने किंचित संशय के साथ कहा, "महाराज, मुझे तो उनके आमंत्रण में कहीं कुछ ऐसा लगता है जो शंका को जन्म देने वाला है। अभी तो यहां इतने दिन रहकर हर प्रकार से मनोरंजन करते ही रहे हैं सब। फिर सहसा ही द्यूतक्रीड़ा का आमंत्रण क्या आपको उचित लगता है?"

दो पल सोचकर महाराज युधिष्ठिर ने कहा, "उचित-अनुचित का प्रश्न ही कहां उठता है, पांचालनंदिनी! क्षत्रियधर्म के अनुरूप तो यही है कि

द्यूतक्रीड़ा का आमंत्रण आया हो तो स्वीकार करना ही होगा।''

पांचाली स्वयं इस परंपरा से अवगत थी कि युद्ध की भांति ही कोई क्षत्रिय द्यूत का आमंत्रण मिलने पर अस्वीकार नहीं कर सकता। पांचाल में भी यही परंपरा थी। और पांचाल ही क्या, सारे आर्यावर्त में यही परंपरा चलती थी। वह शांत स्वर में बोली, ''जब धर्म की ही बात है तो फिर इस पर सोच-विचार करने की आवश्यकता ही क्या है? तो भी मुझे न जाने क्यों यह सब कहीं अशुभ लगता है, आर्यपुत्र!''

सब चुप रहे।

सहसा पांचाली ने कहा, ''यदि समय हो तो आप एक बार इस विषय में वासुदेव से भी परामर्श कर लें।''

युधिष्ठिर ने हँसकर कहा, ''देवी! निश्चय ही वासुदेव से परामर्श करना हमारे लिए हितकर होगा, किंतु तुम यह तो सोचो कि इस सामान्य-से विषय पर वासुदेव को कष्ट देना कितना हास्यास्पद लगता है! और फिर जो क्षत्रिय कुल की परंपरा हो, उससे विचलित होने का परामर्श तो वासुदेव भी नहीं देंगे। तुम तो जानती ही हो कि बलवानों में श्रेष्ठ हलधर बलभद्र स्वयं भी द्यूतक्रीड़ा को कितना प्रिय मानते हैं। यादवों में भी द्यूतक्रीड़ा उतनी ही लोकप्रिय रही है।''

पांचाली भी जानती थी। और यह भी जानती थी कि महाराज स्वयं द्यूतविद्या जानते हैं और उनको द्यूतक्रीड़ा में विशेष रुचि भी है। ऐसे भी यह कोई नई बात नहीं थी। मन की शंका को ऐसे ही टालकर पांचाली ने भी विरोध नहीं किया।

ऐसे तो स्वयं युधिष्ठिर अब द्यूतक्रीड़ा के प्रति उतने आग्रही नहीं रहे थे, यह इसी से प्रकट था कि अर्जुन ने बताया—महाराज को इस समय हस्तिनापुर मात्र द्यूतक्रीड़ा के लिए जाना-अच्छा नहीं लग रहा था, क्योंकि उन्होंने पितृव्य विदुर से इस विषय में बड़ी देर तक चर्चा की थी। और उनके मंतव्य से यही लगता था। स्वयं विदुर भी नहीं चाहते थे कि महाराज हस्तिनापुर जाकर द्यूतक्रीड़ा में भाग लें। किंतु धर्म को तो ठुकराया नहीं जा सकता था, सो भी महात्मा जैसे कर्म करने वाले चक्रवर्ती सम्राट् युधिष्ठिर किस प्रकार आमंत्रण अस्वीकार करके कायर बनते!

उसी दिन महाराज ने प्रयाण की आज्ञा दे दी और पांडवों की तैयारी होने लगी। वे अंबा कुंती और समूचे अंत:पुर के साथ हस्तिनापुर जाने को तैयार हो रहे थे। यात्रा की सफलता के लिए विधिवत् ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाकर महाराज आदि सभी पांडवों एवं महारानी पांचाली ने दान-दक्षिणा देकर आशीर्वाद ग्रहण किया; फिर यात्रा आरंभ हुई।

अपने तेजस्वी पुरोहित धौम्य को आगे करके युधिष्ठिर ने यात्रा आरंभ की। वह एक विशालकाय गजराज पर आरूढ़ थे। स्वर्णगौर कांति वाले महाराज युधिष्ठिर उस समय किरीट, हार तथा विविध बहुमूल्य आभूषणों को धारण करके राजोचित शोभा से देदीप्यमान हो रहे थे। राजा के आगे-आगे चलते एक अन्य गजराज पर मध्यम पांडव महाबली भीमसेन चल रहे थे। उनके दोनों ओर सुसज्जित उत्तम अश्वों पर नकुल तथा सहदेव युगल अश्विनीकुमारों की भांति अपने रूप से परिवेश को जगमग करते हुए चल रहे थे। और सबसे पीछे अपने विशाल रथ पर गांडीवधारी अर्जुन चल रहे थे। इन सबके मध्य में महाराज का गजराज था। महाराज के भी आगे-आगे भव्य शिविकाओं पर कुल की वधुएं जा रही थीं। उन सबको चारों ओर से घेरकर सेना के अनगिनत अश्वारोही तथा महारथी चल रहे थे। गजसेना तथा पदातियों की भी विशाल सेना उनके साथ यात्रा कर रही थी। उन सबके पास धनुष, खंग, भल्ल, तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र थे। शंख, मृदंग, दुंदुभि एवं ताल-वेणु तथा वीणा की मधुर ध्वनि से यात्रा की शोभा और भी मोहित कर रही थी। पथ के दोनों ओर खड़े कितने ही पौरजनों तथा ग्राम-विधूटियों की कलख करती भीड़ महाराज की यात्रा के भव्य दृश्य देखकर जयजयकार कर रही थी।

हस्तिनापुर के निकट पहुंचकर एक समतल, सुंदर स्थान पर शिविर डाल दिया गया। उस रात स्वयं चक्रवर्ती सम्राट् युधिष्ठिर ने भी वहीं रात बिताई। वहां महामंत्री विदुर ने शोकाकुल स्वर में युधिष्ठिर को सावधान करने के लिए धृतराष्ट्र का द्यूत के पीछे क्या मंतव्य है—इस विषय में विस्तार से बता दिया।

वह सब सुनकर पांचाली को लगा कि उसे जो शंका हो रही थी, वह ठीक ही थी। किंतु महाराज को अब पीछे लौटने के लिए कहना उचित नहीं था और न तो महाराज अब द्यूत का आमंत्रण ठुकरा ही सकते थे।

प्रारब्ध से प्रेरित होकर मनुष्य स्वयं बुद्धि खो बैठता है और उसे चाहने पर भी चक्रव्यूह से निकलकर भागने का अवसर नहीं मिल पाता।

धृतराष्ट्र द्वारा निश्चित समय पर युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में प्रवेश करके वहां सबका दर्शन किया। पितामह भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि से मिलने के बाद युधिष्ठिर ने महारानी गांधारी का दर्शन करने के लिए अंत:पुर में प्रवेश किया। देवी गांधारी अपनी पुत्रवधुओं से घिरी हुई बैठी उनकी ही प्रतीक्षा कर रही थीं। महाराज ने गांधारी को प्रणाम किया तथा अनुजवधुओं को आशीष कहकर वह तो बाहर चले आए, किंतु राजवधू पांचाली को कौरवों की सुंदरी पत्नियों ने घेर लिया और उसका सत्कार करने लगीं।

धृतराष्ट्र की ओर से निवास के लिए निश्चित रत्नमय सुंदर प्रासादों में

पांडव पहुंचे तो वहां कौरवों की भगिनी दु:शला अपने भ्रातृजायाओं के साथ पांचाली की अगवानी करने को उपस्थित थी। किंतु पांचाली ने अनुभव किया कि आरंभ में जब वह पंचाल से पहली बार हस्तिनापुर आई थी, तो उस समय कौरवकुलवधुओं ने जिस नवीन उछाह और नेह के साथ उसका स्वागत किया था, इस बार वह नेह नहीं रहा। उसे प्रतीत हुआ कि इस बार उसके प्रति सहज मोह के स्थान पर उनमें ईर्ष्या का भाव अधिक है। तो भी स्त्रीसुलभ कौतूहल तथा पांचाली की रूपाभा और अनुपम यौवन की कांति से प्रभावित सभी वधुएं उसको घेरकर कितनी ही बातें करती रहीं।

कुछ देर बाद वे सभी पांडवों की पांचाली आदि समस्त पत्नियों के लिए विश्राम की व्यवस्था हो जाने पर वहां से विदा लेकर चली गईं।

प्रात:काल ही नित्य कर्मों से निवृत्त होकर संध्योपासना आदि करने के बाद पांडव उस भव्य सभा की ओर चले गए थे, जहां द्यूतक्रीड़ा होने वाली थी।

पांडवों की अन्य वधुएं उस समय कौरवों की वधुओं से मिलने चली गई थीं। अपने प्रकोष्ठ में पांचाली उस समय अकेली ही थी। वास्तव में उसके साथ ऐसी विचित्र स्थिति आ गई थी कि वह विवश-सी होकर अकेली ही रह गई। सहसा रजस्वला हो जाने के कारण वह मात्र एक वस्त्र धारण करके अकेली ही पड़ी विश्राम कर रही थी। किंतु वहां जो कुछ हो रहा था, उसके विषय में आशंकित होने के कारण पांचाली चिंतित-सी पड़ी मन ही मन उलझ-सी रही थी। नींद तो नहीं आती थी। मन विथकित, शिथिल-सा हो रहा था।

तीसरा पहर ढल चला था। तभी परिचारिका ने आकर सूचना दी, ''देवी, द्वार पर प्रतिकामी खड़ा है। वह देवी का दर्शन करना चाहता है।''

''इस समय?'' पांचाली चकित-सी होकर बोली, ''उसे कह दो, मैं...''

''कल्याण हो, देवी!'' प्रतिकामी ने सहसा भीतर आकर कहा, ''देवी, क्षमा करें। मैं सेवक हूं। दासकर्म के अधीन हूं।''

द्रौपदी उस सूत की धृष्टता देखकर चकित हो उठी थी। प्रतिकामी जिस प्रकार उसकी आज्ञा पाए बिना ही सहसा प्रासाद में प्रवेश करके इस एकांत कक्ष में चला आया था, उसे देखते ही द्रौपदी का हृदय आशंका से धड़क उठा। बोली, ''क्या है?''

प्रतिकामी ने यथासंभव विनम्र कंठ से कहा, ''द्रुपदकुमारी, धर्मराज आज द्यूत के मद से निश्चय ही उन्मत्त हो गए थे, उन्होंने समस्त राजपाट द्यूत में हार दिया। सर्वस्व गंवा देने के बाद उन जुआरियों की ललकार पर उन्होंने आपको भी दांव पर लगा दिया...तब ज्येष्ठ कौरव ने आपको भी जीत लिया...अब मुझे

आज्ञा दी गई है कि आपको लेकर मैं उनके भवन में दासियों के पास पहुंचा दूं और...आपसे भी दासीकर्म...''

''प्रतिकामी!''

पांचाली का कठोर आक्रोश भरा चीत्कार सुनकर प्रतिकामी भयवश चुप रह गया।

द्रौपदी आवेश से हांफ रही थी। प्रतिकामी से यह भयंकर सूचना पाकर वह क्रोध से कांपने लगी। तेज-तेज सांसों के साथ उसके उन्नत वक्ष बार-बार ऊपर नीचे होने लगे। वह किसी प्रकार एकमात्र शाटिका से अपने को छिपाती हुई बोली, ''तुझे यह क्या हो गया है, प्रतिकामी! कैसी बात कर रहा है तू? कहीं कोई राजा अपनी पत्नी को भी जुए में हार सकता है!''

प्रतिकामी सिर झुकाए बोला, ''राजपुत्री, उस समय महाराज युधिष्ठिर अपना राजपाट, गज-रथ, दास-दासी आदि सभी कुछ हारकर अपने भाइयों तथा अंत में स्वयं को भी हार चुके थे। कोई और धन नहीं रहा तो उन्होंने विवश होकर आपको भी दांव पर रख दिया था...''

द्रौपदी आकुल होकर बोली, ''तो तुम ऐसा करो, प्रतिकामी! जाकर उन जुआरी राजा से यह पूछकर आओ कि वह पहले अपने को हारे थे कि मुझे...यह पूछकर आओ, तब मैं तुम्हारे साथ चलूंगी।''

पांचाली प्रतिकामी के जाने के बाद स्तब्ध-सी बैठी रही। वह सोच नहीं पा रही थी कि आखिर यह हो क्या रहा है। क्या ऐसा भी कहीं होता है कि... उन व्यसनी जुआरियों के साथ जुआ खेलते-खेलते धर्मात्मा युधिष्ठिर अपनी आत्मा को भी हार बैठे!

वह पल-पल विकल होकर रोने-रोने को हो रही थी कि प्रतिकामी फिर आ पहुंचा। सिर झुकाकर बोला, ''देवी! मुझे तो लगता है कि अब कुरुकुल का विनाशकाल निकट आ गया है। मेरे पूछने पर महाराज तो मौन ही बैठे रहे, किंतु वह दुर्योधन तुम्हें ही राजसभा में आने को कहता है। उसका दुस्साहस तो...'' वह चुप रह गया।

पांचाली को लगा कि प्रतिकामी का दोष नहीं है। निश्चय ही ज्येष्ठ पांडव ने उन कपटी जुआरियों की चाल में फंसकर अनर्थ कर डाला है। वह बोली, ''तो फिर ऐसा करो प्रतिकामी, तुम जाकर राजसभा में बैठे कुरुकुल के महापुरुषों से मेरी ओर से प्रश्न करो कि मुझे क्या करना चाहिए।''

इस बार प्रतिकामी को आने में विलंब हुआ तो पांचाली को आशा-सी बंधी कि कुरुकुल के महान् पुरुषों ने निश्चय ही दुर्योधन की इस निर्लज्जता पर उसको धिक्कारा होगा। उसको लगा कि किसी प्रकार इस विपदा से मुक्ति मिली।

किंतु अभी वह शांति की एक सांस तक नहीं ले पाई थी कि सहसा ही भारी-भारी डग रखता दु:शासन लाल-लाल आंखों से उसको घूरता हुआ एक दम पास आकर गुर्राया, ''पांचाली, तुमको तो अब हमारे अग्रज ने जीत लिया है। तुम यहां बैठकर रानी की भांति बार-बार आदेश का उल्लंघन कैसे कर रही हो! तत्काल वहां चलकर दुर्योधन की ओर अपनी सुंदर आंखों से मदभरी दृष्टि डालो! हमने तो अब धर्म के अनुसार तुमको जीतकर पाया है। अब तुम हम कौरवों की कामना के अनुरूप हमारी हर इच्छा पूरी करोगी। उठकर राजसभा में चली चलो, उठो...''

कांपते हृदय पर वश नहीं रहा। पांचाली ने अपने मलिन हाथों से किसी प्रकार आंसू पोंछे। दु:शासन जिस प्रकार उसकी ओर बढ़ रहा था, उससे पांचाली को आशंका हुई। वह उठकर तुरंत उस ओर भागी, जहां धृतराष्ट्र के अंत:पुर की स्त्रियां थीं। किंतु धृतराष्ट्र का राजभवन वहां से दूर था। दु:शासन ने सहसा ही लपककर पांचाली के केशों को पकड़ लिया— उन्हीं केशों को जो कुछ ही समय पूर्व राजसूय यज्ञ के अवभृथ स्नान के समय मंत्रपूत जल से सींचे गए थे।

दु:शासन केश पकड़कर घसीटता हुआ पांचाली को राजसभा के निकट ले आया। तन्वंगी पांचाली केशों को पकड़कर घसीटी जाने के कारण एक ओर झुकी-सी थी। उस क्रूरकर्मा दु:शासन के सामने उस अबला का वश ही क्या था। उसने धीरे से कहा, ''अरे मंदबुद्धि, मैं रजस्वला हूं! मेरे शरीर पर इस समय मात्र एक ही वस्त्र है। इस दशा में मुझे राजसभा में ले जाना अनुचित है।''

दु:शासन ने क्रूर हँसी के साथ कहा, ''अरे, पांचाली, तू चाहे रजस्वला हो, एकांबरा हो अथवा विवस्त्रा हो, तू तो अब दासी है हमारी। महारानी वाले नखरे छोड़ और हमारी जो इच्छा हो, अब तो वही करने की सोच।'' वह बरबस द्रौपदी को खींचता हुआ ले चला। द्रौपदी के केश खुलकर बिखर गए थे। आंचल भी फिसलकर नीचे गिर गया था। वह लज्जा और प्रचंड क्रोध से धधकती हुई रो-रोकर पापात्मा दु:शासन को कोसती जा रही थी।

उसी अवस्था में घसीटकर दु:शासन ने द्रौपदी को लाकर सभा में खड़ी कर दिया। द्रौपदी कातर स्वर में विलाप करती हुई वहां उपस्थित समस्त गुरुजनों तथा कुल के महान् पुरुषों की भर्त्सना करती हुई कौरवों को धिक्कारती रही।

वह रो-रोकर कहती रही, ''लगता है कि यहां जितने भी लोग हैं, उन सब पर इन दुरात्मा कौरवों का ही प्रभाव हो गया है, तभी तो सब एक

माननीया कुलवधू का अपमान होते देखकर भी चुप बैठे हैं। इस सभा में बैठे सभी सभासदों से मैं पूछती हूं, राजा युधिष्ठिर ने पहले अपने को हारा अथवा मुझे? और यदि वह हार चुके थे तो मुझे हारने का अधिकार ही कहां था उन्हें?''

राजसभा में मात्र दुर्योधन और उसके कुटिल साथियों को छोड़कर सभी द्रौपदी को उस प्रकार एकवसना होने पर भी सभा में निर्दयता-पूर्वक घसीटी जाती देखकर दुखी थे।

पांचाली ने आने के बाद पहली बार अपने पतियों की ओर तीखी, कटाक्षभरी आंखों से देखा। वे सबके सब सिर झुकाकर विकल-से बैठे रहे।

दु:शासन ने जोर से हँसकर कहा, ''अरी दासी, तू उन दासों की ओर क्या ताक रही है! जाकर राजा दुर्योधन की सेवा में लग जा।''

उसकी इस बात से प्रसन्न होकर दुर्योधन के साथ ही कर्ण तथा शकुनि आदि ने अट्टहास किया।

क्रोध से जलती हुई द्रौपदी ने पितामह भीष्म की ओर देखा। उसको पूरा विश्वास था कि पितामह तो दुर्योधन और दु:शासन को यह सब करने की अनुमति नहीं दे सकते, किंतु वह भी चुप थे। पांचाली की आंखों से आंखें चुराते हुए, सिर झुकाकर उन्होंने कहा, ''सुभगे, यह बड़ा ही जटिल प्रसंग है। मैं धर्म का वास्तविक रूप नहीं समझ पा रहा हूं। अत्यंत सूक्ष्म धर्म का रूप मुझे भ्रम में डाल रहा है—जो स्वामी नहीं हो, वह पराए धन को दांव पर तो नहीं लगा सकता...किंतु फिर वही धर्म कहता है कि स्वामी दास हो तो भी स्त्री पर उसका ही अधिकार रहता है, स्वयं धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर ने कहा है कि 'मैं हार गया।' यह शकुनि द्यूतविद्या का तो आचार्य है ही, उसी ने युधिष्ठिर को प्रेरित करके तुमको दांव पर लगाने को विवश किया है। किंतु युधिष्ठिर तो उस पर भी छल का आरोप नहीं लगाते। इस कारण मैं इस प्रश्न का कोई निश्चित विवेचन नहीं कर पाता...''

द्रौपदी ने आर्त कंठ से कहा, ''यहां तो जितने भी कुरुवंशी क्षत्रिय उपस्थित हैं, उन सबकी मुझ जैसी पुत्रवधुएं अथवा पुत्रियां हैं। वे मुझे मेरे प्रश्न पर विचार करके उत्तर दें...इन कपटी जुआरियों ने पहले तो महाराज युधिष्ठिर को छलकर उनके सर्वस्व का अपहरण कर लिया...फिर उनको विवश करके मुझे भी दांव पर लगवाया गया है। क्या यह धर्म की दृष्टि से संगत है?'' कहती-कहती द्रौपदी फिर करुण स्वर में विलाप करने लगी।

उसकी यह अवस्था देखकर भीम को भयंकर क्रोध आ गया और वे जीवन में पहली बार अपने अग्रज युधिष्ठिर पर ही आक्रोश प्रकट करने लगे।

वह सहसा बोले, ''सहदेव, तुम आग ले आओ। मैं अभी इन महाराज की उन भुजाओं को जलाकर भस्म कर दूंगा जिन्होंने कुलवधू पांचाली को दांव पर लगा दिया है! अरे, अग्रज, जुआरियों की पत्नियां भी प्रायः कुलटा ही होती हैं, किंतु वे सामान्य जुआरी भी अपनी कुलटा स्त्रियों तक को कभी इस प्रकार दांव पर नहीं लगाते। आपने सर्वस्व गंवा दिया, हम सभी अनुजों को भी हार दिया, इस पर मुझे उतना रोष नहीं आता, किंतु हमारी परम प्रिया और माननीया पांचाली को भी आपने दांव पर लगाया, इसका एक ही प्रतिकार है, मैं आपकी इन भुजाओं को ही भस्म कर दूंगा! तेजस्विनी पांचाली हम पराक्रमी पांडवों की आदरणीया पत्नी है और इंद्रप्रस्थ की मूर्द्धाभिषिक्त सम्राज्ञी है! इस समय ये नीच, नृशंस कौरव किस प्रकार उसी लोकविख्यात महाभागा का घोर अपमान कर रहे हैं...सहदेव...''

अर्जुन ने किंचित रोष के साथ भीम को संबोधित किया, ''अग्रज! निश्चय ही इन शत्रुओं ने तुम्हारी विवेकबुद्धि को भी हर लिया है, जो तुम धर्मात्मा ज्येष्ठ भ्राता का इस प्रकार अपमान कर रहे हो! अरे, इन अजातशत्रु को तो इन दंभी कौरवों ने बरबस आमंत्रित करके जुआ खेलने को बाध्य किया है...क्षत्रियधर्म के अनुसार, महाराज आमंत्रित किए जाने पर पीछे तो नहीं हट सकते थे। इन कपटी जुआरियों ने छल से ही विजय प्राप्त करके महाराज को विवश कर दिया है।''

भीम ने उसांस भरकर कहा, ''आह! अर्जुन, यही तो बेबसी है, यदि इस क्षत्रियधर्म की विवशता न होती तो मैं आज...''

सहसा धृतराष्ट्र का सुसंस्कृत और नीतिवान पुत्र विकर्ण उठकर सारी सभा को संबोधित करता हुआ बोला, ''आर्य भूपालो, यदि देवी द्रौपदी के इन प्रश्नों को ठीक विवेचन करके उन्हें संतुष्ट नहीं किया जाता तो यह घोर अनाचार होगा। यहां महात्मा वाह्लीक हैं, पूज्य सोमदत्त हैं, पितामह भीष्म हैं और महाराज धृतराष्ट्र तथा द्रोणाचार्य एवं कुलगुरु कृपाचार्य जैसे धर्मवेत्ता हैं। सबके सब कुलीन एवं इस कुल के रक्षक हैं। आप सब आर्य विदुर के साथ परामर्श करके देवी पांचाली के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते?''

किंतु कोई नहीं बोला। सब सिर झुकाए बैठे रहे।

तब विकर्ण ने निर्भीक स्वर में कहा, ''आप सब बार-बार आग्रह करने पर भी पांचाली के प्रश्नों का उत्तर नहीं देते...यह तो दारुण वेदना की बात है...'' वह लंबी-लंबी सांस लेता हुआ दोनों हाथों को परस्पर मल रहा था मानो उससे यह अनाचार सहा नहीं जा रहा हो। पछतावे के साथ वह बोला, ''तो फिर मैं ही अपनी बुद्धि के अनुसार इस विषय में जो न्यायसंगत है, वह

कहता हूं। मेरा मत यह है कि द्यूतविद्या का व्यसन भी मदिरापान, मृगया तथा विषयासक्ति के समान ही मनुष्य को विवेकहीन कर देने वाला है। द्यूत के दुर्व्यसन में आसक्त इन ज्येष्ठ पांडव ने भी पहले तो सर्वस्व के साथ स्वयं को हार दिया था, फिर उन्होंने बिना अधिकार के पांचाली को दावं पर लगा दिया जो मात्र उनकी ही नहीं, सभी पांडवों की समान रूप से पत्नी है। उसको दावं पर लगाने का तो ज्येष्ठ पांडव को ऐसे भी अधिकार नहीं है। फिर अन्य दावों को जीतने के बाद इन गांधार शकुनि ने बरबस ही पांचाली को दावं पर लगाने को विवश किया है। अत: मैं तो किसी भी स्तर पर पांचाली को दांव में जीती हुई नहीं मानता...''

जो सभासद अब तक मौन साधे अनिश्चय में पड़े यह सब देख रहे थे, उनको भी शिष्ट-शालीन और निर्भीक विकर्ण ने जैसे वाणी दे दी हो। वे सब एक स्वर में विकर्ण की सराहना करते हुए 'साधु-साधु' करने लगे। सभा में बड़ी देर तक कोलाहल मचा रहा। विदुर के बाद उस सभा में न्याय का समर्थन करने वाले एकमात्र विकर्ण की ओर पांचाली ने अपने विशाल नेत्रों में आभार तथा सराहना भरकर देखा और पलकें झुका लीं।

कर्ण ने देखा कि उसके मित्र दुर्योधन की जीती हुई बाजी हारी जा रही है तो वह क्रोध के साथ विकर्ण की बांह पकड़कर उसे झकझोरता-सा बोला, ''विकर्ण, तुम तो ऐसे दुर्बुद्धि हो कि अपने ही कुल का विनाश करने को तत्पर हो। तुम अपने पांव में आप ही कुल्हाड़ी मारने का काम कर रहे हो। तुम तो वैसा ही काम कर रहे हो जिस प्रकार अग्नि करता है कि जिस अरणि के रगड़कर अग्नि का जन्म होता है वह सबसे पहले उसी को जला देता है। इस राजसभा में इतने महान् कुलपुरुष बैठे हैं। आचार्य हैं। एक से एक धर्मात्मा नरेश हैं, किंतु द्रौपदी द्वारा बार-बार प्रेरित किए जाने पर भी वे चुप बैठे हैं और तुम बालकों के समान अपने को महान् बुद्धिमान मानकर न्याय की परिभाषा करने चले हो। तुम आखिर द्रौपदी को जीती हुई होने पर भी जीती हुई किस आधार पर नहीं मानते? अरे, जब युधिष्ठिर ने अपना सर्वस्व ही दावं पर लगाकर हार दिया तो पांचाली क्या 'सर्वस्व' से अलग थी? यह तो ऐसे ही इस दावं पर लगाने के पहले ही हारी जा चुकी थी!''

कर्ण के विचित्र तर्कों का विरोध करने का मानो किसी का साहस ही न हो। गहन मौन व्यापा रहा। कर्ण को मानो अवसर मिल गया था। वह फिर बोला, ''और विकर्ण, जो तुमने यह सोचकर शोक प्रकट किया हो कि पांचाली को इस प्रकार एकवसना होने पर राजसभा में लाकर कोई अन्याय किया गया हो तो मेरा उत्तर सुनो! दैव की ओर से तो एक स्त्री के लिए मात्र एक पुरुष

का विधान है, किंतु यह द्रौपदी तो एक साथ पांच-पांच पुरुषों की भोग्या है अतः यह वास्तव में तो वेश्या ही है। ऐसी स्त्री तो एकवसना हो अथवा सर्वथा वसनहीना ही हो, तो भी कहीं भी, किसी भी अवस्था में लाई जा सकती है, यह मेरा स्पष्ट मत है! इसे तो ऐसे भी सुबलपुत्र शकुनि ने जुए में हारी गई धनराशि के रूप में जीत ही लिया है।'' कर्ण ने दु:शासन की ओर देखकर कहा, ''यह विकर्ण तो महामूढ़ है। तुम इसकी ओर ध्यान ही मत दो। ये पांडव भी अब तो कौरवों के दास मात्र हैं। तुम तो अब इन पांडवों के सारे वस्त्र उतार लो और महारानी का दंभ करने वाली इस पांचाली के भी वस्त्र छीन लो!''

सभी आंख झुकाए बैठे रहे। सबको ज्ञात था कि पंचाल में स्वयंवर मंडप में लक्ष्यवेध के समय द्रौपदी ने 'सूतपुत्र' कहकर और परीक्षामंडप में कर्ण को 'सूतपुत्र' कहकर भीम आदि ने भी उसका जो अपमान किया था, आज वह उसी का प्रतिकार करने के लिए ऐसी कठोर और अशिष्टता-भरी बातें बोल रहा था। ऐसे तो कर्ण जितना पराक्रमी था और जितना धर्मनिष्ठ एवं उदार था, उसकी चारों ओर भूरि-भूरि सराहना हुआ करती थी। किंतु इस समय वह अपने परम मित्र तथा अपने को राजपद देकर गरिमा प्रदान करने वाले कुटिल दुर्योधन का पक्ष लेकर ऐसी क्षोभजनक बातें कर रहा था।

उसकी कठोर बातें सुनकर तथा दु:शासन को अपनी ओर बढ़ते देखकर विवश पांडवों ने स्वयं ही अपने उत्तरीय आदि उतारकर रख दिए।

दु:शासन ने सहसा झपटकर द्रौपदी की शाटिका का आंचल पकड़ लिया और उसे निर्वस्त्र करने पर तुल गया। उस सभा में द्रौपदी को अब किसी से कोई आशा नहीं रही। उसके पति तो स्वयं ही दासों की भांति बलहीन तथा हततेज बैठे रहे। तब पांचाली ने चीत्कार करके सहसा कहा, ''आज मेरा कोई नहीं! सारे महान् बलशाली कुलपुरुष तथा महिपाल-भूपाल अपनी गरिमा खो बैठे हैं...तो अब मैं वासुदेव कृष्ण की शपथ देती हूं। मुझसे दूर रह नीच! हे वासुदेव, तुम जहां भी हो, इस अबला की पुकार सुनने के बाद इन अत्याचारियों को ऐसा दंड देना कि जीवन में ये फिर किसी स्त्री का ऐसा अपमान नहीं करें। तुम मेरे अपमान का प्रतिशोध लेना!'' कहती-कहती पांचाली मुट्ठी में आंचल पकड़े अचेत-सी सभा के बीच ही गिरकर बिलखने लगी।

उसका आंचल पकड़कर उसे विवसना करने की चेष्टा करता दु:शासन न जाने किस कारण सहसा ही अपने को हतप्रभ अनुभव करने लगा। उसकी चेतना मानो लुप्त होने लगी। उसकी आंखों के सामने राजसूय के यज्ञमंडप में कृष्ण के हाथों से छूटकर नाचते तीखे चक्र की तीखी, चमकीली अरों का दृश्य नाच उठा और फिर उसे शिशुपाल का कटा हुआ सिर आकाश में उड़ता-सा

दिखा...वह एकाएक बलहीन अशक्त-सा सभा के बीच ढह-सा गया।

कर्ण, दुर्योधन और सब के सब कौरव योद्धा दु:शासन की यह दशा देखकर विस्मित रह गए। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि उसे हो क्या गया!

दु:शासन की वह अवस्था देखकर सभा में खलबली-सी मच गई। कितने ही लोगों को तो ऐसा लगा मानो पांचाली ने ही किसी गूढ़ विद्या से महाबलशाली दु:शासन की यह दुर्गति कर दी हो। सब स्तंभित-से बैठे रहे। सभी फटी-फटी आंखों से कुछ ही दूरी पर फटे वृक्ष के समान ढहे पड़े, पसीने से भीगे, हारी हुई सांसें लेते, हांफते दु:शासन को देखते रहे।

पांचाली आंखें मूंदे, आंचल को मुट्ठी में थामे अब भी कातर स्वर में बुदबुदा रही थी, ''वासुदेव...चक्रधारी कृष्ण! मेरे इस अपमान का प्रतिकार तुम लेना, देवकीनंदन...मेरे भ्राता...सखा...''

''आप सभी राजाओं को साक्षी बनाकर मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि इस नीच दु:शासन को मैं इस अपराध का दंड देकर ही रहूंगा।'' सहसा भीम का गर्जन सुनाई पड़ा। ''मेरी प्रतिज्ञा है, मैं इस पशुकर्म करने वाले नृशंस दु:शासन की दोनों भुजाएं उखाड़ लूंगा और इसका रक्त पीकर रहूंगा...पांचाली के जिन केशों को पकड़कर इसने उसकी वेणी खोल डाली है, उन्हें इस दु:शासन के रक्त से ही सींचकर फिर से वेणी बांधूंगा!''

सभा में अचानक फिर से कोलाहल होने लगा। अब तो जो लोग चुप बैठे, स्तब्ध होकर यह पापलीला देख रहे थे, वे भी दु:शासन तथा स्वयं राजा धृतराष्ट्र एवं समस्त कौरवों और शकुनि की निंदा करने लगे।

विदुर ने एक बार फिर से दुर्योधन को सदाचार का उपदेश देकर समझाने का प्रयास किया, किंतु उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। पांचाली विलाप करती हुई सभा के सामने अपनी रक्षा के लिए गुहार लगाती रही। कर्ण और दुर्योधन के उकसाने पर दु:शासन फिर पांचाली को घसीटकर उसे पीड़ा पहुंचाने लगा। त्रस्त, आर्त द्रौपदी ने तड़पकर कहा, ''कुरुकुल के महापुरुषो...मैं कुरुकुल की वधू हूं...पुत्री के समान हूं...मैं पांडवों की शुभकर्मपरायण भार्या हूं...प्रतापी धृष्टद्युम्न की भगिनी हूं और वासुदेव कृष्ण की परम प्रिय सखी हूं...तो भी मुझे इस प्रकार अत्यंत लज्जाजनक स्थिति में राजसभा के बीच लाया गया...इतने राजाओं की उपस्थिति में यह क्रूरकर्मा दु:शासन मुझे दारुण पीड़ा दे रहा है। मैं इस क्लेश को अब और देर तक नहीं सह पाऊंगी। मुझे स्पष्ट बताया जाए कि क्या मैं सचमुच दासी हूं?''

दुर्योधन अट्टहास करके पांचाली का उपहास करता हुआ बोला, ''द्रौपदी,

तुम्हारे ये पति तो बड़े पराक्रमी और न्यायी हैं न! तो हम अब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुम्हारे इन धर्मराज पति पर ही छोड़ देते हैं। तुम इनसे ही पूछ लो, यही बताएंगे कि तुम हारी गई हो और हमारी दासी हो अथवा नहीं...''

भीम एक बार फिर हुंकारकर बोले, ''मैं तो अपने इन पितातुल्य अग्रज के कारण विवश हूं, यदि ये आज्ञा दे दें तो मैं अभी इन नीचों को मसलकर रख दूं...तत्काल निर्णय हो जाता कि क्या सत्य है! यदि मैं इनके द्वारा हार न दिया गया होता तो देखता कि मेरे समक्ष हमारी पांचाली के केशों अथवा उसके तन को कौन छू लेता...''

कर्ण फिर पांडवों के नपुंसक क्रोध की हँसी उड़ाता हुआ बोला, ''भद्रे, दास, पुत्र तथा पराधीन स्त्री—ये तीनों ही धन के स्वामी नहीं होते। जिस स्त्री का पति सारा ऐश्वर्य खो बैठा हो, उस पर, तथा दास के सारे धन पर उसी का अधिकार होता है, जो दास का स्वामी होता है। राजपुत्री, अब तुम मात्र दासी हो। अब तो महाराज धृतराष्ट्र के ये बलशाली राजपुत्र ही तुम्हारे स्वामी हैं। इन कुंतीपुत्रों से कोई आशा मत करो। ये तो स्वयं ही सर्वस्व गंवाकर अब दुर्योधन के दास हैं। सुंदरी, अब ये हारे हुए कुंतीपुत्र तुम्हारे स्वामी नहीं रहे, न ये तुम्हारे पति ही हैं। अब तो तुम इन बलवान कौरवों में से किसी ऐसे महाबली को अपना पति बना लो कि कोई फिर से द्यूत में तुमको दांव पर न हारे। इन युधिष्ठिर को तो वैसे भी कभी पुरुषार्थ करने का कोई उत्साह नहीं रहता। इनका क्या भरोसा?''

भीम ने फिर क्रोध से लाल नेत्रों से युधिष्ठिर को घूरते हुए कहा, ''महाराज, यह सूतपुत्र जो कहता है, दासधर्म तो वास्तव में यही है। मुझे इस पर क्रोध नहीं आता, सारा दोष तो आपका ही है। आपने इस प्रकार पांचाली को दांव पर लगाकर हार दिया है कि उसे आज इन नीचों से यह सारी निर्लज्जता-भरी बातें सुननी पड़ रही हैं।''

भीम की बात सुनकर दुर्योधन ने व्यंग्य से कहा, ''महाराज युधिष्ठिर, ये आपके चारों अनुज तो आपके अधीन ही हैं! आप ही अपने मुंह से कुछ कहकर निर्णय दे दीजिए कि यह सुंदरी पांचाली अपनी राह तो चुन ले! आपके कारण ही यह बार-बार कातर होकर सबसे अपने विषय में पूछती फिर रही है। आपके दु:ख से दुखी तो ये सभी कौरव सभासद् हैं, किंतु इस सभा में बोल कोई नहीं रहा है...तो आप ही निर्णय कर दीजिए!'' साथ ही वह निर्लज्जता से महारानी पांचाली की ओर देखता हुआ कामातुरता-भरी मुसकान के साथ अपनी बाईं जांघ खोलकर उसकी ओर अश्लील संकेत करने लगा।

भीम ने क्रोध से तड़पकर कहा, ''दुर्योधन, यह तेरी जांघ भी मैं यदि युद्ध

के समय तोड़ न डालूं तो मुझे नरक मिले...''

विदुर ने धृतराष्ट्र को चेतावनी-सी देते हुए कहा, ''महाराज, आप क्या सुन रहे हैं? अरे, धृतराष्ट्र के पुत्रो, भीम की प्रतिज्ञा से लगता है कि अब तुम सबका विनाश सचमुच ही निकट आ गया है। अब भी संभल जाओ। तुम लोगों ने द्यूतक्रीडा में मर्यादा का उल्लंघन किया है और अब कुल की एक माननीया स्त्री को इस अवस्था में लाकर सभा में उसका अपमान कर रहे हो। अरे मूर्खो, अपने शरीर को हार जाने के बाद युधिष्ठिर को पांचाली को दांव पर लगाने का अधिकार ही कहां था! तुम तो इस शकुनि और सूतपुत्र की बातों में आकर अपना विनाश करवाने पर तुले हो!''

दुर्योधन विदुर की अवहेलना करके गर्व के साथ हँसी उड़ाता हुआ बोला, ''सुंदरी! ये धर्मराज युधिष्ठिर तो अपराधी की भांति शांत हैं...अच्छा, पांचाली, यदि तुम्हारे ये शेष पति ही कह दें कि युधिष्ठिर को तुम्हें दांव पर लगाने का अधिकार नहीं था तो भी तुम दासता से मुक्त हो जाओगी!''

अर्जुन ने शुष्क स्वर में कहा, ''अग्रज युधिष्ठिर हम सबके स्वामी हैं और उन्होंने हम सबको जब दांव पर लगाया तो उनको इसका अधिकार था। किंतु जब वह अपने को हार गए तो फिर किसके स्वामी रहे? इस बात पर कौरवों को विचार करना चाहिए।''

अर्जुन के अतिरिक्त कोई नहीं बोला। भीम तो अब भी क्रोध से होंठ चबा रहे थे। नकुल-सहदेव भी बेबस-से सिर झुकाए यह सब सहन कर रहे थे।

अकस्मात निकट ही यज्ञशाला में किसी श्रृगाल के रोने की आवाज गूंज उठी और लगा मानो गृध्र जैसे अनेक अशुभ पक्षी चीत्कार करने लगे हों। श्रेष्ठ वयोवृद्ध कौरव अपशकुन की शांति के निमित्त 'स्वस्ति!' 'स्वस्ति!' कहकर संत्रस्त-से हो उठे।

तभी पांचाली भयानक क्रोध से चीत्कार भरकर रोने लगी। उसके मुंह से कौरवों के लिए, और विशेषकर दुःशासन और दुर्योधन के लिए अमंगलसूचक शाप जैसा निकलने लगा।

अंतःपुर में भी अब तक, राजसभा में लाकर रजस्वला, एकवसना पांचाली के अपमान तथा उसे विवस्त्र किए जाने की सूचना पहुंच चुकी थी। सुनते ही गांधारी वैश्यापुत्री रंभा के साथ भागी-भागी उस द्यूतसभा में आकर करुण स्वर में महाराज धृतराष्ट्र से अपने पुत्रों की दुर्बुद्धि की भर्त्सना करती हुई बोलीं, ''महाराज! आप सबके होते ये कुटिल पुत्र हमारी ज्येष्ठा पुत्रवधू का इतना अपमान कर रहे हैं और आपमें से कोई कुलवधू पांचाली की रक्षा नहीं

कर पा रहा है। इस कुल का विनाश होकर रहेगा!''

गांधारी, विदुर तथा पितामह भीष्म आदि के भर्त्सना करने पर धृतराष्ट्र को लगा कि सब कुछ उलटा हो गया है। उन्होंने तुरंत कहा, ''अरे, नीचबुद्धि दुर्योधन, तू तो सचमुच कुल का विनाश करने वाले कार्य ही कर रहा है। तू अपने ही कुल की वधू को इस प्रकार सभा में लाकर अपमानित कर रहा है। दुर्विनीत, तू अपनी माननीया भातृजाया द्रौपदी का भरी सभा में ऐसा तिरस्कार कर रहा है। पांडवों की पत्नी पांचाली का क्या तेरे लिए कोई मान नहीं?''

धृतराष्ट्र की समझ में आ गया था कि अब दुर्योधन तथा दु:शासन की कामातुरता के कारण सारी सभा उनके विरुद्ध हो चली है। उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी से नीति का आश्रय लिया और द्रौपदी को प्रसन्न करने के लिए बोले, ''कल्याणी, तुम मेरी समस्त पुत्रवधुओं में श्रेष्ठ और शुभकार्य करने वाली हो। मैं तुमको प्रसन्न करने के लिए वर देता हूं। तुम जो चाहो, मांग लो।''

अवसर देखकर अत्यंत क्रोध और क्षोभ से खिन्न होती हुई भी द्रौपदी ने अपने पति का कल्याण करने के लिए कहा, ''पिताश्रेष्ठ! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो मेरी यही कामना है कि महाराज युधिष्ठिर दासता से मुक्त हो जाएं। मैं उनके पुत्र प्रतिविंध्य की माता हूं। मेरी कामना यही है कि कल कोई राजपुत्र प्रतिविंध्य से यह न कहे कि तू तो दास का पुत्र है...''

धृतराष्ट्र जानते थे कि सभा में पांचाली का जो अपमान हुआ है, मात्र इतने से ही उसकी क्षतिपूर्ति नहीं हो जाएगी। बोले, ''वधू, तुम कुल का मंगल करने वाली हो। मैं तुमको मात्र एक वर ही नहीं और भी वर देना चाहता हूं...''

पांचाली ने इस बार अपने अन्य चारों पतियों को भी अपने आयुधों सहित दासता से मुक्त कर देने का वर मांगा।

'तथास्तु' कहकर धृतराष्ट्र बोले, ''महाभागे, अब भी मात्र दो वरों से तुम जैसी शुभकार्यपरायणा वधू का सत्कार नहीं हुआ। मैं तुमको एक और वर मांगने को कहता हूं, तुम जो चाहो, मांग लो!''

किंतु द्रौपदी ने तीसरा वर नहीं मांगा। बोली, ''अब अधिक लोभ करना व्यर्थ है, महाराज! और धर्म के अनुकूल भी नहीं है। मेरे समर्थ पति अब अपने पुण्यकर्मों तथा पराक्रम से स्वयं अपना कल्याण कर लेंगे।''

पांचाली के स्वर में अब उसका स्वाभिमान बोलने लगा था। वह गरिमामयी स्त्री अपने सहज अभिमान से देदीप्यमान होने लगी थी।

यह सब होने लगा तो दुर्योधन और शकुनि उठकर सभा से चले गए।

कर्ण ने उठते-उठते पांचाली की सराहना-सी करते हुए कहा, ''आज तक मैंने जितनी सुंदरियों के आख्यान सुने हैं, उनमें से किसी सुंदरी ने ऐसा

विलक्षण कार्य नहीं किया है। पांडव तथा कौरव परस्पर क्रोध से विक्षिप्त हो रहे थे, किंतु यह द्रुपदकुमारी पांडवों के लिए सचमुच कल्याणी सिद्ध हुई। संकट के अथाह समुद्र में नौकाविहीन यात्री की भांति डुबकी खाते पांडवों को उबारने के लिए इस संकट में यह सुंदरी कृष्णा नौका बन गई!''

भीम उसकी बात से खिन्न होकर बोले, ''लो, पराक्रमी पांडवों की गति अंत तक स्त्री ही बनी!'' वह सहसा पांचाली की दु:शासन द्वारा की जाने वाली दुर्दशा को याद करके घोर क्षोभ के साथ बोले, ''धनंजय, उस दुष्ट दु:शासन ने हमारी पत्नी पांचाली को अपने स्पर्शों से दूषित कर दिया है। अब ऐसी परदूषिता पत्नी की संतान हमारे लिए किस काम की होगी!''

अर्जुन ने तत्काल कहा, ''अग्रज, ऐसा अनुचित वचन न कहें। हमारी शुभांगी पांचाली पावन है। किसी नीच के हीन स्पर्श उसे दूषित नहीं कर सकते।''

भीम का आक्रोश लेकिन कम नहीं हो रहा था। उन्होंने एक बार फिर युधिष्ठिर की ओर देखकर कहा, ''यदि आप अब भी आज्ञा दें तो मैं इन पापियों का संहार करके मन की पीड़ा शांत कर लूं।''

किंतु युधिष्ठिर ने उनको वर्जित करते हुए कहा, ''अभी तो शांति के साथ बैठे रहो, तात!''

भीम विवश-से चुप बैठे रहे।

युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के पास जाकर विनम्रता से कहा, ''महाराज, हम तो आपके अधीन ही रहे हैं और आपके अधीन ही रहना चाहते हैं। अब आपकी जो आज्ञा हो, हम वैसा ही करें।''

धृतराष्ट्र ने सारे अनुचित प्रसंग को धोने की चेष्टा करते हुए कहा, ''तात, तुम तो धर्म की सूक्ष्म गति जानते हो। दुर्योधन ने मूढ़तावश जो कठोर व्यवहार किया है, उसे तुम मन में मत रखना। अपनी इन माता गांधारी और इस वयोवृद्ध पिता की ओर देखकर मन पर नियंत्रण रखना। मैंने तो द्यूतक्रीड़ा को इस कारण नहीं रोका था कि मुझे अपने इन मूढ़ पुत्रों के बल-अबल का ज्ञान हो जाए। किंतु...''

वह अचानक ही चुप हो गए।

फिर कुछ देर बाद बोले, ''अब तुम मेरी आज्ञा से अपना सारा ऐश्वर्य—धन-संपदा आदि लेकर हस्तिनापुर से अपने राज्य इंद्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान करो। जुए की हारजीत की बात भूल ही जाओ। तुम्हारा जो कुछ था, जितनी भी धनराशि अथवा सेना-सामग्री आदि तुम्हारी थी, वह सब तुम्हारी ही रही। तुम अब किसी बाधा के बिना अपनी राजधानी जाकर मुक्त भाव से

पहले की तरह ही शासन करो।''

धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर उसी दिन अपनी सारी संपदा तथा रथ-गज आदि के साथ विदा लेकर इंद्रप्रस्थ के लिए चल पड़े।

वे बहुत दूर निकल गए थे, तब वेग से अश्व दौड़ाता सूत प्रतिकामी सहसा ही निकट आ पहुंचा। उसने धृतराष्ट्र की ओर से संवाद किया, ''महाराज का कहना है कि इस विवाद के कारण मनोरंजन वाली बात तो जहां की तहां धरी रह गई। महाराज की इच्छा है कि आप हस्तिनापुर में ही कुछ दिन और रहकर बंधुओं के साथ फिर से द्वेष से हीन रहकर द्यूतक्रीड़ा करें, तब उनका मन संतुष्ट होगा।''

यद्यपि अब पांडवों में से किसी की इच्छा नहीं थी कि फिर से हस्तिनापुर जाकर द्यूतक्रीड़ा में भाग लें, किंतु वही कठिन क्षत्रियधर्म फिर से संकट बन गया। युधिष्ठिर को फिर लौटकर आना ही पड़ा। वह आकर द्यूत के लिए मंडप में एकत्र जुआरियों के बीच बैठ गए।

राजसभा में अथवा कुरुकुल में कोई भी ऐसा नहीं था जो फिर से होने वाली इस द्यूतक्रीड़ा का समर्थन करता हो, किंतु महाराज धृतराष्ट्र की इच्छा को कौन काटता!

इस बार भी दुर्योधन की ओर से शकुनि ही पासा फेंकने के लिए आया। उसने कहा, ''महाराज युधिष्ठिर हम दोनों के ही पास अनेक प्रकार के रत्न तथा विपुल संपदा है। दास-दासियां तथा गज-रथ और अश्व आदि सभी कुछ है। अबकी बार मात्र एक ही बार पासा फेंका जाएगा। दावं के रूप में यह रहा कि जो इसमें हार जाएगा, वह बारह वर्ष तक वनवास करेगा। और तेरहवां— अर्थात् एक पूरा वर्ष अज्ञातवास में बिताएगा। इसकी प्रतिज्ञा यह रही कि यदि दूसरे पक्ष को अज्ञातवास के समय यह पता लग गया कि हारा हुआ पक्ष कहां छिपा है, अथवा यदि उसे पहचान लिया गया तो उसे फिर से बारह वर्ष के लिए वन में ही रहना होगा।''

युधिष्ठिर ने स्वीकार कर लिया।

और पासा फेंका गया।

जो निश्चित-सा था— शकुनि ने इस दावं को भी जीत लिया।

बस!

सब कुछ नष्ट हो गया। पांडवों के लिए मानो प्रारब्ध ने निश्चित ही कर दिया था कि उनको जीवन की इतनी बड़ी अवधि वन में ही बितानी होगी।

पांडवों के वनवास की सूचना हस्तिनापुर की प्रजा के लिए भी घोर पीड़ा का कारण बन गई। चारों ओर त्रास-सा व्याप गया।

पांडवों ने वनवास की दीक्षा लेकर वल्कल वस्त्र धारण कर लिए थे और उसी वेश में मात्र अपने आयुध लिए हुए वन की ओर चले जा रहे थे। मार्ग में उनको जो भी देखता कौरवों और धृतराष्ट्र की निंदा करने लगता।

मार्ग के दोनों ओर रहने वाली हर वर्ण की स्त्रियां—कुलीना वधुएं भी अपनी-अपनी खिड़कियों के परदे हटाकर यह विचित्र दृश्य देखने लगीं। कुरु राज्य स्त्रियों ने आज तक पांचाली की मात्र चर्चा ही सुनी थी। तेजस्वी पांडव इस समय मृगचर्म धारण किए वन की ओर पैदल ही जा रहे थे, उनके साथ ही द्रौपदी भी पैदल ही चल रही थी। इस समय भी उसके तन पर मात्र एक ही वसन था। वह रजस्वला थी। केश खुले हुए थे और वह रोती हुई सिर झुकाए चल रही थी।

आसपास लोग चर्चा कर रहे थे—यह वही पांचाली है, जिसको आकाशचारी जीव भी नहीं देख पाते थे, किंतु इस समय वह कितनी दीनहीन-सी पैदल ही जा रही है! दिव्यांगना द्रौपदी के अंगों पर कभी सुरभित अंगराग होता था। उसकी देह सदा चंदन से चर्चित होती थी तथा उस पर न जाने कितने सुंदर-सुंदर वर्णों से पत्ररचना करके उसका भव्य शृंगार किया जाता था, किंतु इस समय वह मलिनवसना और दीनहीन बाला कुम्हलाई-सी कैसे धूप सह रही है! वन में इस महासुंदरी के अंगों की कांति विविध प्रकार के कष्टों तथा आतप-वर्षा आदि आपदाएं झेलती-झेलती निश्चय ही मलिन हो जाएगी...

पीछे-पीछे विलाप करती आती अंबा कुंती से लिपटकर पांचाली आर्त होकर रोने लगी। अंबा ने उसको सदा अपनी पुत्री की भांति स्नेह दिया था और स्वयं पांचाली उनको अपनी अंबा के समान ही चाहती थी। किंतु इस समय दोनों ही एक-दूसरे की छाती से लगकर रोने के सिवा एक भी शब्द नहीं कह पा रही थीं।

अंत में उनके पीछे-पीछे आते विदुर ने देवी कुंती को बहुत देर तक सांत्वना दी और किसी प्रकार कुंती को अपने साथ ही अपने भवन पर ले जाने को तैयार कर लिया। इस वय में कुंती पुत्रों के साथ जाकर वन में कैसे भटक सकती थीं! विदुर ने उनको समझाया कि पांडवों पर प्रारब्ध ने किसी कारण इस समय कुदृष्टि डाली है तो कल को देव उनका कल्याण भी करेंगे। उनको उद्योग करना होगा। अपने राज्य को पाने के लिए इस वनवास के समय में ही उन्हें बलसंग्रह भी करना होगा। अतः तुम उनको मुक्त होकर जाने दो।

विवश अंबा को पांचाली ने एक बार फिर अंक में भरकर उनसे विदा ली।

आठ

धूर्त शकुनि की सहायता से धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जुआ खेलकर पांडवों को ठग लिया; फिर उन्होंने पांचाली का घोर अपमान किया; और अंत में दोबारा जुआ खेलकर एक ही दावं में शकुनि ने उनके राज्य तथा संपदा का अपहरण कर लिया और सत्यप्रतिज्ञ युधिष्ठिर ने दावं हारने के बाद अपने वचन के अनुसार, पांचाली तथा चारों पांडव भाइयों के साथ बारह वर्ष के लिएं वनवास तथा तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास की प्रतिज्ञा करके हस्तिनापुर से ही वन की ओर प्रस्थान कर दिया है—यह समाचार कुछ ही दिनों में चारों ओर फैल गया।

इस भीषण समाचार को सुनकर पांडवों के सभी हितैषियों को घोर पीड़ा होने लगी। द्वारका में भोज, अंधक, और वृष्णि कुल के यादवों ने इस विषय में सुना तो संतप्त हो उठे। पांडवों के इस दुर्भाग्य से सभी विचलित हो उठे। वे तत्काल पांडवों से मिलकर यथार्थ जानने के लिए काम्यक वन की ओर चल पड़े, जहां पांडव अपने परिजनों के साथ वनवास कर रहे थे।

इसी प्रकार द्रौपदी के पराक्रमी भ्राता—पांचाल के राजकुमार धृष्टद्युम्न, लोकविख्यात बलवान योद्धा कैकय राजकुमार बिंद-अनुबिंद तथा चेदिराज धृष्टकेतु—सभी अमर्ष में भरे हुए वन में जाकर पांडवों से मिले और चिंता में पड़े हुए सोचने लगे कि अब क्या करना उचित होगा।

वासुदेव कृष्ण को आगे करके सभी क्षत्रिय योद्धा पांडवों को घेरकर बैठे यही विचार कर रहे थे।

इस समय पांडवों की दशा पर खिन्न कृष्ण ने विषाद के साथ युधिष्ठिर को प्रणाम करके कहा, "इन महाराज की यह दशा देखकर मुझे तो विश्वास हो गया कि अब यह पृथ्वी निश्चय ही कुटिल कौरव दुर्योधन तथा उसके पापों में भी आंखें मूंदकर सहयोग करने वाले कर्ण, दुरात्मा शकुनि और महापापी दुःशासन का रक्तपान करने को व्यग्र हो रही है! हमारा तो अब एक ही कर्तव्य है कि इन दुरात्माओं तथा इनके सभी अनुगामियों का वध कर दें। उनके अनुगामी राजाओं, सैनिकों आदि सभी को युद्ध में परास्त करके हम फिर से धर्मराज युधिष्ठिर का चक्रवर्ती नरेश के पद पर अभिषेक करें! जो भी किसी को छल-कपट से विवश करके उसकी संपदा का अपहरण कर ले और अन्यायपूर्वक सुख भोग रहा हो, उसका वध कर देना ही न्यायसंगत है! मेरी

दृष्टि में तो यही सनातन धर्म है!''

उस समय पांडवों के अपमान से वासुदेव कृष्ण इतने कुपित थे कि लगता था, वे क्रोध में अभी कौरवों के राज्य तथा उनकी सारी प्रजा का भी विनाश कर देंगे। उनकी क्रोधाग्नि से वहां उपस्थित सभी योद्धा तप-से उठे।

उस समय कृष्ण के प्रिय सखा अर्जुन ने अनेक प्रकार से विनीत वचन कहकर अपने परम मित्र कृष्ण को शांत किया।

कृष्ण कुछ शांत हो गए, तब ममता के साथ आंसू बहाती द्रौपदी ने उनका सत्कार किया। फिर अपनी विपदा का वर्णन करती हुई वह विह्वल कंठ से बोली, ''माधव, आपके प्रति मेरा और मेरे प्रति आपका जो स्नेह है, उससे प्रेरित होकर मैं आज अपने मन की व्यथा तुमको अवश्य सुनाऊंगी। इस समय तो मेरे एकमात्र शरण आप ही रह गए हैं...माधव, आप नहीं जानते...उस राजसभा में मेरा किस प्रकार अपमान किया गया था...कैसी दुर्गति की थी उस नरपिशाच ने!'' वह सहसा ही मुंह ढककर बिलख पड़ी।

कृष्ण ने विकल होकर रोती पांचाली को स्नेह के साथ सांत्वना दी। बोले, ''सखी, तुम मुझ पर विश्वास करो। अब उन अनाचारियों के दुर्दिन आ गए हैं, तभी वे अनीति पर अनीति करते जा रहे हैं। इसका दंड उनको मिलकर रहेगा!''

द्रौपदी ने अत्यंत करुण स्वर में भर्राए कंठ से कहा, ''उनको कब दंड मिलेगा, माधव? मेरी जैसी माननीया स्त्री, जो महापराक्रमी कुंतीपुत्रों की पत्नी है, आप जैसे अपराजेय धर्मरक्षक की परम प्रिय सखी है और जो यज्ञकुंड से शस्त्रों के साथ उत्पन्न होने वाले महान् बलशाली राजकुमार धृष्टद्युम्न की बहन है, उसको दुर्योधन सभा में साधारणी[1]...नग्ना...बनाने पर तुल गया था! तुम जानते हो माधव, उस राजसभा में मेरे साथ कितना अनाचार किया गया...उस समय मैं अत्यंत लज्जाजनक स्थिति में थी, देवकीनंदन! मैं उस समय रजस्वला थी, एकवसना थी...मेरे वस्त्र पर रक्त के छींटे थे! उस दशा में ही मुझे दासियों की भांति अनाथ मानकर घसीटते हुए महापुरुषों से भरी राजसभा में लाया गया। जनार्दन, मुझे उस दयनीय अवस्था में देखकर धृतराष्ट्र के उन पापात्मा पुत्रों ने मेरा उपहास करके मेरा घोर तिरस्कार किया। मैं तो धर्मतः महात्मा पांडु की ही नहीं, महाराज धृतराष्ट्र की भी पुत्रवधू हूं। फिर भी उनके सामने ही मैं बलपूर्वक दासी बनाई गई! माधव, उस समय मेरे महाबली पांचों पति वहीं उपस्थित थे, किंतु ये निश्चल बैठे देखते रहे। ये पांडव तो कभी, कोई भी शरण में आ जाए तो उसे निराश नहीं करते और प्राण-पण से उसकी रक्षा करते हैं!

---

1. सर्वभोग्या—वेश्या को 'साधारणी' कहा जाता था।

ये महाबली भीम तथा गांडीव धारण करने वाले सव्यसाची अर्जुन भी मौन ही बैठे रहे...अपनी यशस्विनी पत्नी का उन नराधमों द्वारा अपमान होता देखकर भी ये मेरी पुकार की अवहेलना करते रहे। मुझ अबला पर इनको जरा भी दया नहीं आई। धर्म का सनातन मार्ग तो यही है कि निर्बल पति भी अपनी पत्नी की रक्षा करते हैं! इन पांचों महाबली पतियों से उत्पन्न मेरे पांच पुत्र भी हैं, जो इनकी ही भांति महाबली होंगे। कुल के इन पुत्रों की देखभाल के लिए भी तो मेरा होना आवश्यक है...तो भी मेरे पतियों को मुझ पर दया नहीं आई। ये अपराजेय धनुर्धर न जाने कैसे उन पापात्मा और अपने से दुर्बल कौरवों को मेरा तिरस्कार करते देखते रहे। जनार्दन, उस समय उन सभी श्रेष्ठ कुलपुरुषों के समक्ष मुझे दासी बनाया गया...साधारणी स्त्री की भांति आपकी इस सखी का दासीभाव से उपभोग करने की इच्छा की गई! और कौरव कुल के महान्, कुलपूज्य पुरुषों तथा आचार्य द्रोण जैसे धर्मज्ञों के सामने ही मुझे निर्वसन करने के लिए पापी दु:शासन को आज्ञा दी गई। उस समय सूतपुत्र कर्ण ने पांच पतियों की पत्नी...मुझे वेश्या का कर्म करने वाली स्त्री कहा! माधव, उसने आपके और पूज्य महर्षि व्यास के धर्म द्वारा समर्थित उस विवाह-प्रसंग का भी अपमान किया...''

पांचाली व्यथा से कांपती हुई क्रंदन करने लगी। आक्रोश-भरा सन्नाटा छाता रहा। फिर और भी क्षुब्ध होकर बोली, ''जनार्दन उस समय किसी ने मेरी रक्षा नहीं की। मात्र एक महारथी विकर्ण अवश्य धर्म का पक्ष लेने के लिए उस सभा में उठा था, किंतु उसको 'मूढ़ बालबुद्धि तथा कुलांगार' कहकर बरबस चुप करा दिया गया। ऐसे में मुझे आपके सिवा कोई शरण देने वाला नहीं सूझा। तब मैंने आपकी दुहाई देकर अपनी लाज की रक्षा करने की प्रार्थना की। कौन जाने वह कोई दैवी चमत्कार था कि आपके नाम की पुकार सुनकर मुझे निर्वसन करके दुष्ट दुर्योधन की आकांक्षा पूरी करने की दुश्चेष्टा में लगा दु:शासन सहसा ही अपना बल हारकर अचेत-सा हो गया। मेरी लज्जा की रक्षा हो गई...

''मैं इतने पर भी जीवित हूं तो मात्र इस आशा पर कि एक बार माधव से भी अपना दु:ख रोकर देख लूं, कदाचित आप ही मेरी पीड़ा दूर करने का प्रयत्न करें! ये हमारे महात्मा पति तो केवल धर्म के लिए जीते हैं...अपने से नितांत दुर्बल शत्रु को भी अपनी पत्नी का घोर अपमान करते देखकर इनको क्रोध नहीं आता! ये धर्मराज युधिष्ठिर तो अपने साथ-साथ अपने महाबली भ्राता भीम को भी बंधन में रखते हैं। और ये स्वयं तो दया और न्याय की दुहाई देकर संभवत: अनंत काल तक प्रतीक्षा कर सकते हैं, किंतु मुझमें तो इतनी

सहनशीलता नहीं है, वासुदेव!''

कहती-कहती द्रौपदी सहसा फिर हथेलियों से अपने सुंदर मुखमंडल को ढककर रोने लगी।

वासुदेव ने अत्यंत गंभीर होकर कहा, ''भाविनि, तुम जिन पर कुपित हो, एक दिन उनकी पत्नियां भी अवश्य तुम्हारे शाप से हतश्री, अपने पतियों को अर्जुन के बाणों से लहूलुहान, क्षत-विक्षत धरती पर पड़ा देखकर विलाप करेंगी...तुम आश्वस्त रहो! मेरा तुम पर और पांडवों पर परम स्नेह है। धर्म के मार्ग पर आरूढ़ पांडवों के हित के लिए मैं सदा ही सक्रिय रहा हूं और भविष्य में भी जो संभव है, मैं वह सब अवश्य करूंगा! मैं तुमसे सत्य कहता हूं, एक दिन तुम इस दुरवस्था से उबरकर निश्चय ही पहले की ही भांति यशस्विनी महारानी बनोगी!''

कृष्ण का आश्वासन पाकर द्रौपदी ने अपने प्रिय पति सव्यसाची अर्जुन की ओर किंचित तिरछी चितवन से देखा।

अर्जुन ने कहा, ''सुलोचने, वरवर्णिनी! अब तुम विलाप मत करो। वासुदेव जो कह रहे हैं, वह सब होकर रहेगा।''

द्रौपदी कुछ आश्वस्त होकर शांत हो गई।

कुछ देर बाद कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा, ''पांडुनंदन, यह सब मात्र इस कारण हुआ कि उन दिनों मैं कहीं और चला गया था। यदि मैं द्वारका में होता और मुझको संवाद मिलता कि कौरवों ने पांडवों को शकुनि के बल पर द्यूतविद्या से ठगने के लिए यह षड्यंत्र रचा है तो तत्काल वहां आता और हर किसी को इस हेय क्रीड़ा का दोष बताकर द्यूतक्रीड़ा को रोक देता। महाराज युधिष्ठिर, मैं आपसे भी इस व्यसन को त्यागकर सुख से प्रजापालन में रत रहने को कहता! यदि दुरात्मा कौरव इतने पर भी नहीं मानते तो मैं स्वयं उनका और उनके सभी अधर्मी मित्रों और अनुगामियों का वध कर देता। मेरे होने पर तो उनमें से कोई भी यह अनाचार करने की सोच भी नहीं पाता! और यदि तब भी वह इस छल से विरत न होता तो निश्चय ही मेरे हाथों उसका वध होकर रहता। किंतु महाकाल की इच्छा के अनुसार हम सब पर ऐसी विपत्तियां आती रहती हैं, उसे धैयपूर्वक ही सहन करना होता है।''

उन्होंने फिर द्रौपदी की ओर देखते हुए कहा, ''कल्याणी, यह मत सोचो कि महात्मा युधिष्ठिर अथवा अन्य पांडवों को अपकार का यह प्रसंग किसी तरह भूल जाएगा। समय आने पर वे इसका प्रतिकार करके ही रहेंगे। तुमको तनिक भी चिंता नहीं करनी चाहिए।''

पांडवों को उत्सुक देखकर कृष्ण ने बताया कि उन दिनों वह स्वयं कहां

उलझ गए थे—

जब मैं पिछली बार इंद्रप्रस्थ आया था और आपके राजसूय के समय चेदिराज दमघोष के पुत्र शिशुपाल का वध कर दिया था, उसी कांड के कारण मर्तिकावत देश का राजा शाल्व सहसा क्रोध में भरकर मेरी अनुपस्थिति में ही द्वारका पर चढ़ आया। आपने भी सुना होगा कि शाल्व के पास एक विशालकाय विमान है— सौभ, जो आकार में विशाल होने के कारण 'नगराकार' कहा जाता है। अनेक अस्त्र-शस्त्र से संपन्न उसका यह विमान उसकी सबसे बड़ी शक्ति थी। उसी के कारण शाल्व अपराजेय हो गया था। वह सौभ विमान लेकर सहसा द्वारका पर चढ़ आया। यादव वीरों ने उसका डटकर सामना किया। वह अभिमानी राजा शिशुपाल के वध का प्रतिशोध लेने के लिए मुझे ही खोजता फिर रहा था। मेरे न रहने पर पराक्रमी प्रद्युम्न, सात्यकि आदि योद्धाओं ने हर प्रकार से उसका सामना करके द्वारका को तो नष्ट होने से बचा लिया, किंतु वह माया से संपन्न अपने सौभ विमान और अपनी मायावी विद्या के प्रभाव से युद्ध में मारा नहीं जा सका था। उसने मेरे आनर्त देश में आकर भयानक नर-संहार किया था और घोर उपद्रव से वहां आतंक फैलाकर लौट गया था।

मैं यहां से लौटकर गया तो देखा कि शाल्व युद्ध में मेरे महापराक्रमी पुत्र रुक्मिणीनंदन प्रद्युम्न से अंत तक पराजित होकर चला तो गया था, किंतु मैंने जब द्वारका में प्रवेश किया तो मेरी वह प्रिय नगरी सर्वथा श्रीहीन हो रही थी। न तो वहां कहीं से स्वाहा की ध्वनि उठ रही थी, न कहीं स्वाध्याय अथवा वषट्कार होता था। विचित्र शोभावाली द्वारकापुरी उस समय किसी अलंकार-रहित सुंदरी के समान निस्तेज और उदास लग रही थी। उसके वन-उपवन अपनी दिव्य शोभा के लिए इंद्र के नंदन कानन से टक्कर लेते थे, किंतु उस समय मुझे तो वह पहचान में ही नहीं आ रहे थे। मैंने चकित-विस्मित होकर वहां का दृश्य देखा तो योद्धा कृतवर्मा से पूछा, "महाबली यादवशिरोमणि, सहसा ऐसी कौन-सी विपत्ति आ गई कि आज वृष्णिकुल के देवताओं जैसे योद्धा तक अस्वस्थ जान पड़ते हैं!"

तब कृतवर्मा ने सौभ विमान के दंभी स्वामी शाल्व के आक्रमण और घोर उत्पात के विषय में विस्तार से बताया।

मैंने उसी समय शाल्व को उसके अभिमान और उपद्रव का दंड देने का निश्चय कर लिया और अपनी चतुरंगिणी सेना को संनद्ध करके अपने शैव्य तथा सुग्रीव आदि चार अश्वों से खींचे जाने वाले रथ को लेकर उस दंभी असुर जैसे योद्धा शाल्व का विनाश करने के लिए चल पड़ा। मैं अनेक सरिताओं,

बहुत-से राज्यों तथा पर्वतों को लांघता हुआ मर्तिकावत देश में जा पहुंचा, किंतु शाल्व वहां कहीं नहीं मिला। मुझे चरों से संवाद मिला कि वह अपने सौभ विमान को लेकर समुद्र की ओर गया है। मैं उसका पीछा करने लगा। अंत में मैंने देखा कि वह अपने सौभ विमान पर आरूढ़ होकर समुद्र के नाभिदेश में एक द्वीप पर बैठा निश्चिंत भाव से हमारी ही प्रतीक्षा कर रहा है। उसने हमको देखकर वहीं से ललकारना आरंभ कर दिया और स्वयं को परम सुरक्षित मानकर हमारा उपहास करने लगा।

उस समय मुझे यह देखकर घोर दुःख हुआ कि वह ऐसा व्यूह बनाकर बैठा था कि मेरे विशाल शार्ग धनुष से छूटे बाण भी उस तक नहीं पहुंच रहे थे और वह निरंतर मुझ पर और मेरी सेना पर अपने तीक्ष्ण बाणों से प्रहार कर रहा था। मेरे ऊपर सहसा गदा, हल, प्रास, शक्ति, परशु, शूल, परिघ, बाण, पट्टिश, भुशुंडी, ऋष्टि और कनप जैसे घातक शस्त्रों की वर्षा होने लगी। यह सब शाल्व की माया का परिणाम था। मैंने तब कुपित होकर अपने कुंदपुष्प की-सी कांतिवाले पांचजन्य शंख से प्रचंड घोष किया और शाल्व की माया को अपनी मायाशक्ति से ही नष्ट कर दिया। फिर तो उसके अनुगामी मायावी सैनिक सहसा समुद्र में गिरने लगे।

अपने योद्धाओं को इस प्रकार समुद्र में पतित होता देखकर शाल्व ने फिर और भी विकट माया का आश्रय लिया। उसने ऐसा कुछ किया कि दिग् और काल दोनों के विषय में हमको विचित्र-सा भ्रम व्याप गया। हमारे योद्धा अपनों पर ही प्रहार करने लगे। मैंने फिर उसकी माया को माया से ही नष्ट किया। सब ओर प्रकाश हो जाने पर फिर से रोमांचकारी युद्ध छिड़ गया।

शाल्व की सेना नष्ट होने लगी। वह पराजय की स्थिति में पहुंच गया तो उसने इस बार एक ऐसी विकट माया रची थी कि मैं भी उसके भ्रम में पड़कर सुध-बुध खो बैठा था। शाल्व की माया से मैं मूर्च्छित-सा होकर देखता क्या हूं कि वह मेरे महापुण्यवान पिता वसुदेव को बंदी बनाकर ले आया है और न जाने कैसे सौभ विमान को आकाश में ले जाकर उसने मेरे पिता को अचानक ही नीचे फेंक दिया। मैं हतवाक्, स्तब्ध देखता ही रह गया। मेरे पिता का शरीर इस प्रकार नीचे गिर रहा था जैसे पुण्य क्षीण हो जाने पर महाराज ययाति का स्वर्ग से पतन हो रहा हो। मेरे मान्य पिता उस समय एकदम निस्तेज हो गए थे और उनके वस्त्र शरीर पर खुलकर अस्तव्यस्त हो रहे थे। उनके सिर पर शोभा पाने वाला तेजस्वी उष्णीष भी मलिन लग रहा था और तार-तार हो गया था! मेरे मूर्च्छित पिता पर शाल्व के योद्धा निरंतर शूल आदि से प्रहार करके उनके शरीर को क्षत-विक्षत कर रहे थे। मैं पिता की दशा देखकर हतचेत हो गया।

फिर कोई दो घड़ी बाद मैं जब सचेत हुआ तो यह देखकर विस्मित रह गया कि न तो वहां महासमर का कोई चिह्न था, न कहीं मेरे पिता ही थे! सौभ विमान भी अदृश्य था। तब मुझे निश्चय हो गया कि यह अवश्य शाल्व की माया ही थी। मैं फिर सतर्क होकर युद्ध करने लगा। और अब बहुत संहार हो गया था। रणभूमि में रक्त से कीचड़ ही कीचड़ हो गया। मैं अपने सधे हुए बाणों से शत्रुओं के सिर काट-काटकर गिराने लगा। तब परास्त होते सौभ विमान को लेकर शाल्व एकाएक फिर अदृश्य हो गया। उस समय कोई दीखता नहीं था, किंतु उसके सैनिक कभी-कभी भीषण कोलाहल करते थे, तब उनको लक्ष्य करके मैंने अपने शब्दवेधी बाणों से उनका वध करना आरंभ कर दिया। उस समय शाल्व ने अंतिम बार अपनी माया प्रसारित की—देखते ही देखते मेरे रथ पर चारों ओर से विशाल शिलाखंड बरसने लगे। और कुछ ही देर में मैं अपने सारथी दारुक, अपने चारों बलवान अश्वों और रथ सहित उन शिलाओं के बीच भिंचकर अदृश्य हो गया।

मेरी वह दशा देखकर मेरे अनुगामी योद्धाओं को लगा कि मेरा अंत हो गया। मेरे अश्व शिलाखंडों के भार और आघातों से अत्यंत पीड़ित हो उठे थे। उस समय मैंने इंद्र की भांति अपना वज्रायुध लेकर पल मात्र में उन विशाल शिलाखंडों को काटकर तिल की भांति बिखरा दिया। मुझे फिर देखते ही मेरे योद्धाओं ने हर्षनाद किया और भेरीघोष करते हुए उस मायावी दानव-शक्ति से भरपूर शाल्व से युद्ध करने लगे।

उस समय मेरे अतिरथी सारथी दारुक ने कहा, "महाबाहु केशव, कोई कितना ही बलवान क्यों न हो, उसे अपने से दुर्बल शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए; क्योंकि ऐसा निर्बल शत्रु भी महाकाल की ओर से प्रेरित होकर अथवा अवसर पाकर किसी भी समय बलवान हो जाता है और घातक आघात कर सकता है। अत: अब आप इस शाल्व की ओर से अपना कोमल भाव दूर करके प्रयत्नपूर्वक उसका वध कर ही डालिए। महाभाग, जरा देखिए तो उसके शिलाखंडों के आघात से हमारे बलिष्ठ अश्व तक कितने पीड़ित हो रहे हैं! शास्त्रों का कहना तो यह है कि यदि शत्रु अपने घर में ही बैठा हो तो भी उसको नष्ट कर देना ही उचित है, फिर जो युद्धभूमि में अपनी कपटमाया से बार-बार पीड़ित कर रहा है, उस पर दया कैसी!"

मुझे भी अब शाल्व की धृष्टता पर क्रोध आ गया था। अपनी प्रिय पुरी की दुर्दशा याद आते ही मैं विकल हो उठा। फिर मेरे पूज्य पिता का जिस प्रकार अपमानजनक प्रदर्शन उस मायावी नरपिशाच ने किया था, उससे तो वह मुझे कंस के समान ही घोर अपराधी लगा। अत: मैंने बड़े यत्न से अपने चक्र

को धारण किया और मंत्र से उसका अभिषेक करके सौभ विमान सहित शाल्व का विनाश करने के लक्ष्य से मुक्त कर दिया।

मैंने अपने बाहुबल से उस महाचक्र को सौभ विमान का लक्ष्य करके आकाश की ओर प्रेरित कर दिया। फिर तो कोई शाल्व की रक्षा नहीं कर सकता था। मेरे तीक्ष्ण अरों वाले चक्र ने पलक झपकते सौभ विमान को बीच से काटकर दो खंडों में कर दिया और कुछ ही पलों में शाल्व का वध कर डाला! फिर तो सौभ विमान आकाश से महासमुद्र में गिरकर अपने ऊपर बैठे उन दानवों सहित समुद्र की लहरों में विलीन हो गया।

इस प्रकार अंततः सौभ विमान और राजा शाल्व को नष्ट करके मैं फिर द्वारका लौट आया। वहां पहुंचने पर मैंने सात्यकि से यहां का समाचार सुना। पांडुनंदन, इसी कारण मैं उन दिनों हस्तिनापुर नहीं आ सका था। यदि मैं उस समय आ जाता तो न तो यह जुआ ही होता, न पांचाली का तिरस्कार करने वाले ही जीवित रह जाते! किंतु जिस प्रकार बांध टूट जाने पर कोई उस अथाह और वेगशाली जलप्रवाह को नहीं रोक पाता, उसी प्रकार आज जब काल की प्रेरणा से सब कुछ बिगड़ चुका है, तो मैं ही क्या कर सकूंगा!''

कुछ दिनों तक पांडवों के साथ वन में ही रहकर कृष्ण तथा धृष्टद्युम्न आदि सभी संबंधियों ने उनको हर प्रकार से आश्वस्त किया। युधिष्ठिर की वास्तव में धर्म के प्रति सुदृढ़ आस्था थी तथा वह अपने वचनों के प्रति कृतसंकल्प होकर जीवन-भर उनका पालन करते थे! इसी कारण उनको सब 'धर्मराज' कहते थे। और उनकी माता कुंती के अनुसार तो युधिष्ठिर का जन्म स्वयं धर्मदेव की कृपा से ही हुआ था!

कृष्ण स्वयं इतना कुपित हो गए थे कि लगता था, वे इस बार कौरवों को क्षमा नहीं करेंगे और उन्हें पांडवों के अपमान तथा छलपूर्वक उनका राज्य अपहृत करने का दंड देकर रहेंगे। लेकिन युधिष्ठिर ने उनसे करबद्ध होकर विनती की, ''वासुदेव, आप सर्वशक्तिमान हैं और जो भी चाहें कर सकते हैं। इस समय पृथ्वी पर कोई भी शक्ति ऐसी नहीं है जो आपके अधीन चलने वाले यादवसंघ की कामना के विपरीत जाने का साहस कर सके, किंतु मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि अभी शांत रहें। जिस समय हमने दोबारा जुआ खेलने का आमंत्रण स्वीकार किया, उस समय, चाहे आप इसे मेरे व्यसनप्रेम का दोष कह लें चाहे मेरे अंतर्मन में बसी मेरी यह कामना कि मैं ही इन कौरवों को परास्त करके उनको भी अपने अधीन कर लूं! किंतु जो भी हुआ वह कालदेवता की इच्छा थी और मैं फिर शकुनि के कपटजाल में आकर पराजित हो गया। फिर

भी वासुदेव, आपने तो सुना ही होगा कि उस समय मैंने वहां उपस्थित राजसमाज में सबके सामने दावं को माना था और पराजित होने पर बारह वर्ष के वनवास तथा तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास की प्रतिज्ञा की थी। इसलिए मेरी आप सबसे यही प्रार्थना है कि इस समय तो मेरी उस प्रतिज्ञा का विचार करके हमको अपने धर्म का पालन करने की ही अनुमति दें। जब हमारी यह प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाए तो चौदहवें वर्ष आप सबकी इसी हितैषी भावना के अधीन रहकर हम फिर से अपना राज्य वापस लेने के लिए उद्योग करेंगे। मुझे तो ऐसा ही लगता है कि अपने कुटिल मित्रों से घिरा दुर्योधन मेरे राज्य को पाने के लिए जिस प्रकार आतुर रहा है तथा उसको पाने के लिए उसने जिस प्रकार जघन्य से जघन्य कर्म करने में भी कोई हिचक नहीं दिखाई, वह प्रतिज्ञा पूरी होने के बाद भी अपनी ओर से कभी हमारा राज्य वापस देने को तैयार नहीं होगा। उस समय हमको पुरुषार्थ का ही संबल लेना होगा; तब हमको आपकी और अपने इन सभी हितैषियों की सद्भावना तथा सहयोग का ही तो सहारा होगा! अत: मेरी इतनी ही विनती है, जनार्दन कि आप इस समय क्रोध-संवरण कर लें। आपको उचित-अनुचित समझाने वाला कौन हो सकता है? इस समय तो सारी धरती पर सभी यही मानते हैं कि वासुदेव कृष्ण सदा धर्म का ही पक्ष लेते हैं! इसी से विद्वान् महापुरुष तथा इस युग के श्रेष्ठ महर्षि तक कहा करते हैं कि जहां कृष्ण हैं, वहीं धर्म है, और जहां धर्म है वहीं विजय है!''

युधिष्ठिर की अवज्ञा स्वयं कृष्ण भी नहीं करते थे। वय में ज्येष्ठ होने के कारण वह ज्येष्ठ पांडव को स्वयं भी प्रणाम करते थे, अत: उन्होंने युधिष्ठिर की बात मानकर द्रौपदी तथा अपनी बहन सुभद्रा को भी यही सांत्वना दी कि समय का चक्र बड़ा बलवान होता है। यदि ऐसा नहीं होता तो क्या युधिष्ठिर जैसे प्रजापालक राजा द्यूतविद्या के सारे अवगुणों से परिचित होते हुए भी स्वयं उसमें प्रवृत्त होते। और फिर कैसा दुर्योग है कि उस समय पांडवों का कोई मित्र वहां उपस्थित नहीं था। और उसी समय दुष्ट शाल्व ने भी शिशुपाल के वध से उत्तेजित होकर द्वारका पर आक्रमण कर दिया कि यहां से राजसूय के पश्चात् लौटकर जाते ही मुझे उससे युद्ध करने को जाना पड़ा। यदि मैं द्वारका में होता तो निश्चय ही समय रहते मुझे दुर्योधन और शकुनि द्वारा पांडवों के राज्य का अपहरण करने के लिए किए जाने वाले इस कपटजाल और षड्यंत्र की सूचना अवश्य मिल गई होती। तब मैं तत्काल हस्तिनापुर आकर सबको इस द्यूतक्रीड़ा से रोकता और इसके लिए चाहे सचमुच मुझे कौरवों और उनके अनुगत सभी राजाओं का वध ही करना पड़ता, तब भी मैं वह क्रीड़ा नहीं होने देता! मेरी उपस्थिति में माननीया द्रौपदी को राजसभा में लाकर अपमानित करने का साहस

कौन कर सकता था!''

कृष्ण ओज के साथ बोले, ''किंतु जैसा मैं कह चुका, बांध टूट जाने के बाद जिस प्रकार वेग से निकलते जल-प्रवाह को कोई नहीं रोक पाता, उसी प्रकार अब इतना सब हो चुका है कि मेरे या किसी के भी करने से कुछ नहीं होगा। काल का प्रवाह भी किसी के रोके नहीं रुक सकता। अब तो धर्मराज की प्रतिज्ञा के अनुसार, हमको बारह वर्ष अथवा पूरे तेरह वर्षों तक प्रतीक्षा करनी ही होगी...लेकिन मैं इतना वचन देता हूं, पांचाली, कि चौदहवें वर्ष तुम्हारे मन में जो व्यथा है, वह पूरी तरह नष्ट हो जाएगी और तुम्हारी हर शपथ भी निश्चय ही पूरी होगी। मैं भविष्य देख रहा हूं...कौरवों के लिए महाकाल ने ही ऐसा जाल बिछाया होगा। उनका सर्वनाश होकर रहेगा। और एक बार फिर राजा युधिष्ठिर पहले की ही भांति चक्रवर्ती सम्राट् का पद प्राप्त करेंगे। तब पांचाली फिर से महारानी बनेगी और आज जिस प्रकार से अपनी मनोव्यथा से पीड़ित होकर वह वेणी खोले दिन काट रही है, चौदहवें वर्ष पांडवों के शत्रुओं की पत्नियों को इससे भी कहीं भयावनी व्यथा सहनी पड़ेगी। उनकी वेणी खुलेगी! और फिर कभी भी श्रृंगार करके बंधने के लिए नहीं खुलेगी; वह तो जीवन-भर के लिए खुलेगी, क्योंकि यमराज के यहां गए उनके दुरात्मा पति फिर कभी लौटकर उनका सौभाग्य नहीं जगा पाएंगे।''

द्रौपदी की आंखें बरसती रहीं। वह आंसुओं से ही वासुदेव की अर्चना कर रही थी।

समय बहुत बीत चला था।

अंत में मिलने के लिए आए सभी संबंधियों के विदा लेने की वेला आ ही गई। उन लोगों ने जाने के पहले वन में जीवन बिताने वाले पांडवों की सुविधा तथा आवश्यकताओं का ध्यान रखकर अपनी ओर से अनेक रथ, अश्व आदि वाहन तथा और भी बहुत कुछ उपहार में दिया। फिर धर्मराज से अनुमति लेकर उन्होंने पांडवों का बोझ कम करने के लिए तथा और बहुत-सी बातों को ध्यान में रखकर यह प्रार्थना की कि स्त्रियों तथा बालकों को अपने साथ वन में रखने से सभी को अनेक कष्ट उठाने पड़ेंगे। फिर बालकों की शिक्षा आदि में भी व्याघात आएगा। और द्यूत के समय तो मात्र पांडवों के लिए वनवास की प्रतिज्ञा करवाई गई थी, उनके सभी बंधु-बांधवों के लिए तो नहीं! ऐसे में यदि महाराज आज्ञा दें तो उन्हें हम अपने राज्यों में ले जाएं, जिससे उनका यथोचित पालन-पोषण किया जा सके।

युधिष्ठिर ने तुरंत अनुमति दे दी।

वासुदेव कृष्ण जब जाने लगे तो उन्होंने अपनी प्रिय बहन सुभद्रा तथा

उनके पुत्र अभिमन्यु को भी अपने सुंदर रथ पर बैठा लिया। उन्होंने पांचाली से भी द्वारका चलकर अपने पुत्रों के साथ रहने का अनुरोध किया, किंतु पांचाली तो अपने पतियों से एक पल को भी अलग नहीं होना चाहती थी। उसने अपने भ्राता महापराक्रमी धृष्टद्युम्न से भी क्षमा मांग ली। वह वन में अपने पति पांडवों के साथ ही रहने को कृतसंकल्प थी। हां, उसने अपने पांचों पुत्रों को धृष्टद्युम्न के साथ पांचाल जाने की अनुमति दे दी।

द्रौपदी ने केवल इतना ही कहा, ''अपनी मानकर इस सखी का ध्यान रखना, माधव!''

कृष्ण ने उसे आश्वस्त करके विदा ली।

उनके साथ उस समय बीस सेवक मार्ग की सुविधा-असुविधा का ध्यान रखते हुए अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर चल पड़े। उन्होंने अनेक धनुष तथा एक से एक बढ़कर विषाक्त, प्रखर बाणों के साथ ही डोरी, यंत्र तथा अनेक प्रास, तोमर, परिघ एवं खड्ग भी ले रखे थे। कृष्ण ने अपने से वय में बड़े युधिष्ठिर तथा भीम के चरण छूकर प्रणाम किया। दोनों ने स्नेह से विकल होकर, कृष्ण का सिर सूंघकर उन्हें विजय का आशीर्वाद दिया। वासुदेव ने परम मित्र तथा समवयस्क होने के कारण अर्जुन का आलिंगन करके अपना स्नेह जताया। नकुल और सहदेव ने उनके चरण छूकर प्रणाम किया। अंत में द्रौपदी ने पहले की ही भांति आंसुओं से उनकी अर्चना की। पांडवों के पुरोहित धौम्य मुनि ने भी वासुदेव कृष्ण को स्वस्तिवाचन करके आदरपूर्वक विदा किया।

उनके पीछे युधिष्ठिर का सारथी इंद्रसेन भी अपने कई सहयोगी सारथियों के साथ अनेक रथों को लेकर चला। उन पर सव्यसाची अर्जुन की परिणीता सुभद्रा के वस्त्र-आभूषण आदि थे। साथ ही उनके अनुचर— दास-दासियां आदि भी द्वारका जा रहे थे।

पांडवों से विदा लेकर वासुदेव कृष्ण के पश्चिम दिशा में बसी यादवों की नगरी द्वारका चले जाने के बाद धृष्टद्युम्न ने भी अपनी बहन द्रौपदी के पांचों कुमारों एवं उनके वस्त्र-आभूषण तथा अनुचरों को लेकर पांचाल देश की राजधानी कांपिल्य की ओर प्रस्थान किया। जाते-जाते भी वह द्रौपदी को हर प्रकार से सांत्वना देते रहे। उनका स्वर कंठावरोध हो जाने के कारण फंसा-फंसा-सा था। उन्होंने कहा, ''हमारे पूज्य पिता, पांचाल देश के अधिपति अवश्य प्रतीक्षा कर रहे होंगे कि मैं उनकी प्रिय पुत्री को भी अपने साथ लेकर ही आऊंगा, लेकिन तुमने जो निर्णय लिया है, वही धर्म के अनुरूप है। मैं तुम्हारी निष्ठा पर गौरवान्वित हूं।''

भाई के वचनों से द्रौपदी विह्वल होकर रो पड़ी। उसने अपने पराक्रमी

भाई से आशीर्वाद पाकर अपने को धन्य माना। उसने अपने पांचों पुत्रों को हृदय से लगाकर उनका सिर सूंघा और फिर हँसते-हँसते उनको विदा किया।

युधिष्ठिर की अनुमति लेकर चेदिदेश के नरेश धृष्टकेतु भी अपनी राजधानी शुक्तिमती पुरी जाने को तैयार हो गए। उनकी बहन करेणुमती नकुल की भार्या थी। धृष्टकेतु उसको भी अपने साथ लेकर चेदि देश की ओर चल पड़े।

नौ

संबंधियों तथा अंतःपुर की लगभग सभी स्त्रियों के कुटुंब सहित चली जाने के बाद केवल पांचों पांडव और द्रौपदी ही वनवास के लिए दृढ़ होकर वहां रह गए थे। उनके साथ महर्षि धौम्य, कुछ परिजन, अनुचर एवं दासियां तथा सारथी आदि भी रहे। साथ ही कुछ नागरिकों एवं ब्राह्मणों का विशाल समुदाय भी था।

अब एक प्रकार से पहली बार अपने सभी प्रियजनों से अलग हो जाने के बाद पांडवों और स्वयं द्रौपदी का मन भारी हो आया। उनको अब इस काम्यक वन में सब कुछ विचित्र-सा लगता था। वहां की हर वस्तु अपने प्रियजनों की याद दिलाती थी। वैसे भी वहां बहुत दिनों से रहने के कारण तथा इतने दिनों तक दूर-दूर से आए अतिथियों की भीड़भाड़ को संतुष्ट करने के लिए काम्यकवन के इस खंड में कई पदार्थों का अभाव-सा हो चला था। युधिष्ठिर ने बहुत सोच-समझकर किसी और वन में चलकर कुछ समय बिताने का निश्चय किया। इस निर्णय से लगभग सभी का उत्साह बढ़ा।

पांचाली और पांडव भी अपने लिए उचित निवास का आयोजन करने के लिए किसी और गहन वन में जाने की तैयारी करने लगे। ज्येष्ठ पांडव की आज्ञा से रथों को जोत दिया गया।

राजा युधिष्ठिर ने अपने भ्राताओं से कहा कि कोई ऐसा कल्याणकारी स्थान खोजकर हमें उस महान वन में रहने के लिए कुटीर आदि बनाने होंगे, जहां हम बारह वर्ष तक रहकर इस दारुण प्रतिज्ञा का सफलतापूर्वक पालन कर सकें।

अर्जुन ने ससम्मान कहा, "आपसे बढ़कर तो हममें से कोई भी इस विषय में उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर सकता। आपने तो कितने ही महर्षियों से ज्ञान प्राप्त किया है और हर प्रकार से अनुभव में हमसे श्रेष्ठ हैं। जहां आपकी इच्छा होगी, हम सब तो वहीं आपके अनुगत बनकर रहेंगे। तो भी आपने आज्ञा दी है तो मैं सूचित करना चाहता हूं कि निकट ही एक विशाल जलाशय है जो उस वन के नाम पर द्वैतवन के नाम से ही विख्यात है। मैं कल

जब उस ओर आखेट के लिए गया था तो मैंने उस रमणीय स्थल को देखा था। विशाल सरोवर विविध जातियों के पक्षियों, मीन-मत्स्य तथा सुंदर विशाल कमलों से भरा हुआ अत्यंत मनोरम है। उसके आसपास ही, विशाल वन के बीच, रमणीक जलाशय का आश्रय लेकर कितने ही तपस्वियों तथा कर्मकांडी ब्राह्मणों का निवास भी है। वे लोग अपने-अपने कर्मों में रत होकर सुखपूर्वक निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त, उस वन में विपुल मात्रा में फलमूल आदि भी उपलब्ध हैं। आसपास ही मेध्य मृगों का भी वास है। यदि आपको प्रिय लगे तो वह स्थान हर दृष्टि से हमारे लिए सुखद होगा। मेरी इच्छा तो यही है कि हम वहीं बारह वर्ष के वनवास के उपयुक्त अपने निवास की व्यवस्था करें। वैसे उस स्थान को देखकर आप जो निर्णय करेंगे, हमें तो उसी पर चलना होगा।''

युधिष्ठिर ने कहा, ''पार्थ, तुमने उचित ही सोचा है। अपने शीतल एवं निर्मल जल के लिए प्रसिद्ध द्वैतवन सरोवर के तट पर ही हमको निवास करना चाहिए। यही उत्तम है।''

इसके बाद सभी पांडव तथा महारानी द्रौपदी के साथ— अपने संग-संग लगे ब्राह्मणों सहित— युधिष्ठिर रथों पर बैठकर शीघ्र ही द्वैतवन सरोवर पर जा पहुंचे।

उस विशाल जलाशय का आश्रय लेकर अनेक सिद्ध-महात्मा रहते थे। उनको आते देखकर उत्सुकतावश कितने ही अग्निहोत्री तथा निरग्निक ब्राह्मण, स्वध्याय-रत ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ आश्रम के अधीन वन में रहने वाले सपत्नीक गृहस्थ, संन्यासी, तथा कठोर व्रत लेकर तपस्या करने वाले कितने ही सिद्ध-तपोपूत महात्मा और चारणों ने पास आकर उनका स्वागत किया। अपने संग आए ब्राह्मणों का विशाल समुदाय लेकर पांडवों ने द्वैतवन के उस सुषमा से भरपूर स्थली में प्रवेश किया तो उन सबको अतीव प्रसन्नता हुई।

सरोवर के निकट ही तरह-तरह के हरे-भरे फलों से लदे वृक्ष थे। उस गहन वन में आम, महुआ, तमाल, ताल, नीम, कदंब, साल, अर्जुन तथा कनेर आदि के अनगिनत वृक्ष थे। ऐसे वृक्षों पर फूल भी लदे थे जो इस ऋतु में पुष्प धारण करते हैं। उन पर कोकिल आदि गाने वाले पक्षी तथा मोर ऊंची-ऊंची डालों पर बैठे पिहक रहे थे। सरोवर में चातक-चकोर आदि पक्षियों के जोड़े मनोरम विहार करते हुए विचरण कर रहे थे।

मन को मुग्ध कर लेने वाली वहां की शोभा देखकर युधिष्ठिर अर्जुन की सराहना करने लगे, जो वन में इस दिव्यस्थल को निवास के लिए चुनकर उनको यहां तक ले आए थे। द्वैतवन की सराहना युधिष्ठिर ने पहले भी किन्हीं

ऋषियों आदि से सुनी थी, आज वह प्रत्यक्ष देखने में आया तो कहीं अधिक मोहक लग रहा था। इस सुंदर स्थल पर रहने से तो कभी लगेगा ही नहीं कि उनको राज्य से निर्वासित होकर यहां निवास करना पड़ रहा है! मानसिक पीड़ा तो दूर, यहां तो ऐसा लगेगा मानो उल्लास में भरकर वे पांचाली के साथ विहार करने के लिए आए हैं। आसपास ही पर्वताकार यूथपति गजराज भी अपनी-अपनी हथिनियों का यूथ साथ लेकर वनविहार कर रहे थे।

युधिष्ठिर ने सहसा ही महासुंदरी पांचाली की ओर देखा। वह भी अर्जुन के साथ खड़ी मंत्रमुग्ध-सी वन की शोभा को आंखों से पी रही थी। युधिष्ठिर की दृष्टि का आभास पाकर सहसा सुंदरी द्रौपदी ने उनकी ओर देखा और हँस दी। युधिष्ठिर को अपार हर्ष हुआ। लगा मानो युगों के बाद आज द्रौपदी का, सुंदर दसनों की आभा से उज्ज्वल हास पहली बार देखने को मिला हो। हस्तिनापुर छोड़कर निकलने के बाद यह सचमुच पहला ही अवसर था, जब द्रौपदी का उज्ज्वल हास ज्येष्ठ पांडव के मन को मृदु उजास से जगमग कर गया हो।

इसके बाद महाराज युधिष्ठिर ने अपने पराक्रमी भ्राताओं के साथ रथ से उतरकर इस प्रकार द्वैतवन में प्रवेश किया, मानो देवताओं से घिरे स्वयं देवराज इंद्र अपनी यशस्विनी प्रिया शची के साथ वहां आए हों। उनके तेजोमंडल से प्रभावित अनेक सिद्धों तथा चारणों एवं महर्षियों ने उन लोगों को चारों ओर से घेर-सा लिया। उन सिद्धों-महर्षियों को प्रणाम करके राजा युधिष्ठिर तथा पांडवों और स्वयं सर्वांगसुंदरी पांचाली ने अपने को कृतार्थ अनुभव किया। देवराज के समान तेजस्वी राजा तथा पराक्रमी पांडव योद्धाओं के साथ द्रौपदी जैसी सुकुमारी सर्वांगसुंदरी बाला को वन में आया देखकर वहां रहनेवाले तपोनिष्ठ महर्षियों तथा अन्य सभी वनवासियों के कौतूहल का पार नहीं था। वे स्तंभित-से होकर उन सबको आश्चर्य से निहार रहे थे। महात्मा ऋषियों ने भी पुरोहित-श्रेष्ठ धौम्य से परिचय पाकर राजा युधिष्ठिर का इस प्रकार सम्मान किया मानो उनका पालन करने वाले पिता ही वहां आ गए हों।

उन सबको प्रणाम करके राजा युधिष्ठिर पांचाली के साथ निकट ही एक विशाल वृक्ष के नीचे फैली जड़ों के जाल पर जा बैठे। फिर तो वाहनों से उतरकर निकट ही खड़े उनके चारों महाबली भाई भी आकर उनके निकट ही बैठ गए। अनुचरों तथा दास-दासियों ने भी आकर उनको इस प्रकार चारों ओर से घेरकर स्थान ग्रहण किया मानो देवराज को मध्य में करके देवता मंडलाकर बैठे मंत्रणा कर रहे हों।

एक साथ पांच-पांच लोकविख्यात पांडव धनुर्धरों के कारण वन के उस

विशाल वृक्ष की शोभा भी दर्शनीय हो गई थी!

प्रारब्ध के संकेत पर राजा युधिष्ठिर अपनी पट्टमहिषी—पांचाल की राजदुहिता द्रौपदी तथा चारों बलशाली भाइयों के साथ दु:सह वनवास को अत्यंत सहज भाव से बिताने की चेष्टा में लग गए। उनके अनुज—विशेषकर भीम तथा सहदेव एवं स्वयं द्रौपदी इस स्थिति से असंतुष्ट थे, किंतु वे ज्येष्ठ पांडव की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करते थे। इस विकट संकट का उनके जीवन पर राजा युधिष्ठिर के द्यूतप्रेम के कारण ही प्रहार हुआ था, तो भी अपने धर्मनिष्ठ अग्रज के प्रति उनके मन में कभी इतना आक्रोश नहीं उफनता था कि वे उनसे विद्रोह करके अपना राज्य पाने के लिए बल-संग्रह अथवा कौरवों के विनाश का उपाय करते। यद्यपि उनमें से अकेले भीम तथा अर्जुन ही अपना राज्य छीन लेने में पूरी तरह समर्थ थे, तो भी वे एकमत होकर अपने ज्येष्ठ भ्राता का पिता के समान आदर करते थे और उनके अधीन रहकर ही समस्त कर्तव्य करते थे। उन पराक्रमी भाइयों के कारण युधिष्ठिर परम निश्चिंत होकर नित्य धार्मिक अनुष्ठानों में रत रहा करते थे। पांचों पांडवों की सहधर्मिणी द्रुपदकुमारी पांचाली भी अनंत आस्था के साथ पतियों के सहयोग में रत रहती।

द्वैतवन के बीच से होकर बहने वाली भोग्यवती के नाम की एक नदी थी, जो पवित्र सरस्वती की ही धारा मानी जाती थी। पांडव नित्य नियमपूर्वक उसमें स्नान करके दैनिक कार्य—ऋषियों तथा अनुचरों के पालन के निमित्त फल-मूल का संग्रह, अग्निहोत्र, दान आदि करते। वे अपने समीप रहने वाले जन-समुदाय का पालन-पोषण करते रहते थे। उनके तेजस्वी पुरोहित महर्षि धौम्य नित्य ही पिता की भांति पांडवों का हित करने में लगे रहते तथा उनके यज्ञ-याग एवं पितृश्राद्ध आदि सभी कर्म यथासमय विधिवत कराते रहते। उस स्थान पर रहते समय पांडव भोगवती के तटवर्ती सुखद शालवन में विहार करते रहे।

अपने समृद्ध राज्य से इतनी दूर कुरुजांगल के वनक्षेत्र में निवास करने वाले राजा युधिष्ठिर की कीर्ति राज्यविहीन हो जाने पर भी क्षीण नहीं हुई थी। आज भी महावन में पांडवों के सुंदर आश्रम पर न जाने कितने याचक आते ही रहते थे और द्रुपद की दुहिता महारानी द्रौपदी से पहले की भांति ही श्रद्धापूर्वक प्राप्त अतिथि-सत्कार से तृप्त होकर आशीर्वचनों का उच्चारण करते हुए जाते। पांडवों के यहां निवास करने का संवाद पाकर अजमीढ़वंशी पांडवों की कीर्ति से प्रभावित कितने ही विख्यात ऋषि-मुनि भी उनसे मिलने के लिए जब-तब आते ही रहते थे। एक दिन महातेजस्वी, पुरातन महर्षि मार्कंडेय भी उनके

आश्रम पर आ पहुंचे। युधिष्ठिर उसके महायश तथा तेजोबल से सुपरिचित ही थे। उन्होंने विधिवत् अर्घ्य-पाद तथा मधुपर्क से महान् ऋषि का स्वागत-पूजन किया और उनसे कुशल-संवाद तथा अग्निहोत्र आदि के विषय में चर्चा करने के बाद महर्षि के वचनों की प्रतीक्षा करने लगे।

महर्षि शांत बैठे उन पांचों पांडवों तथा उनकी महासुंदरी श्यामा प्रिया की ओर निश्छल भाव से देखते हुए मुसकराते रहे।

अनंत धैर्य एवं शांत स्वभाव वाले राजा युधिष्ठिर भी उन तेजस्वी ऋषि को इस प्रकार पांडवों तथा पांचाली की ओर निहारकर मुसकराते हुए देख कुछ विचलित हो उठे। तो भी उन्होंने अत्यंत शांत भाव से आदरपूर्वक ही कहा, ''महर्षि, हमारी विचलित राजलक्ष्मी के कारण इस विपन्न अवस्था को देखकर ये सब तपस्वी तो संकुचित-से हो रहे हैं, किंतु इन महात्माओं के सामने ही आप इस अवस्था में भी हमारी ओर देखकर इस प्रकार हर्षित-से मुसकराते दिखाई पड़ रहे हैं...''

''सौम्य, मैं तो हर्ष-विषाद के विकारों के प्रभावित नहीं होता। मैं न तो हर्षित ही हूं और न मुसकरा ही रहा हूं। हर्षजनित अभिमान मुझे स्पर्श नहीं करता। तुम जैसे धर्मनिष्ठ राजा को इस अवस्था में देखकर मुझे तो पुरातन काल में ऐसे ही अपने पिता की आज्ञा से राजलक्ष्मी से वंचित होकर मात्र एक अनुज लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ इसी प्रकार वन-वन भटकने को विवश दशरथनंदन राम की अवस्था का ध्यान आ गया है! तुम्हारी ही भांति दाशरथि राम भी निष्पाप थे, किंतु प्रारब्ध के वश में उनको भी कितने ही गहन वनों में पूरे चौदह वर्ष की लंबी अवधि बितानी पड़ी थी। पराक्रमी होते हुए भी उन्होंने कभी धर्म के विरुद्ध जाकर अपने बल का प्रयोग नहीं किया। उनकी प्रिया सीता का राक्षसराज रावण ने अपहरण कर लिया, तब राम ने अपने पौरुष का प्रदर्शन किया और लंकाधिपति रावण जैसे बलशाली राक्षस का विनाश करके उन्होंने युगों तक अक्षय रहने वाला यश प्राप्त किया था! ''अपने को पराक्रमी जानते हुए भी कभी अधर्म का आश्रय नहीं लेना चाहिए, राजन्, लक्ष्मण जैसे अनुगत अपने अनुजों तथा पांचाल की राजदुहिता—इस सुशोभना, यशस्विनी द्रौपदी के साथ तुम वनवास के इस दारुण प्रण को सफलतापूर्वक व्यतीत करके, निश्चय ही पराक्रम करके, एक दिन फिर चक्रवर्ती नरेश बनोगे और तब फिर से पांडव इस धरती का पालन करेंगे। मैं भविष्य देख रहा हूं...धर्म पर अडिग रहने वाले पराक्रमी पांडव एक दिन विजय प्राप्त करके शत्रुओं के वश में पड़ी अपनी राजलक्ष्मी का निश्चय ही उद्धार करेंगे।''

महातेजस्वी महर्षि मार्कंडेय के मुख से आख्यान के बहाने रामकथा के

नायक राम एवं महानायिका सीता से अपनी समता किए जाने से समस्त पांडव तथा पांचाली भी अत्यंत मुदित होकर मन ही मन अपार सुख और गौरव अनुभव करने लगे। उन्होंने आस्था के साथ फिर महर्षि को प्रणाम किया, किंतु मार्कंडेय ऋषि ने फिर कुछ नहीं कहा। वह तो भविष्यवाचन करने के साथ ही प्रसंगवश उन्हें आशीष भी दे ही चुके थे।

उन्होंने स्पर्शमात्र से पांडवों को संतुष्ट किया और वहां उपस्थित महर्षि धौम्य तथा अन्य तपस्वियों और वनवासियों से मिलकर तप के लिए उत्तर दिशा में हिमवंत की ओर प्रस्थान किया।

जब से बलवान पांडवों ने आश्रम बनाकर द्वैतवन में रहना आरंभ किया था, उस महावन की शोभा ही कुछ और हो गई थी। वहां पांडवों के सुदृढ़ धनुषों की प्रत्यंचा की टंकार ही दुष्टों तथा हिंस्र पशु का-सा आचरण करने वाले अनाचारियों को भयभीत करती रहती थी। दूसरी ओर, पांडवों का आश्रय लेकर वहां बड़ी संख्या में बस जाने वाले ब्राह्मणों द्वारा निर्भीकतापूर्वक किए जाने वाले वेदमंत्रों का उच्चार मन को असीम शांति देता-सा प्रतीत होता था। होमवेला का अनुपम दृश्य देखकर सभी हुलस उठते थे। चारों ओर, दूर-दूर तक वेदियों पर प्रज्वलित अग्नि की शोभा देखते ही बनती थी। यजुर्वेद, ऋग्वेद तथा सामवेद से जो संगीतमय घोष होता था, उसके मृदु गुंजार से समस्त महावन भर उठता। पांडवों द्वारा सुरक्षित उस महावन में तप एवं साधना में निरत ऋषि, मुनि तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मण पुण्य अनुष्ठान में लगे रहते थे।

वहां भी पांडवों की कीर्ति सुनकर कितने ही प्राचीन ऋषियों के वंशज भार्गव, आंगिरस, काश्यप, वाशिष्ठ आदि गोत्रों के तपस्वियों अतिरिक्त, महातेजस्वी अगस्त्य ऋषि के वंशज महात्मा भी आकर पांडवों के आश्रम में कई-कई दिनों तक निवास करते। उन्हें पुरातन राजाओं तथा देवताओं आदि की गाथाएं सुनाकर उनको उपदेश करते तथा उनके धर्माचरण को ही उनकी कीर्ति एवं यश के साथ ही उनकी राजलक्ष्मी की उपलब्धि का सर्वोत्तम साधन बताकर उनको संतुष्ट करते। समय-समय पर पराशरनंदन महर्षि द्वैपायन व्यास भी अनेक महात्माओं के साथ अथवा अकेले ही आकर पांडवों का आतिथ्य ग्रहण करते रहते थे। द्वैतवन के रहने वाले तथा दूर-दूर से आने वाले सभी ऋषि-मुनि पांडवों का—विशेषकर युधिष्ठिर का बहुत आदर करते थे।

समय बीतता जा रहा था।

द्रुपदकुमारी का मन अब भी अपने अपमानों की याद से टीसता रहता था। पतिव्रता द्रौपदी अपने सौंदर्य तथा अनुपम वय एवं यौवन के कारण जितनी

दर्शनीया तथा कमनीया थी, उतनी ही विदुषी भी थी। वह सम्राज्ञी के रूप में वर्षों तक इंद्रप्रस्थ में रहते समय समग्र साम्राज्य की देखरेख के साथ ही अनुकूल समृद्धि देने वाली मंत्रणा में भी समर्थ थी। सभी पांडव वीर उसके मत का आदर करते थे।

एक दिन अतीत की क्षोभकारी घटनाओं की याद आने से संतप्त द्रौपदी ने गीली आंखों से धर्मराज युधिष्ठिर की ओर देखते हुए कहा, ''मुझे पूरा विश्वास है कि आप जिस कुलांगार दुर्योधन को अपना आत्मीय कहकर अब भी उसके समस्त अपराधों को भूले रहते हैं, उसको आपकी अथवा हमारी इस दुरवस्था से तनिक भी दुःख नहीं होता होगा। वह तो अपने कुटिल मित्रों एवं मंत्रियों के साथ इस प्रकार छल से, बिना बाहुबल के ही, आपका सुसंपन्न इंद्रप्रस्थ राज्य पाकर अभिमान से फूला नहीं समाता होगा।''

इतने दिनों तक द्वैतवन में शांतिपूर्वक समय बिताने के बाद, आज सहसा पांचाली को इस प्रकार अतीत की पीड़ा से व्यथित होकर ऐसे वचन कहते देख युधिष्ठिर मन ही मन सशंक हो उठे। वह व्यग्र द्रौपदी की बड़ी-बड़ी आंखों से झरती अश्रुधारा से द्रवित हो गए। उसको सांत्वना देने वाले शब्दों का अभाव-सा अनुभव होने लगा था। वे चुपचाप द्रौपदी के उद्‌गार निकल जाने की प्रतीक्षा करने लगे।

किंतु पांचाली तो मानो आज धैर्य का बांध टूट जाने से अपने को संभाल नहीं पा रही हो। वह अत्यंत करुण स्वर में बोलती रही, ''राजन्, आप जब वल्कल वस्त्र धारण करके वन की यात्रा के उद्देश्य से निकल रहे थे, उस समय मात्र चार दुरात्माओं को छोड़कर और सभी कुरुवंशियों तथा सभासदों की आंखों में आंसू आ गए थे। किंतु पापी दुर्योधन, कर्ण, दुरात्मा गांधारराज शकुनि तथा धृतराष्ट्र का उग्र स्वभाव वाला पुत्र नीच-कर्मा दुःशासन—यही चारों हमारी दीन अवस्था देखकर निर्लज्जता पूर्वक हँस रहे थे। आपको तो याद होगा कि उस समय महाबली भीम की चाल का स्वांग करते हुए दुर्योधन ने किस प्रकार उनका उपहास किया था!''

युधिष्ठिर ने मृदु स्वर में कहा, ''प्रिये, उन बीते हुए क्षणों को याद करने से मन और व्यथित ही होगा। तुम उनको भूलकर, प्रारब्ध मानकर धैर्यपूर्वक वर्तमान के लिए जो उचित है, उस व्रत का पालन करती रहो। समय आने पर यह सब बदल जाएगा। हमारे लिए ऐसा विधान तो नहीं है कि हम आजीवन इसी प्रकार निर्वासित रहकर जीवन व्यतीत करें।''

द्रौपदी रोती हुई करुण स्वर में बोली, ''मुझमें आप जैसा धैर्यबल नहीं है, आर्यपुत्र, मैं कहां से लाऊं इतना धैर्य? मैं तो इंद्रप्रस्थ में आपको मूर्धाभिषेक के

समय शुभ्र कौशेय वस्त्रों से आच्छादित, चंदनचर्चित एवं सूर्य के समान तेजस्वी सम्राट् के रूप में देश-देश के राजाओं से घिरा देख चुकी हूं और आज आपको कीचड़ से मलिन देखती हूं! जिनको मैं सभाभवन में शुभ्र हाथीदांत के मणिजटित सिंहासन पर बैठा देखती थी आज उन्हीं महान नृपति को कुश की चटाई पर हीन अवस्था में पड़ा देखती हूं तो मेरी छाती फटने लगती है! आपकी पाकशाला से नित्य सहस्रों यति-ब्राह्मण तथा भूखे अतिथियों को स्वर्णथालों में सुसज्जित अनेकानेक पकवानों से तृप्त किया जाता था; आज उन्हीं कुंतीनंदन को पेट भरने के लिए दोने तथा पत्तलों में रखे कंद-मूल-फल का भोजन करते देखकर मुझसे तो धैर्य नहीं रखा जाता। आपके जिन पराक्रमी अनुजों में समग्र शत्रुओं का सहज ही संहार कर देने की शक्ति है, उन कुंडल-किरीटधारी भीम, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव को मैं वनवासी आखेटकों की भांति वल्कल धारण करके यहां-वहां भटकती देखती हूं तो मेरा धीरज भंग होने लगता है... आर्यपुत्र! ये प्रतापी पांडव केवल आपकी प्रतिज्ञा से बंधे हैं, अन्यथा यह अनाचार सहकर चुप नहीं रहते। किंतु आर्यपुत्र, क्या आपको अपने इन भाइयों की तथा अपनी इस प्रियतमा पत्नी की तड़पन को देखकर भी उन अनाचारियों पर क्रोध नहीं आता? द्रुपद के प्रतिष्ठित कुल में जन्मी मैं महापराक्रमी कुरुराज पांडु की पुत्रवधू हूं और महापराक्रमी धृष्टद्युम्न की भगिनी के साथ ही पांच-पांच वीरशिरोमणि पांडवों की पतिव्रता पत्नी हूं, फिर भी मुझ को वन में हर प्रकार का दुःख झेलती, इस प्रकार हीन अवस्था में जीवन बिताती देखकर भी आप जैसे क्षत्रिय को क्रोध नहीं आता, तो मुझे यह सब क्षत्रियत्व से विपरीत प्रतीत होता है! महाराज, जो पुरुष समय आने पर भी अपना प्रभाव नहीं दिखा पाता, सभी प्राणी उसकी अवहेलना करने लगते हैं। शत्रुओं का वध तेज से ही किया जा सकता है। अपने साथ हर तरह से छल करने वाले तथा अपनी प्रिया पांचाली का घोर अपमान करने वाले—इन दारुण दुःखों के मूल कारण उन कौरवों पर आपका क्षमाभाव क्यों अटल बना रहता है? ऐसे घोर दुरात्मा शत्रुओं के प्रति ऐसा क्षमाभाव अपनाकर आपको अपनी कीर्ति का नाश नहीं करना चाहिए। राजन्, शत्रुओं का वध करके बाहुबल से ही आपको अपनी राजलक्ष्मी को पुनः प्राप्त करना चाहिए।''

किंतु अपने व्रत पर अडिग युधिष्ठिर ने पांचाली को प्राचीन ऋषियों द्वारा घोषित अनेक सूक्तियों तथा आख्यानों का उदाहरण देकर समझाया कि लोक में क्षमावान को ही समर्थ एवं पुरुषार्थ के योग्य माना गया है। ''क्षमा का वास्तविक महत्त्व समझकर तुम शांत हो जाओ, भामिनि, क्रोध उचित नहीं है। हमारे पितामह, आचार्य तथा कुरुकुल के सभी गुरुजन भी क्षमा तथा शांति का

ही आदर करेंगे। उनके कहने पर निश्चय ही राजा धृतराष्ट्र को एक दिन हमारा राज्य हमको वापस देना ही होगा। अत: धैर्य ही उत्तम मार्ग है। इस समय पराक्रम का अर्थ समस्त भरतकुल का विनाश ही होगा, देवी। ऐसे ही देख लो, उन दुरात्मा दुर्योधन आदि कौरवों में तो क्षमा धारण करने की न तो क्षमता है, न उदात्त भावना ही। ऐसे में मेरे लिए क्षमा ही उत्तम है। मैं कभी इस धर्माचरण को नहीं छोड़ सकता, पांचाली। तुम विश्वास मानो, यदि धृतराष्ट्र ने कुल के हितैषियों और सुहृदों की बात नहीं मानी और उसका अनादर किया तो निश्चय ही इस लोभ के कारण वे स्वयं अपने विनाश के कारण बनेंगे—कुल तथा परिजनों सहित उनका विनाश हो जाएगा।''

द्रौपदी पति की बात से और भी क्षुब्ध होकर बोली, ''महाराज, आज मैं फिर से उन धाता और विधाता को नमस्कार करती हूं, जिन्होंने आप जैसे महामनस्वी नरेश की बुद्धि को निश्चय ही और पीड़ा देने के लिए मोहग्रस्त कर दिया है। आज आप अपने विशाल संपन्न राज्य से निर्वासित होकर, लुटेरों से भरे इस महावन में ऐसी-ऐसी पीड़ा झेल रहे हैं, जो न तो आपके बलवान अनुजों के सहने योग्य है, न मैं ही ऐसे संकटों को झेलने योग्य हूं, न हमें ऐसी पीड़ा झेलने के लिए कोई विवश कर सकता है। मुझको तो अब यही लगता है कि इन सबका कारण आपका यह असमय का धर्माचरण ही है। इतने संकटों में भी आपका मन अब तक धर्मकार्य से शिथिल नहीं हुआ है। महाराज, मुझे तो ऐसा लगता है कि उन कुटिल कपटी कौरवों से जुए में पराजित होने के कारण ही आपकी बुद्धि विपरीत हो गई है! तभी तो आप अपने आयुधों, रथों, वाहन तथा दास-दासियों और अपने पराक्रमी भाइयों सहित सारा राज्य और स्वयं अपनी पत्नी—मुझ पांचाली को भी दावं पर लगाकर हार गए। आपका यह धर्म सर्वथा कर्म के विपरीत जाता लगता है। कहते हैं कि धर्म करने वाले की रक्षा धर्म ही करता है, किंतु महाराज, आपके साथ तो मुझे ऐसा लगता है कि धर्म भी विपरीत व्यवहार कर रहा है। धर्म आपको तो एक के बाद एक दारुण पीड़ा देता रहता है, जबकि उन दुरात्मा कौरवों को वह समृद्ध राज्य देकर उनको हर प्रकार के सुख और विलास के साधन से सुखी कर रहा है! मैं आपको यह विपदा और दुर्योधन को निरंकुश समृद्धि का उपभोग करते देखकर अब विधाता की निंदा ही तो कर सकती हूं। श्रेष्ठ शीलवान धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर तो जीविका के लिए विकट पीड़ा झेल रहे हैं और वे अनार्य दुरात्मा कौरव निरंकुश होकर हर प्रकार का सुख भोगते हैं, यह देखकर मेरी उक्त धारणा ही तो पुष्ट होती है, राजन्! मैं यह विपरीत स्थिति देखकर कुंठित होती हूं और चिंता से व्याकुल होकर हर पल व्यथित रहती हूं।''

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने फिर भी अनेक उपदेश तथा शास्त्रीय वचनों का उद्धरण देकर द्रौपदी को धर्म पर विश्वास करके परमात्मा की निंदा न करने का उपदेश दिया और अपने आचरण की महत्ता को ही समझाकर संतुष्ट करना चाहा।

किंतु पांचाली को इससे कोई आश्वासन नहीं मिला। वह फिर तर्क-वितर्क द्वारा कर्म को ही प्रमुख स्थापित करती हुई बोली, ''कुंतीनंदन, आप ऐसा समझ लीजिए कि मैं शोक से आर्त होकर प्रलाप कर रही हूं और इतने से ही चुप नहीं हो जाऊंगी...जब तक मेरा चित्त शांत नहीं हो जाएगा, तब तक विलाप करती ही रहूंगी। मैं धर्म की तो निंदा कर नहीं सकती और परमात्मा का भी उपहास कैसे कर सकती हूं, किंतु मैंने इस विषय में अपने पिता के यहां कांपिल्य में रहते समय ही अपने भ्राताओं को पिता महाराज द्रुपद द्वारा बताए जाने वाले आचार्य बृहस्पति के राजधर्म का भी अध्ययन किया है। और माता के समान पूज्या अंबा कुंती से मैंने सुना है कि महाराज धृतराष्ट्र अपने महानीतिज्ञ अमात्य कणिक से शत्रु को वशीभूत करने के लिए उपाय पूछते रहते थे और कणिक ने उनको शुक्रनीति का उपदेश करके समझाया था कि किस प्रकार शत्रु को वश में रखा जा सकता है; किस प्रकार छिद्र पाते ही शत्रु का विनाश किया जाना उचित है! इस उपदेश को भली-भांति सुनकर ही राजा धृतराष्ट्र ने आप सबको कुटुंब सहित वारणावत जाने की आज्ञा दी थी, जहां दुर्योधन ने अपने कुटिल राजपुरुष पुरोचन को लाक्षागृह में रखकर अवसर पाते ही आप सबको आग लगाकर समाप्त कर देने का आदेश दिया था। महात्मा विदुर राज्य के महामंत्री ऐसे ही तो नहीं हैं, वह राजा के हित की चिंता करते हैं तो उन पर भी दृष्टि रखकर उनका हित ही करते हैं। यह षड्यंत्र रचा गया, तभी इसका भेद उन्हें मालूम हो गया था और तभी वे विभिन्न उपाय करके बिना राजा अथवा आपके शत्रुओं की दृष्टि में आए ही आप लोगों की रक्षा का उपाय करने में सफल हुए थे। यह सूचना अंबा कुंती को आप पर पिता के समान स्नेह रखने वाले महामंत्री विदुर से ही मिली थी। आपको अधिक बताने की आवश्यकता नहीं, अब तो उन दुरात्मा कौरवों के हर षड्यंत्र के विषय में आप स्वयं ही सब कुछ जानते हैं।''

द्रौपदी ने पति की ओर दृष्टि डाली। वे चुप बैठे एकटक पांचाली की ही ओर देख रहे थे। द्रौपदी ने मन ही मन हँसते हुए कहा, ''जो मात्र हठ के कारण यह मानता है कि जो मिलना होगा, वह तो अपने-आप ही मिल जाएगा, वह मूढ़ तथा जड़बुद्धि माना जाता है, राजन्! प्रारब्ध पर ही विश्वास रखकर जो व्यक्ति कर्म से मुख मोड़ लेता है, वह मात्र भाग्य का भरोसा करके कोई

उद्योग नहीं करता। अतः समर्थ होते हुए भी कर्महीन होकर अनाथ तथा हीन व्यक्तियों की भांति सदा संकटग्रस्त रहता है और अपनी आयु का एक-एक पल क्षय करता रहता है। मनुष्य स्वयं कर्म करके जो फल प्राप्त करता है, उसी को पुरुषार्थ से अर्जित फल माना जाता है। सावधान होकर देशकाल के अनुरूप पुरुषार्थ करने को और समय पर पराक्रम करने को ही श्रेष्ठ कर्म कहा गया है। जो भाग्यवादी मनुष्य आलस्यवश सोया रहता है, उसे दरिद्रता ही सहनी पड़ती है और जो कार्यकुशल पुरुष समय के अनुरूप कर्म करता है, समय का उपयोग करता है और उचित समय पर पराक्रम का आश्रय लेता है, वही ऐश्वर्य भोगने का अधिकारी होता है। हम राज्य का अपहरण होने से भारी विपदा में पड़ गए हैं। इस समय तो तत्परता से पुरुषार्थ करने से ही इस विपदा से मुक्ति मिल सकती है। और इस प्रयास से कार्य सिद्ध होने पर आपकी तथा आपके अर्जुन, भीम, तथा नकुल-सहदेव जैसे सभी अनुजों की कीर्ति तथा यश का विस्तार भी होगा।''

पांचाली की अर्थमय वाणी से प्रोत्साहित भीमसेन भी अग्रज युधिष्ठिर के पास आ गए। उनका चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था और वे लंबी-लंबी सांसें ले रहे थे। फिर भी अपने को वश में रखते हुए उन्होंने कहा, ''अग्रज, सुभाषिणी तथा मनस्विनी पांचाली का कथन उचित ही है। आप समय के अनुरूप श्रेष्ठ पुरुषों के लिए राज्य-प्राप्ति का जो उचित मार्ग है, उसको ही अपनाइए। धर्म-अर्थ और काम से वंचित होकर इस तपोवन में पड़े रहकर हम कौन-सा महान् कार्य सिद्ध कर रहे हैं? राजन्, आप तो सर्वज्ञ हैं। मनुष्य में चाहे सारे ही गुण हों और वह आत्मा से महान धर्मपूजक हो तो भी यदि वह दीनहीन तथा धनहीन दरिद्र है तो दान, यज्ञ तथा अतिथि-सत्कार एवं संतों के अभीष्ट-साधन आदि धर्मों का पालन नहीं कर सकता। कहा जाता है कि इस जगत का मूल धर्म ही है। और धर्म से बढ़कर और कुछ भी नहीं है, किंतु महाराज! उस धर्म का अनुष्ठान भी धन अर्थात् अर्थ से ही हो सकता है!''

एक पल को युधिष्ठिर की ओर देखकर भीम ने मानो प्रेरणा पाने के लिए शोक से आंसू बहाती, नतमुख बैठी द्रौपदी की ओर देखा। सहसा आवेश और भी तीव्र हो उठा। उन्होंने कहा, ''महाराज, आज पुरों तथा जनपदों के निवासी आपकी ही सराहना के गीत गाया करते हैं। स्त्रियां तथा बालक तक यह कहते हैं कि श्वान के सामने चर्म से बने पात्र में दूध, चोर में सत्य तथा नारी में बल की स्थापना जिस प्रकार अनुचित होती है, उसी प्रकार पापिष्ठ दुर्योधन के वश में राज्य होने की बात किसी भी प्रकार संगत नहीं है। शत्रुओं का दमन करने वाले महाराज, आज मुझे अत्यंत दुःख के साथ कहना पड़ता

है कि हमारे साथ ही आप भी यह घोर दुरवस्था भुगत रहे हैं, किंतु यह भी सत्य है कि यह सब आपके कारण ही हुआ है, जिससे हम सभी नष्टप्राय हो रहे हैं। सम्राज्ञी का गौरव तथा गरिमा पाने वाली नारियों में अन्यतम रत्न हमारी पांचाली भी अपने कुल तथा पति के महान् वंश का गौरव खोकर इस महावन की दुर्गम राहों पर भटक रही है और हमारे साथ घोर पीड़ा भुगत रही है। महाबली कुंतीकुमार, महाराज युधिष्ठिर! आप अपने गौरव को याद तो कीजिए। पहले की भांति ब्राह्मणों, ब्रह्मचारियों की जीविका के लिए अनंत दान करने के लिए आपको तो हर पल धन ही धन चाहिए। तो आप पुरुषार्थ-हीन रहकर ऐसे दीन किसलिए हो रहे हैं? इस लोक में कौन ऐसा योद्धा होगा जो गांडीव धनुष से छूटे गृध्रपंखों वाले बाणों को सहन करके जीवित रह जाए। किसमें इतनी शक्ति है कि मुझ भीम की गदा के आघात को झेलकर एक पल को भी मेरे समक्ष युद्धभूमि में जीवित खड़ा रहे! अनुज नकुल तथा सहदेव जैसे पराक्रमी पुरुषों में तो सदा ही उन पापात्मा कौरवों को दंड देने की व्यग्रता बनी ही रहती है। हम ऐसे भी निरे अनाथ तो नहीं हैं। हमारे साथ पांचाल के समस्त सोमक तथा सृंजय क्षत्रियों का बल है। हमारे साथ अंधक-भोज-वृष्णि कुल के यादवों का महाबल भी है। जनार्दन कृष्ण तो आपको अर्जुन की भांति ही अपना परम पूजनीय अग्रज मानते हैं और आपकी आज्ञा के अधीन रहते हैं। आप कैकय वंशी वीरों तथा यादवों, सृंजयों और हम सबको एक साथ लेकर अपनी विशाल सेना से शत्रु को परास्त करके उससे अपनी राजलक्ष्मी का उद्धार क्यों नहीं कर लेते! किस कारण इस दरिद्र वेश में रहकर यह घोर पीड़ा सहन कर रहे हैं?''

युधिष्ठिर का धैर्य तथा सहनशक्ति विलक्षण थी! वह महामनस्वी थे और ऐसे-ऐसे आरोपों का निराकरण करने की अपूर्व तर्कनाशक्ति भी उनके पास थी। वास्तव में अपने शांत स्वभाव तथा धर्म के प्रति अगाध निष्ठा होने के कारण युधिष्ठिर के विषय में प्रायः यह भ्रम होता है कि वे कायर और भीरु स्वभाव के रहे होंगे, किंतु ऐसा नहीं है। वह अपने कुल में ज्येष्ठ थे और उसके अनुरूप ही उन्हें अपने आश्रितों के लिए चिंता बनी रहती थी। वह देशकाल तथा बलाबल परखकर ही कोई कार्य करते थे और इसके लिए किसी भी उतावली में अपने करणीय को नहीं भूलते थे। भीम की कठोर बातों को सुनकर वह धैर्य के साथ बोले, ''भरतकुल के श्रेष्ठ योद्धा, तुमने जो कहा है, उसमें मेरे मन को छेदने वाले बाण सदृश तीखापन है, किंतु इसे मैं तुम्हारा अपराध नहीं मानता। तुम जो कहते हो वह सच ही है। मेरे कारण ही मेरे सभी अनुजों तथा पांचाली जैसी यशस्विनी को यह क्लेश भुगतना पड़ रहा है। किंतु आज मैं तुमको स्पष्ट बताता हूं कि उस दिन मैं स्वयं भी तो दुरात्मा दुर्योधन का राष्ट्र

तथा राजपद का हरण करने की इच्छा से ही जुआ खेलने को तत्पर हो गया था! दुर्भाग्यवश पर्वतीय गांधार का वह धूर्त शकुनि उसकी ओर से पासा फेंकने लगा और मैं उस कपटी की मायावी चालों के सामने परास्त हो गया।''

उसांस भरकर युधिष्ठिर कहने लगे, ''उस समय ही यदि किसी प्रकार मैं अपने चित्त पर नियंत्रण कर पाता और पासों को निरंतर उस मायावी धूर्त के पक्ष में जाते देखकर जुआ खेलने से निवृत्त हो जाता तो यह अनर्थ न होता। किंतु तुम तो जानते हो कि व्यसन में आसक्त मन को पुरुषार्थ, अभिमान अथवा पराक्रम करके भी बरबस विचलित करना संभव नहीं होता। ऊपर से हारते जाने के कारण जो उत्तेजना होती है, उसने मेरा अर्थ-अनर्थ का विवेक भी छीन लिया था और उस समय जो कुछ हुआ, उसको भवितव्य ही मानकर मैं तुम्हारे द्वारा की जाने वाली निंदा का भी बुरा नहीं मानता। लेकिन जब नीच दुर्योधन ने छलपूर्वक हमारा सब कुछ अपहरण करके हमको दास तक बना लिया, तब सुशोभना पांचाली ही अपनी बुद्धि के बल से हमारा उद्धार करने में सफल हुई थी। उसने हमको अपने आयुधों के साथ स्वतंत्र करा लिया। किंतु तुमको और अर्जुन—दोनों को ही सारी घटना का ज्ञान है कि किस प्रकार उन दुष्टों ने षड्यंत्र रचकर हमको फिर आमंत्रित करके जुआ खेलने को कहा। उस समय उनकी ओर से मात्र एक ही दावं लगाया गया था कि जो हारेगा वह बारह वर्ष का वनवास करेगा और फिर तेरहवां वर्ष गुप्तचरों से भी छिपकर अज्ञातवास करेगा। उस समय दुर्योधन ने भरी सभा में स्पष्ट कहा था कि यदि आप फिर हार जाते हैं और यह प्रतिज्ञा निभाने का भार आप पर आता है तो विश्वास रखिए कि जब आप वनवास के बाद तेरहवें वर्ष में हमारे गुप्तचरों को भी भ्रम से मोहित करके अज्ञातवास पूरा कर लेंगे तो वापस आने पर आप पूरे पंचनंद क्षेत्र के पूर्ववत् एकछत्र सम्राट् होंगे।

''अपने उस निंदनीय व्यसन में आसक्त होकर मैंने निश्चय ही सब कुछ गंवा दिया और पांचाली सहित हमको यह दारुण वनवास भुगतना पड़ रहा है। किंतु भीम, उसी समय जब तुम क्रोधावेश में मेरी भुजाओं को जला देने को कहते थे अथवा जब अर्जुन द्वारा रोके जाने पर भी तुम होंठ चबाते हुए कौरवों का विनाश करने पर उतारू हो गए थे, यदि सचमुच तुमने उन पर आघात कर दिया होता तो कितना बड़ा अनर्थ हो जाता! किंतु मैं पूछता हूं कि जब मैं वह प्रतिज्ञा कर रहा था तभी तुमने मुझे क्यों नहीं रोका? उस समय तो तुम सबने भी प्रतिज्ञा के अनुसार वनवास स्वीकार कर लिया और चुपचाप वन में चले भी आए, तो फिर अब तुम मुझे इन कठोर बातों से किस कारण दग्ध कर रहे हो!''

पल-भर तक अपने को संयत करके युधिष्ठिर ने फिर कहा, ''अनुज! जिस समय द्रौपदी को दुष्ट दु:शासन द्वारा घोर क्लेश दिया जा रहा था और जब दुर्योधन तथा कर्ण की ओर से मनस्विनी पांचाली को मर्मभेदी वाणी से पीड़ित किया जाने लगा, उस समय हम सभी किंकर्तव्यविमूढ़-से चुप बैठे सहन करते रहे। क्यों? विष घोलकर पीने के बाद असह्य पीड़ा से जैसे कोई तड़पता है, मैं आज भी वैसी ही पीड़ा से छटपटाता रहता हूं। किंतु, पार्थ, सभा में स्वीकार की गई उस प्रतिज्ञा के कारण अभी उन पर आक्रमण नहीं किया जा सकता। धर्म के अनुसार तो अब हम इस प्रतिज्ञा को पूरा करने के बाद ही राज्य के अधिकारी होंगे।''

और मात्र एक पल को रुककर युधिष्ठिर ने अत्यंत दृढ़ स्वर में कहा, ''रही मेरी बात तो सुन लो कि मेरे लिए धर्म जीवन तथा अमरत्व से भी बढ़कर है। राज्य, पुत्र-कलत्र—ये सब मेरे लिए धर्म की सोलहवीं कला से भी तुच्छ हैं!''

राजा युधिष्ठिर ने भीम को तब भी अपने हठ पर अडिग देखा तो उन्होंने अपने मन की वास्तविक चिंता प्रकट कर दी। बोले, ''पराक्रमी अनुज, तुमने जो कहा, वह यथार्थ है। मैं किसी प्रकार तुम्हें निरुत्साहित नहीं करना चाहता। वैसे भी मेरा राज्य और मेरा स्नेह तो तुम चारों अनुजों पर ही आश्रित है। मैं तुमको भ्रम में डालने के लिए नहीं कहता, किंतु यह तो प्रकृति द्वारा स्थापित सत्य है कि भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव ही मेरे स्नेह अथवा पराक्रम के प्रथम स्तंभ हैं। ऐसे में मैं बिना पूरी तरह विचार किए ऐसा कोई दुस्साहस-भरा काम नहीं करना चाहता कि तुमको इतना क्लेश देने के बाद अब फिर किसी भयानक ज्वाला में झोंक दूं। तुम विचार करके देखो, तुमने स्वयं ही कहा है कि राजसूय के लिए दिग्विजय के समय हमने जिन राजाओं को राज्य से च्युत कर दिया था तथा जिनको बलपूर्वक अधीन कर लिया था, उनमें से अनेक आकर कौरवों से मिल गए होंगे और हमारे विरुद्ध हर अभियान में उसका समर्थन करते होंगे। परंतप, तुमने निश्चय ही विचार करके यथार्थ को ही निरूपित किया है।

''इसी प्रकार, दुर्योधन हमारे राज्य को एक बार पा गया है तो वह किसी भी प्रकार उसे वापस देने को सहज ही नहीं तैयार होगा। उसने तो अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिए हमारे राज्य को पूरी तरह अधीन करने के उद्देश्य से ही अब वहां के हर महत्त्वपूर्ण स्थान पर अपने अनुगत कौरवों को नियुक्त कर दिया है, जो वहां से हर प्रकार से हमारी कीर्ति को नष्ट करके प्रजा पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयास करते रहते हैं। ऐसे ही लोग प्रांतों के

शासक तथा दुर्गों के रक्षक बना दिए गए हैं कि कहीं हम किसी प्रकार उनकी प्रजा को अपनी ओर मिलाकर फिर से उनको अपना न बना सकें। धृतराष्ट्र के आश्रय में आकर हमारे विरोधी राजा भी निश्चय ही हमसे प्रतिशोध के लिए अथवा अपने नए स्वामियों—कौरवों—की प्रसन्नता के लिए हमको खोजने में तथा जैसे भी संभव हो हमारा क्लेश बढ़ाने के उपाय करने में लगे होंगे। कुटिल दुर्योधन का साथी महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्ण भी अपने मित्र के उपकार के बोझ से दबा रहता है, अतः उसके अन्याय को भी अनदेखी करके, उसको राज्य पर अधिकार तथा प्रभुत्व बनाए रखने की मंत्रणा देता रहता है। उस पर पूरी तरह निर्भर दुर्योधन उसकी कभी अवहेलना नहीं करता...''

लेकिन भीम पर उनकी बातों का कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई पड़ा, फिर भी युधिष्ठिर अपना सुविचारित तर्क देने को प्रतिबद्ध होकर बोले, ''तुमने बल के दंभ से उन्मत्त होकर अथवा संताप से पीड़ित होकर जो तत्काल युद्ध आरंभ करने का परामर्श दिया है, उसके विषय में भी सुन लो। हमारे पितामह प्रतीपनंदन वाह्लीक, उनके पुत्र आर्य सोमदत्त तथा सोमदत्त के महापराक्रमी पुत्र भूरिश्रवा और शल, पराक्रमी जलसंध, पितामह भीष्म, महान् धनुर्धर तथा धनुर्वेद के आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, द्रोणपुत्र महाबली अश्वत्थामा, सूतपुत्र राधानंदन कर्ण और इनके बाद सिंधुनरेश जयद्रथ जो कि दुर्योधन की भगिनी दुःशला का पति है, इनके अतिरिक्त स्वयं दुर्योधन, तथा उसके महारथी अनुज विकर्ण, विविंशति, चित्रसेन, दुःसह आदि स्वयं पराक्रमी धनुर्धर तो हैं ही, महारथी योद्धा भी हैं। ये सभी दुर्धर्ष वीर तो दुर्योधन के पक्ष में हैं ही, हमारे द्वारा संतप्त अथवा दंडित किए गए अनेक राजा भी उसके पक्ष में मिल गए हैं। वे सभी हमारे प्रति तो सद्भाव रख नहीं सकते, और हमें ज्ञात होता रहता है कि दुर्योधन उनके मंत्रियों, पुत्रों तथा सभी सेनापतियों एवं सैनिकों को पूरी तरह वेतन आदि देकर संतुष्ट करता रहता है।

''दूसरी ओर, पितामह भीष्म आदि कुलपुरुषों का भी हमारे तथा कौरवों के प्रति समान स्नेह है, तथापि वे लोग अब दुर्योधन के राज्य में रहकर उसका दिया हुआ अन्न ही खाते हैं, अतः युद्धकाल आने पर वे लोग धर्म के नाम पर उसी की ओर से युद्ध करेंगे। मुझे तो पूरा विश्वास है कि वे महानुभाव अपना-अपना धर्म जानते हैं, और समय आने पर उसका ऋण प्राण देकर भी चुकाएंगे—यह मेरा निश्चित मत है। ये सबके सब दिव्यास्त्रों के भी ज्ञाता हैं। तुमने तो सुना ही होगा कि पितामह भीष्म ने अपने गुरु महात्मा परशुराम को भी अपने युद्ध से तृप्त कर दिया था और कई दिनों तक निरंतर उनके साथ अडिग रहकर संग्राम किया था। इन सबके साथ ही...''

तब भी भीम को शांति नहीं मिली। उनको मात्र पराक्रम पर विश्वास था। वह अग्रज का अनादर नहीं करना चाहते थे, किंतु असमर्थता को नहीं स्वीकार कर सकते थे। आसन्नकोपी होने के कारण भीम चुप नहीं हुए। आवेश में आकर बोले, ''परंतप महाराज, आप तो इस प्रकार की बात कर रहे हैं जैसे वेदों के अक्षर मात्र को रटने वाला, अर्थ एवं काम के ज्ञान से रहित, मंदबुद्धि श्रोत्रिय करता है। केवल गुरु की वाणी रटने से तो वास्तविक ज्ञान नहीं आ जाता। आप तो अपने शील-स्वभाव तथा कोमलता के साथ अति दयाभाव अपनाकर इतना क्लेश सह रहे हैं, किंतु इसके लिए कोई आपकी सराहना नहीं करता। आपने मनु द्वारा उद्घोषित राजधर्म का तो अध्ययन किया ही है, फिर आप क्षत्रिय होकर भी किसी वृद्ध ब्राह्मण की भांति भीरुता का परिचय क्यों दे रहे हैं?

''राजन्, आप तो मर्मज्ञ हैं। आपको बताना तो नहीं होगा कि मनुष्य की आयु हर पल तिल-तिल करके क्षीण हो रही है। सूई जैसी सलाई से निरंतर लगाते रहने पर अंजन भी एक दिन समाप्त हो जाता है। ऐसी विकट प्रतिज्ञा तो वही कर सकता है जो अपनी आयु के निश्चित वर्षों की संख्या जानता हो। तेरह वर्ष की यह लंबी अवधि तो हमारी आयु के साथ ही हमारे बल-विक्रम को भी क्षीण कर देगी और हम इसी प्रकार क्लेश में दहते हुए मृत्यु के निकट पहुंच जाएंगे। इससे बढ़कर पीड़ादायी और क्या होगा कि दुरात्मा शत्रु बिना बाहुबल के ही हमारी राज्य-संपदा आदि का अपहरण करके उसका स्वच्छंद उपभोग कर रहे हैं और हम दीन भिक्षुकों की भांति यहां वन में छिपकर जीवन काट रहे हैं। यह सब देखकर मुझे बार-बार अमर्ष के कारण घोर संताप सहना पड़ता है। मुझे न तो दिन में ही नींद आती है, न रात में ही...''

युधिष्ठिर कुछ कहने को ही थे कि भीम अपनी बात पूरी करने की ठानकर फिर बोल पड़े, ''ऊपर से उस नीच ने अज्ञातवास का जो बंधन आरोपित कर दिया है, वह तो उसकी धूर्तता का चरमरूप है! आपके अनुज महाकाय अर्जुन कहां छिपकर अपने को बचा लेंगे? आप तो मानो एक मुट्ठी तिनके लेकर हिमालय पर्वत को ढक देने को उद्यत हैं। विशाल शालवृक्ष जैसे सव्यसाची अर्जुन और मुझ जैसे भीमकाय पुरुष को तो बालक तक पहचानते हैं। आप हमको किस प्रकार छिपाकर रखेंगे, अग्रज? और हमारी यह परम सुंदरी पांचाली तो सारे लोक में विख्यात है। उससे अज्ञातवास के नियम कैसे पालन किए जाएंगे, महाराज! उस चंद्रवदनी को आप किस कुहासे में तेरहवें पूरे वर्ष-भर छिपाकर रखने की सोच रहे हैं? राजन्! इसका परिणाम तो अंततः यही होगा कि तेरहवें वर्ष वह दुरात्मा हमको अपने कुटिल गूढ़पुरुषों द्वारा

खोजकर पुनः बारह वर्ष तक वनवास करने के लिए बाध्य कर देगा! और आपके द्वारा निर्धारित प्रतिज्ञा पूरी करते-करते हम वन में ही मर जाएंगे। और मैं तथा आपकी यह परमप्रिया, राजपुत्र प्रतिविंध्य की अंबा द्रौपदी तो निश्चय ही अमर्ष के इस संताप से ही जल मरेंगे, क्योंकि यह संताप घोर ज्वाला है और सर्वथा असहनीय है। अर्जुन भी अपनी गुफा में चुपचाप बैठे हुए निश्चय ही इसी संताप से घुल रहे हैं। राजन्, कहा गया है कि अपने को धोखा देने वाले शत्रु का वध करके यदि तत्काल ही नरक में जाना पड़े तो भी उसका वध करना ही चाहिए। मेरा कहना मानिए, धर्मराज! वन में बिताए गए आप इन तेरह मासों को ही आपद्धर्म के अनुसार, तेरह वर्षों का प्रतीक मानकर तत्काल शत्रु पर आक्रमण करने का उद्योग करें। इसी में कल्याण है। पुरुषसिंह, आप तो राजा पृथु के समान कीर्तिवान हैं। आपकी विशाल भुजाएं स्वर्ण की अधिकारिणी हैं। आप युद्ध में शत्रुओं का संहार करके अपने बाहुबल से उपार्जित लक्ष्मी का उपभोग कीजिए। बुद्धि, पराक्रम एवं विलक्षण शस्त्रज्ञान से मंडित होकर तथा उत्तम भरतकुल में जन्म लेकर भी आप जहां पराक्रम करना है, वहां अजगर की भांति चुप्पी साधकर किस कारण बैठे हैं! मनीषी पुरुषों का कहना है कि मास संवत्सर का प्रतिनिधि होता है। जिस प्रकार यज्ञ के समय दुर्लभ सोमलता नहीं मिलती तो पूतिका लता से ही यज्ञ की पूर्ति मानी जाती है, उसी प्रकार आप तेरह मासों से ही धर्मपूर्वक तेरह वर्ष वनवास की प्रतिज्ञा को पूर्ण मानिए और आज ही दुष्ट कौरवों के विनाश के लिए अभियान करने का आदेश दीजिए।''

एक बार भीम को देखकर मानो उनको चेतावनी-सी देते हुए अपनी पिछली वार्ता को पूरी करने के लिए युधिष्ठिर ने कहा, ''...हां, मैं राधानंदन कर्ण की बात कह रहा था। उसको सूतपुत्र कहकर चाहे उसकी कितनी ही अवहेलना की जा सकती है, किंतु इससे उसका पराक्रम तो कम नहीं हो जाता, भीमसेन। तुम महान् पराक्रमी हो, किंतु जब तक दुर्योधन इन अपराजेय योद्धाओं से सुरक्षित होगा, तब तक तो तुम उसको छू भी नहीं सकते। और राजधर्म के अनुसार, ये सारे ही योद्धा अपने राजा दुर्योधन की रक्षा करेंगे ही। उस समय किसी के प्रति स्नेह का संबंध तो उन महान धर्मनिष्ठ योद्धाओं की राह नहीं रोक सकता। वृकोदर, मुझे जब भी कर्ण द्वारा शर-संधान और उन्मोचन करते समय की विलक्षण फुर्ती याद आ जाती है तो अर्जुन के लिए घोर चिंता जाग उठती है...और मुझे एक पल को भी नींद नहीं आती। उसने तो मात्र दुर्योधन को अर्जुन की ओर से निश्चिंत करके ही महान यश और अंगदेश का राज्य प्राप्त किया है। और द्रौपदी के स्वयंवर के बाद से तो वह अर्जुन के प्रति घोर

आक्रोश से दहकता रहता है। यह सब मेरे लिए अत्यंत चिंतनीय स्थितियां हैं। अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने का धर्म तो है ही। मुझे तो अब यही लगता है कि यह वनवास अथवा इसका क्लेश हमारे लिए दंड अथवा अभिशाप ही नहीं है, यह एक प्रकार से वरदान भी है। हमको तो विधाता ने इस बहाने शक्ति-संचय के लिए इतना अवकाश दे दिया है। किंतु अब तक मैं यही नहीं सोच पाया कि इस समय का सदुपयोग किस प्रकार किया जाए। मात्र वनवास काट लेने से ही तो हमारा बल-विक्रम बढ़ नहीं जाएगा। और कल निश्चय ही अपना अधिकार पाने के लिए युद्ध करना होगा। दुर्योधन की जो प्रवृत्ति है, उससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि वह दुरात्मा शांतिपूर्वक तो हमको हमारा अधिकार देगा नहीं।''

अग्रज के तर्कसंगत वचन सुनने के बाद भीम किंचित निराश तथा उदास और सशंक-से हो उठे। वह विचारों में ऊभडूभ हो रहे थे कि अकस्मात् सत्यवतीनंदन महर्षि व्यास वहां आ पहुंचे।

पितामह को देखते ही दोनों पांडवों तथा द्रौपदी ने उठकर उनका स्वागत किया। युधिष्ठिर तथा पांचाली ने विधिवत् अर्ध्यपाद आदि देकर उनकी अर्चना की। स्वस्थ चित्त होकर बैठने के बाद महर्षि व्यास ने कहा, ''महाबाहु, तुम तो धर्म और क्षत्रियोचित कर्म—दोनों में ही निपुण हो, फिर तुमको इस प्रकार अधीरता किस कारण व्याप लेती है? मुझे तुम्हारी इन चिंताओं का पता लग गया है। इसी कारण मैं आज अचानक तुम्हारे पास आया हूं। तुम्हारे मन में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन तथा नृशंस दुःशासन आदि के बलाबल का ध्यान करने से जो भय व्याप्त हो गया है, उसका शमन मैं शास्त्रीय उपायों से कर दूंगा। उसका नियमपूर्वक अनुष्ठान करने से तुम्हारे मन में छाई यह भीरुता स्वतः नष्ट हो जाएगी। तुम अपने अनुजों के साथ जो करणीय है, उसी का मनन करो। ये सब समर्थ अनुज एक दिन फिर तुमको उसी प्रकार सम्राट् के रूप में मूर्धाभिषिक्त करके देवराज इंद्र के समान तुम्हारा सम्मान बढ़ाएंगे। तुमको इनका उत्साहवर्धन करके अपना सद्कर्म करना चाहिए!''

भीम तथा पांचाली महामुनि के आशीर्वाद मात्र से प्रसन्न हो गए। तब महर्षि अपने पौत्र युधिष्ठिर को स्नेह के साथ एकांत में ले गए और वहां उन्होंने उनको प्रतिस्मृति नामक विद्या का उपदेश किया। बोले, ''तुम नियम से इन मंत्रों का जप करते रहो और अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहो। मैंने तुम्हारे राजसूय के बाद भविष्यवाणी की थी कि यज्ञ के अवसर पर जो शिशुपाल का रक्तपात हुआ है, उससे सूचित होता है कि शीघ्र ही यहां भयंकर नरसंहार होगा और उसके लिए कारण तुम स्वयं बनोगे। वह तो मेरी भविष्यवाणी थी, जो शास्त्रोक्त

फलाफल पर आधारित थी, किंतु जो स्थितियां बन गई हैं, उनको देखकर तो अर्थनीति जानने वाला कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यदि किंचित भी दूरदर्शी होगा तो निश्चय ही घोषणा कर देगा कि अब यह अवश्यंभावी है। मैं कौरवों के मनोविकारों से भी परिचित हूं कि वह किस प्रकार लोभ तथा दंभवश काल द्वारा प्रेरित होकर महासंग्राम की भूमिका रचने में लगे हैं। राजा धृतराष्ट्र नेत्रहीन तो हैं, तब भी उनकी गणना महाबुद्धिमान तथा सुसंस्कृत राजा के रूप में की जाती थी, किंतु नियति प्रबल होती है। अब तो वह भी मोहांध होकर अपनी बुद्धि की दृष्टि से भी अंधता की ओर जा रहे हैं। पांडु के देहावसान के बाद उनको पुत्र तथा राज्य का लोभ जकड़ चुका है। जिन्हें परम प्रिय माना चाहिए, उनको राजा होने पर भी धृतराष्ट्र अब अपना शत्रु मानने लगे हैं। यह सब विनाश के ही लक्षण हैं! अस्तु, मैं स्पष्ट देख रहा हूं कि तुम्हारा धर्म निश्चय ही तुम्हारा सबसे बड़ा रक्षक है। किंतु राजन्, अब तुमको यही अवधि अपना पराक्रम करने के लिए साधन-संयोग करने की है। उत्साह तथा बल एवं साहस से भरपूर तुम्हारे ये अनुज ही महान पराक्रम करके वास्तव में शत्रुओं को पराजित करेंगे, किंतु केवल प्रारब्ध पर भरोसा करने से कार्य नहीं सधता, उसके लिए पुरुषार्थ तो करना ही होगा। अब तुम अर्जुन को भी यह भयमोचिनी प्रतिस्मृति विद्या देकर उनको अन्य लोकों तथा भरतखंड के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर अधिक से अधिक आयुधों तथा अस्त्रों को प्राप्त करने का आदेश दो। इसी से भावी समर में तुम्हारा कल्याण होगा। हां, तुम भी मन से मोह और भय त्यागकर उद्योग करो, जो इस समय तुम्हारे लिए प्रमुख कर्म है!''

युधिष्ठिर को वेदमंत्र का उपदेश करने के बाद महर्षि व्यास ने एक और परामर्श दिया। बोले, ''पृथ्वीपति, एक ही स्थल पर लंबी अवधि तक टिके रहना न तो रुचिकर ही होता है, न हितकर ही। यहां रहते समय तुम निरंतर कितने ही तपस्वी तथा वेदों के पारंगामी विद्वानों का पालन-पोषण करते रहे हो। अब इस वन को त्यागकर तुम कहीं और निवास योग्य सुचारु स्थल देखकर वहां रहो। तुम यदि चिरकाल तक यहीं निवास करोगे तो यहां तपोरत महात्माओं की साधना में विघ्न ही होगा। ऐसे भी क्षत्रियधर्म के अनुसार, तुमने यहां के हिंस्र प्राणियों का बहुत वध करके वन के इस क्षेत्र को लगभग भयमुक्त कर ही दिया है। और तुम्हारे अग्निहोत्र तथा यज्ञ आदि के कारण अब यहां कितनी ही औषधियों का तथा जड़ी-बूटियों का क्षय हो गया है। पशु-पक्षियों का सामूहिक विनाश भी उचित नहीं है। तुम कहीं और उपयुक्त स्थान खोजकर वहां निवास करो।''

इसके बाद महर्षि जिस प्रकार अकस्मात् आए थे, उसी प्रकार कुछ ही

देर में अंतर्धान-से हो गए।

दस

उन दिनों पांचाली के साथ पांडव फिर से जाकर काम्यक नामक वन में ही रहने लगे।

विशाल काम्यकवन बहुत बड़े क्षेत्र में फैला था। उसमें रहकर अनगिनत ऋषि-मुनि तथा और भी कितने ही वनचर प्राणी जीवन-यापन करते थे। पांडवों ने भी अपने वनवास का बहुत बड़ा भाग काम्यकवन में ही रहकर बिताया था। उनके साथ ही अनेक अतिथि तथा बहुत बड़ी संख्या में ब्राह्मणों का दल भी रहता था। धौम्य ऋषि वारणावत से बचकर निकलने के बाद से ही पांडवों के पुरोहित थे। वह वनवास के समय भी निरंतर पांडवों के साथ ही रहे और उनका मार्गदर्शन करते रहे। उनकी सहायता से पांडवों को वनवास के वे दिन भी अत्यंत सुखकर लगते थे। धौम्य ऋषि हर प्रकार से पांडवों का हित करने की चिंता करते रहते।

काम्यकवन में ही महर्षि तृणबिंदु नाम के एक श्रेष्ठ तपस्वी भी रहते थे। एक दिन पुरोहित धौम्य के साथ महर्षि तृणबिंदु ने आकर पांडवों से भेट की और उनका आतिथ्य स्वीकार करने के बाद संतुष्ट होकर कहा, ''आप जैसे पराक्रमी और धर्म के रक्षक राजकुल के क्षत्रियों के होते हुए भी इस वन में आजकल अनेक हिंस्त्र जंतुओं का घोर आतंक छाया रहता है। न जाने कितने तपस्वी तथा इस घोर वन की वास्तविक स्थिति से अपरिचित एकाकी यात्रा करने वाले पथिकों एवं सार्थ में चलने वाले व्यापारियों का दल भी कितनी ही बार इन हिंस्त्र पशुओं का ग्रास बन जाता है। आप चाहे वन में हों, अथवा राजसिंहासन पर, लोक की ऐसी आपदाओं से रक्षा करना क्षत्रियों का मूल कार्य है। आप तो इसी कारण शस्त्र धारण करते हैं। आपका कर्तव्य यही है कि जहां तक हो सके, कम से कम वन के ऐसे स्थानों को तो निरापद बनने की चेष्टा करें जो जलाशय अथवा अन्य सुविधाओं के कारण सहज ही शरण लेने योग्य होते हैं। वन में आने-जाने जो से मार्ग बन गए हैं और जिनका आश्रय प्रायः यात्री तथा सार्थ लेते रहते हैं, उन पर कोई सुरक्षा न होने के कारण अनेक हिंस्त्र जीव-जंतु सहज ही अबोध प्राणियों को मार डालते हैं। और तो और, ऐसे स्थानों को ही तपस्वी तथा अन्य कर्मकांडी ब्राह्मण भी साधना के लिए उपयुक्त मानकर वहां नाना प्रकार से साधना-उपासना आदि करते हैं, किंतु इन दिनों ऐसे धर्मात्मा प्राणी भी प्रायः हिंसक पशुओं के आहार बन जाते हैं। आप लोग उनकी रक्षा करके पुण्य के भागी होंगे।''

महर्षि धौम्य ने भी पांडवों को तत्काल ऐसे उत्पाती हिंसक जीवों से वन को मुक्त करने के लिए हर प्रकार से प्रयास करने को कहा।

पांडवों ने विचार-विमर्श करके उसी दिन से हिंस्र पशुओं का आखेट करके काम्यकवन को उनके आतंक से मुक्त करने का अभियान आरंभ कर दिया।

महर्षि धौम्य की आज्ञा से पांचों पांडव उस दिन भी पांचाली को आश्रम में अकेली ही छोड़कर स्वयं अलग-अलग दिशाओं में फैल गए थे। हिंसक पशुओं को मारते हुए। वे लोग बहुत देर तक वन में ही विचरते रहे।

पांचाली द्रौपदी बड़ी देर से अकेली पड़ी-पड़ी उकता रही थी। दिन ढल चला तो वह कुटीर से निकलकर द्वार पर ही लगे कदंबवृक्ष की एक डाली के सहारे कुछ झुकी-झुकी-सी खड़ी होकर वन की सुषमा निहारने लगी। वन के सुंदर कुसुमित लता-वृक्षों की सुंदरता से द्रौपदी का मन सदा ही प्रसन्न रहता था। वह जब भी अवसर मिलता, वनप्रांत की अनुपम सुंदरता में खो-सी जाती थी। उस दिन भी उस विलक्षण वेला में पांचाली वनप्रांत में व्याप्त सौंदर्य को देखकर मग्न हो रही थी। वह मंत्रमुग्ध-सी खड़ी निहार रही थी।

सहसा उसने रथों की घरघराहट सुनी और सतर होकर उस दिशा में देखने लगी। पल-भर को वह मन में सशंक हो उठी—कहीं कौरवों ने फिर अभिसंधि करके वन में विपन्न अवस्था में पड़े पांडवों का उपहास करने अथवा उनको पीड़ित करने की इच्छा से इस ओर अचानक ही धावा तो नहीं बोल दिया है!

लेकिन वह रथों पर लगे ध्वज-चिह्नों को देखकर समझ गई कि ये कौरवों के रथ नहीं हैं। तो फिर? इस वन में होकर क्या कोई विजिगीषु राजा किसी अभियान पर जा रहा है? संभवतः उसको इस विषय में ज्ञान नहीं होगा कि इसी वन में इस समय महाभाग पांडवों का निवास है, नहीं तो उनकी अवहेलना करके कम से कम सेना लेकर इस प्रकार विजयपर्व मनाता हुआ इस ओर से यात्रा तो नहीं ही करता।

कहीं ऐसा तो नहीं कि ये योद्धा भी कुटिल कौरवों के कहने पर ही उनकी ओर से पांडवों से विग्रह की इच्छा से इस ओर आए हों! द्रौपदी पल-भर को व्यग्र तो हुई, किंतु पांचाल की राजकन्या महाबली पांडवों की प्रिया थी और भीरुता से उसका दूर का भी नाता नहीं था। चिंता करना व्यर्थ समझकर वह प्रतीक्षा-सी करने लगी कि उनके रथ निकट आएं तो देखे—वे कहां के रहने वाले हैं। यद्यपि पांडवों के न रहने पर उसको पराए पुरुषों से वार्तालाप करने का अधिकार तो नहीं है, किंतु उनके लक्षण तथा ध्वज और परस्पर

उनकी बातचीत सुनकर तो पता लग ही जाएगा कि वे कौन हैं।

रथ एकदम उसके कुटीर के निकट से ही जा रहे थे। वास्तव में आश्रमवासियों के उद्यम से वन का यह भाग बहुत कुछ स्वच्छ तथा निरापद था। संभवत: इसी कारण ये रथी पांडवों की चिंता किए बिना ही इस ओर से सहज मार्ग देखकर निकल जाना चाहते हैं। पांचाली को अच्छा तो नहीं लगा किंतु उसने अनजान समझकर ही उन पर विशेष कोप नहीं किया। वह शांत खड़ी उनकी ओर ही उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखती रही।

सेना से घिरा रथों का दल कुटीर के निकट आते ही रुका और सबसे आगे के रथ पर से एक सुदर्शन योद्धा उछलकर कूद पड़ा। उसके कुंडलमंडित सुंदर मुखमंडल पर द्रौपदी की ओर देखकर एक विचित्र-सी मुसकान उतर आई थी।

द्रौपदी को उसकी दृष्टि दुस्साहस-भरी लगी। वह तनिक कठोर-सी होकर उसके इधर आने की प्रतीक्षा करने लगी। वह योद्धा रथ पर बैठे किसी अन्य रथी की आज्ञा मानकर इस ओर आ रहा था—यह पांचाली ने उनको बात करते देखकर ही भांप लिया था।

कुंडलमंडित उस सुशोभन युवा ने ससंभ्रम आश्रम में प्रवेश किया और द्रौपदी के निकट पहुंचकर बिना अभिवादन अथवा उपयुक्त शिष्टाचार के ही अचानक कहना आरंभ कर दिया, ''अति सुंदर भौहों वाली कामिनी, तुम कौन हो जो वनदेवी की भांति इस घोर दुर्गम वन में, अकेली ही कदंब की डाल को झुकाकर विश्व-मोहिनी भंगिमा में खड़ी हो! तुम तो अपनी मादक प्रभा बिखराकर इस विजन वनप्रांत की शोभा को अपनी शोभा से मंद कर रही हो। तुम अनिंद्य रूपवती हो और मैं भ्रम में पड़ा सोचता हूं कि तुम कोई यक्षिणी हो, देवबाला हो, मायाविनी दानवबाला हो अथवा कोई श्रेष्ठ अप्सरा हो!'' वह आवेश में बोलता-बोलता अनेक कल्पनाएं करने लगा।

द्रौपदी उसकी बातों से कुछ कुंठित-सी होकर उसे वर्जित करना चाहती थी, किंतु वह तो वातरोगी की भांति बिना रुके अपनी ही अपनी कहता जा रहा था, ''मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम निश्चय ही या तो नागलोक की कोई नागकन्या हो अथवा वन में उन्मुक्त विचरण करने वाली कोई कामरूपिणी राक्षस बाला हो। अथवा राजा वरुण, यमराज, चंद्रमा या धनपति कुबेर में से किसी महान देवता की पत्नी हो, जो इस वन की सुषमा को अपने रूप की आभा से देदीप्यमान कर रही हो। भद्रे, हमको तो तुम्हारे पति अथवा कुल के विषय में कुछ भी नहीं मालूम है। और तुम न तो हमारा परिचय ही पूछती हो, न अपना परिचय देती हो...हम तुम्हारा सम्मान बढ़ाते हुए तुमसे तुम्हारे पति और

पितृकुल का परिचय जानने को उत्सुक हैं। तुम अपने बंधु-बांधवों तथा अपने पति के कुल के संबंध में यथार्थ परिचय देकर हमको कृतार्थ करो।''

वह पलभर अटका, फिर संभवतः उचित-अनुचित का विचार करके वह स्वयं अपना परिचय देने लगा।

उसने बताया, ''कमलनयनी, मैं तो शिबिदेश के राजा सुरथ का पुत्र कोटिकास्य हूं। सामने ही स्वर्णमय रथ पर बैठे वह अग्नि के समान तेजस्वी महाराज महान योद्धा त्रिगर्तराज क्षेमकर हैं। इनके पास ही महान धनुष धारण करके पर्वतीय क्षेत्र में रहने वाले वह रूपवान योद्धा कुलिंदराज के युवराज हैं जो मंत्रमुग्ध-से एकटक तुमको ही निहार रहे हैं। और उधर पुष्करिणी के समीप खड़े श्याम वर्ण के सुदर्शन युवक इक्ष्वाकुवंशी राजा सुबल के पुत्र हैं। ये महापराक्रमी अकेले ही अपने सहस्त्रों शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हैं। उधर लाल रंग के उत्तम घोड़ों वाले महारथ पर विराजमान योद्धा सौवीरराज जयद्रथ को कौन नहीं जानता? तुमने भी निश्चय ही उनका नाम सुना होगा। उनके रथ के पीछे ही सौवीर देश के बारह तेजस्वी राजकुमार खड़े हैं, जो सदा ही सिंधुराज जयद्रथ के पीछे-पीछे उनका महाध्वज लेकर चलते हैं। सौवीर के ये अंगारक, कुंजर, शत्रुंजय, भयंकर, कुहन आदि राजपुत्र स्वयं महाप्रतापी हैं। इनके साथ ही छह हजार बलवान रथी, ग़जराजवाहन, अश्वारोही तथा पदाति सैनिक सदा सौवीरराज जयद्रथ का अनुगमन करते हैं—यह हमारा परिचय है! सुंदरांगी शुभे, अब तुम उस महाभाग का परिचय दो, जिसको तुम जैसी विश्वमोहिनी ने पति के रूप में वरण करके उसके भाग्य को उद्दीप्त किया है और जो ऐसा निर्दय है कि तुम जैसी अनवद्यांगी को अकेली इस वनप्रांत में छोड़कर न जाने किस कार्य में लिप्त रहता है...और तुम किसकी पुत्री हो, यह भी बताओ...''

शिबि देश के राजकुमार कोटिकास्य के बार-बार इस प्रकार पूछने पर पांडवों की महारानी पांचाली द्रौपदी कदंब की डाली छोड़कर किंचित सावधानी से खड़ी हो गई। और आंचल संवारती हुई, संकोचपूर्वक उसकी ओर देखकर बोली, ''राजपुत्र, इस समय मैं आश्रम में अकेली ही हूं और तुमको कोई उत्तर देने वाला यहां नहीं है, अतः विवश होकर मुझे वार्तालाप करना पड़ रहा है। शैव्य राजकुमार कोटिकास्य, में तुम्हारे नाम तथा कुल से परिचित हूं, इसी कारण तुमको उत्तर देना उचित मानकर अपने बंधुजनों तथा विख्यात कुल का परिचय देती हूं। मैंने इंद्रप्रस्थ के सुविख्यात महाबली पांडवों का पति के रूप में वरण किया है। मेरा नाम कृष्णा है और मेरे पिता पृथ्वी के महान योद्धा पांचाल देश के अधिपति महाराज द्रुपद हैं। इस समय मेरे पांचों महापराक्रमी

पति महर्षियों के अनुरोध से इस घोर वन में उपद्रव करने वाले हिंस्र जंतुओं का विनाश करने के लिए अलग-अलग दिशाओं में गए हैं। अब तुम लोग रथों से उतरकर घोड़ों को खोल दो और कुछ देर विश्राम करो। मेरे पति अब आते ही होंगे। धर्मराज युधिष्ठिर इस दुर्गम वन में भी इंद्रप्रस्थ की भांति ही अतिथियों का आदर-सत्कार करके हर्षित होते हैं। वे तुम लोगों को देखकर अवश्य ही प्रसन्न होंगे।''

ससंभ्रम परिचय देकर वरानना द्रौपदी अपनी उत्तम पर्णशाला में चली गई और अतिथि-सत्कार की तैयारी करने लगी।

कुछ ही देर बाद स्वयं जयद्रथ आश्रम में आ गया और द्रौपदी को कामविह्वल नेत्रों से देखता हुआ मानो उसको प्रसन्न करने के लिए बोला, ''सुमध्यमे, शिबिपुत्र से तुम्हारा परिचय पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तुम सकुशल तो हो न? तुम्हारे पति तथा और जिनको भी तुम सकुशल देखना चाहती हो, वे सब तो कुशल से हैं?''

द्रौपदी को उसकी बात बनावटी-सी लगी। फिर भी सुसंस्कृत तथा विदुषी द्रौपदी परंपरा के अनुसार जयद्रथ से कुशल-समाचार पूछने लगी। उसके राज्य, उसके साथ ही शिबि, सौवीर तथा सिंधु सहित अन्य जो भी राज्य उसके अधीन थे, उन सबके विषय में, तथा राजकोष, सेना और मंत्रियों के कुशल के बारे में पूछकर उसने कहा, ''धर्मराज युधिष्ठिर, उनके चारों बलवान भाई, तथा स्वयं मैं हर प्रकार से सुखी एवं संतुष्ट हैं और तुम जिनके विषय में भी जानना चाहते हो, वे सभी आनंद से हैं।''

फिर द्रौपदी ने शालीनता के साथ स्वयं जल का कलश लाकर जयद्रथ के सामने रखते हुए आग्रह किया, ''यह जल है। इसे ग्रहण करो और आसन पर बैठकर विश्राम करो। पांडव वीर अब आते ही होंगे।''

किंतु बल के अभिमान में, कामाग्नि से दहकते जयद्रथ ने उसका आग्रह ठुकराकर उत्साह से कहा, ''सुंदरी पांचाली, तुम किस भ्रम में पड़ी हो? तुम तो विदुषी हो! तुम अब इन पांडवों के पास किस कारण पड़ी हो? पांडव तो अब सदा के लिए श्रीहीन तथा राज्यभ्रष्ट हो गए हैं। अब तुम जैसी लक्ष्मी के समान रूप-यौवन से संपन्न सुंदरी को इन निर्धन पांडवों के पास रहने का कारण ही कहां रहा? तुम तो जानती ही हो कि सुंदर स्त्रियां निर्धन पुरुषों के पास रहकर कभी मन को उल्लसित कर देने वाला सुख नहीं पा सकतीं, इसलिए सर्वांगसुंदरी पांचाली, अब तुम इन निर्धन, बलहीन पांडवों का मोह त्याग दो और मेरी भार्या बनकर संसार के सभी ऐश्वर्य और सुखों का उपभोग करो, जिसके लिए तुम अधिकृत हो। मेरे रथ पर बैठकर तुम मेरे साथ सौवीर

चलो और वहां महारानी बनकर सिंधुसहित हमारे विशाल राज्य की महारानी बनकर आनंद करो। मैं तो तुमको यहां देखकर ही चकित था कि इस दुर्गम वनप्रांत में तुम जैसी विश्वमोहिनी अकेली क्या कर रही है! तुम मेरे साथ आते ही अपने बलहीन पतियों की ओर से सारे भयों से मुक्त हो जाओगी। अत: निश्शंक होकर मेरे भव्य महारथ पर आ जाओ। मैं तुमको लेकर इसी समय वापस सौवीर चलता हूं...''

उसकी दुष्टता-भरी बातें सुनकर द्रौपदी की सुंदर भौंहें सहसा तन उठीं और आंखों में रोष भर गया। वह तत्काल उनके निकट से दूर जा खड़ी हुई और कठिन स्वर में बोली, ''सिंधुराज, तुमको ऐसी नीचता-भरी बातें कहते लज्जा आनी चाहिए।'' पर उसने जयद्रथ के चेहरे पर आती घिनौनी भावनाओं की छाया देखी, तो सावधान हो गई। जयद्रथ को कुछ देर बातों में फंसाए रखने की सोचकर वह बोली, ''तुम ऐसी अधर्मपूर्ण बातें कहते लज्जित नहीं होते! तुम तो कौरवों और पांडवों की प्रिय बहन दु:शला के पति हो। महारथी राजकुमार, इस नाते तुम मेरे भाई लगते हो। तुमको तो न्यायत: कभी संकट आने पर मेरी रक्षा करनी चाहिए, किंतु लगता है कि इतने महान कुल में जन्म लेने पर भी तुमको धर्म का ज्ञान नहीं है, नहीं तो तुम पांडवों की महारानी और पांचालकुल की राजदुहिता मुझ द्रौपदी से ऐसे अधर्ममय वचन कैसे सह सके...''

किंतु जयद्रथ पर तो इस समय प्रचंड कामावेश के कारण दुर्बुद्धि सवार थी। वह निर्लज्ज उपहास से द्रौपदी को खिन्न करता हुआ बोला, ''सुशोभने, वास्तव में स्वयं तुमको राजधर्म का ज्ञान नहीं है। राजा के लिए तो किसी भी उत्तम स्त्री को ग्रहण कर लेना, अधिकार माना जाता है...और ऐसे भी संसार में स्त्री एवं रत्न पर सर्वसाधारण का अधिकार स्वयंसिद्ध है। वह जिसके वश में हो, वही उसका स्वामी होता है। तुम अब मेरी ही हो...''

उस दुरात्मा की बातें सुनकर द्रौपदी का सुंदर मुखमंडल क्रोध से तमतमा उठा। आंखें लाल हो गईं। वह कठोर स्वर में बोली, ''जयद्रथ, तू मेरे उन बलशाली पतियों के पराक्रम से अपरिचित होने के कारण ही इस प्रकार की बकवाद कर रहा है। अकेले ही यक्षों तथा राक्षसों की विशाल सेनाओं का दमन करने में समर्थ मेरे और तेरे लिए भी पूजनीय महापराक्रमी पांडवों के विषय में तू ऐसी अनुचित बातें कर रहा है! और मुझे तू साधारण स्त्रियों की भांति प्रलोभन में डालकर जीतना चाहता है। मेरे स्वयंवर के समय तू भी तो आया था! उस समय तूने ब्राह्मण वेशधारी सव्यसाची अर्जुन तथा मध्यम पांडव के भीमकर्म को देखा ही होगा। मैं तो सुनती हूं कि उस दिन तूने भी उनको निर्बल

समझकर उनकी जीती हुई मुझ जैसी पत्नी को छीनने की कुचेष्टा की थी और पिटकर चुपचाप भाग निकला था। तेरी अपेक्षा तो उस दिन सूतपुत्र कर्ण ने ही अपने पराक्रम के साथ-साथ अपनी विद्वत्ता तथा सौजन्य का परिचय दिया था और महातेजस्वी अर्जुन को परास्त करना असंभव मानकर वीरों की भांति स्वयं ही युद्ध से विरत हो गए थे...फिर भी तू ऐसे उद्दंडतापूर्ण वचन कहकर उन्हीं महावीरों का अपमान करने का दुस्साहस कर रहा है। अवश्य तेरे दुर्दिन आ गए हैं। मनुष्यों में जो तेरे जैसे श्वान होंगे, वही इस प्रकार भूंक सकते हैं।''

किंतु कामुक जयद्रथ फिर भी पांचाली को मोहित करने के लिए नीचता-भरी बातें करता रहा।

क्षुब्ध द्रौपदी बोली, ''तू अब भी अपनी जान बचाकर यहां से चला जा, इसी में तेरा मंगल है, नहीं तो जिस समय तेरी दुरभिलाषा की सूचना पाकर कुपित पांडव तुझ पर टूट पड़ेंगे तो तुझे भागने का अवसर भी नहीं मिलेगा!''

जयद्रथ ने एकाएक रंग बदलकर कहा, ''पांचाली, तुम इस प्रकार की बड़ी-बड़ी बातें बनाकर मुझको भयभीत नहीं कर सकतीं। अब तो दो ही मार्ग हैं—या तो तुम तुरंत मेरे साथ चलकर मेरे गजराज अथवा महारथ पर बैठ जाओ अन्यथा...यदि वे तुम्हारे श्रीहीन, दुर्बल पति आ भी गए तो उनका कल्याण नहीं होगा। फिर तो तुमको उन पतियों के परास्त हो जाने पर स्वयं दीनतापूर्वक विनती करके मुझे प्रसन्न करना होगा!''

द्रौपदी कुंठित होकर सोचने लगी कि महान बल और शक्ति से संपन्न होती हुई भी इस समय इस नीच दुरात्मा सिंधुराज के सामने मैं कितनी हीन-सी हो गई हूं। किंतु वह उस दुष्ट के भय से उसकी भर्त्सना न करती, यह भी तो अपमानजनक था। वह इस नीच कामुक के सामने दीन होकर गिड़गिड़ा तो नहीं सकती थी! कैसी विडंबना है कि इस समय आश्रम में कोई भी पुरुष नहीं था। सब अपने-अपने कार्यों से वन में गए थे। मात्र महर्षि धौम्य ही होंगे जो संभवतः अपने कुटीर में ध्यानमग्न होंगे...

द्रौपदी बार-बार जयद्रथ को फटकारती हुई सव्यसाची अर्जुन, भीम तथा अपने ही बलशाली पतियों एवं वासुदेव कृष्ण का नाम लेकर जयद्रथ को इस नीचकर्म से विरत करने की चेष्टा कर रही थी, किंतु जयद्रथ तो मानो सारी ही सद्भावनाओं से हीन हो चुका था और अब किसी भी प्रकार वरांगना द्रौपदी को अपनी अंकशायिनी बनाकर परम आनंद की कल्पना में विभोर था। उसके संकेत पर बाहर रथों के पास खड़े जयद्रथ के अनुचरों ने भी आश्रम में प्रवेश किया। उन्होंने द्रौपदी को बरबस उठाकर रथ पर ले जाने की सोची, किंतु द्रौपदी सिंहनी की भांति बिफरकर बोली। ''दूर रहो। मेरा स्पर्श करने का

दुस्साहस नहीं करना!''

किसी को भी उसे छूने का साहस नहीं हुआ, तब दुरात्मा जयद्रथ ने स्वयं बढ़कर सहसा द्रौपदी का आंचल पकड़ लिया। द्रौपदी ने उसको इतनी जोर से धक्का दिया कि वह संभाल नहीं सका और सहसा जड़ से कटे हुए वृक्ष की भांति गिर पड़ा। फिर तो वह नाग की तरह फुफकारता हुआ उठा और उसने झपटकर द्रौपदी को अपनी बलिष्ठ भुजाओं में जकड़ लिया।

विवश द्रौपदी कातर होकर धौम्य मुनि को बुलाने लगी। उसका चीत्कार सुनकर धौम्य मुनि लपककर बाहर आए। उस समय द्रौपदी मात्र दुरात्मा जयद्रथ द्वारा बरबस उठाने की कुचेष्टा से बचने के लिए बरबस खिंचती-सी जाकर अपने-आप उसके रथ पर बैठ गई और धौम्य को प्रणाम करके बोली, ''भगवन् आप इस नीच, अधर्मी की कुचेष्टा के साक्षी हैं! मेरे स्वामी आएं तो आप उनको मेरी विवशता के विषय में बताकर इस पापात्मा को दंडित करने की प्रेरणा अवश्य दें...''

महर्षि धौम्य ने उच्च स्वर में जयद्रथ की भर्त्सना करते हुए कहा, ''अरे, अधर्मी, तू तो अपने कुल को कलंकित कर रहा है...ऐसे भी क्षत्रियधर्म के अनुसार, महात्मा पांडवों को परास्त किए बिना उनकी पत्नी को ले जाने का तुझे अधिकार नहीं!''

जयद्रथ के मन पर उस समय महापाप का प्रभाव था। द्रौपदी रथ पर बैठी थी कि वह अभिमानी महर्षि धौम्य की उपेक्षा करके तेजी से रथ हांकता हुआ दुर्गम वनप्रांत की ओर चल पड़ा। उसके अनुचर भी स्वामी की इस अकल्पनीय विजय पर हर्षित होकर कोलाहल मचाते हुए उत्साह के साथ उसका अनुसरण करने लगे। महर्षि धौम्य उसकी भर्त्सना करते हुए पैदल ही उनके रथों के पीछे-पीछे चल पड़े...

संयोग से उसी समय दिन-भर आखेट करने के बाद पांडव अपने आश्रम की ओर लौट रहे थे। संध्या की वेला में शांत-सा रहने वाला वनप्रांत सहसा चिड़ियों के चीत्कार और छोटे-छोटे जीव-जंतुओं की भगदड़ से आंदोलित हो उठा। वे इधर से उधर भागते हुए कातर आर्तनाद कर रहे थे। अनेक मृग तथा पशु-पक्षी इस समय सूर्य से जो दिशा कुछ-कुछ प्रकाशित हो रही थी, उसी ओर भाग रहे थे। उनकी दशा देखकर अनुभवी युधिष्ठिर ने चकित होकर कहा, ''अवश्य कहीं कुछ अनर्थकर हो रहा है! मुझे लगता है कि हमारे न होने पर किसी शत्रु ने आश्रम की ओर आकर उत्पात मचा रखा है, तभी ये पालतू छोटे-मोटे पशु-पक्षी इस प्रकार भयभीत और कातर होकर भाग रहे हैं। शीघ्र ही आश्रम की ओर चलो...अपशकुन देखकर मुझे भय हो रहा है। हमारी

पांचाली और महर्षि धौम्य सहित आश्रम के दीन वृद्ध-बालक आदि निश्चय ही त्रस्त होंगे!''

पांडवों ने तत्काल अपने रथों के उत्तम सैंधव अश्वों को तेजी से हांककर आश्रम की ओर प्रस्थान किया। निकट पहुंचते-पहुंचते काम्यकवन की दुरवस्था देखकर उन्हें गहरी चिंता होने लगी।

आश्रम के निकट पहुंचते ही उनको अपनी प्रिया द्रौपदी की दासी धात्रेयिका सहसा रोती हुई उधर से भागती दीख पड़ी। वह अचानक ठोकर खाकर गिर पड़ी और विलाप करने लगी। युधिष्ठिर का सारथी इंद्रसेन उसे देखते ही से कूद पड़ा और उससे विचलित होकर धरती पर पड़ी हुई रोने का कारण पूछने लगा।

इंद्रसेन की आवाज सुनकर धात्रेयिका की जान में जान आई। उसने अपने सुंदर मुखड़े पर बहते आंसुओं को पोंछकर आंखें उठाईं तो सामने महारथी पांडवों को देखते ही मानो उन्मत्त-सी होकर बोली, ''दैव ने मंगल ही किया! महाराज, शीघ्र कवच धारण करके उन शत्रुओं का पीछा करके महारानी का उद्धार कीजिए। रथों, गजराजों और अनेक अश्वारोहियों की सेना के साथ आकर एक दुरात्मा नरेश महारानी की अवहेलना करके बरबस उनका अपहरण कर ले गया। उनको रथ पर बैठाकर वे नीच अभी-अभी इसी ओर से गए हैं। उनके रथों और सैनिकों के जाने से नए मार्ग बन गए हैं, जो अब तक जैसे के तैसे हैं। टूटे हुए वृक्ष अभी तक मुरझाए भी नहीं हैं...देवी पांचाली उन आततायियों के वश में पड़कर विलाप करती जा रही हैं...आगे बढ़ते ही दो पल बाद आपको भी उन महाभागा का रुदन सुनाई पड़ जाएगा...अब शीघ्रता कीजिए महाराज, यज्ञमंडप में रखे पवित्र सोम-रस को रक्षक की असावधानी से कहीं कोई कुत्ता जूठा करके अपवित्र कर दे, इसके पहले ही महारानी की रक्षा कर लीजिए...''

महाराज युधिष्ठिर ने कुछ आवेश के साथ कहा, ''भद्रे, तुम शांत रहो। हमारे जीवित रहते पांचाली के विषय में अपवित्र होने की कल्पना भी करना उनका तिरस्कार है। जिसने भी यह अपराध किया है, वह कोई भी हो, आज हमारी क्रोधाग्नि में भस्म होकर रहेगा।''

पांडवों ने हुंकार भरकर अपने-अपने रथों को तीव्र वेग से उसी दिशा में मोड़ दिया।

सचमुच कुछ ही दूर जाने पर उनको जयद्रथ की सेना के चलने से उड़ती धूल दिखाई पड़ने लगी। और कुछ आगे जाते ही धौम्य मुनि भी द्रौपदी की रक्षा के लिए पदाति सैनिकों के बीच पैदल ही जाते दीख पड़े। उनके निकट

पहुंचकर उनको प्रणाम करते सव्यसाची अर्जुन ने आश्वासन-भरे शब्दों में कहा, ''अब आप निश्चिंत होकर चलें, हम आ गए हैं।'' और वे सभी जयद्रथ की सेना की ओर झपट पड़े।

पांचों पांडवों की दृष्टि जब जयद्रथ के रथ पर विवश-सी बैठी अपनी प्रियतमा द्रौपदी पर पड़ी तो वे पांचों अग्नि की भांति क्रोध से प्रज्वलित होकर सिंधुराज को ललकारने लगे। अमर्ष से भरे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को भयंकर शस्त्र धारण करके गरुड की भांति झपटते देखकर जयद्रथ के अंगरक्षकों और सारी सेना के मन में भय व्याप गया। वे विचलित होकर कोलाहल करने लगे।

उनको देखते ही द्रौपदी जयद्रथ को तिरस्कार से छेदती हुई बोली, ''ले अब तुझे तेरे भयानक अपराध का उचित दंड देने के लिए पांचों पांडव आ ही पहुंचे हैं...नराधम! आज तू जीवित नहीं बचेगा।''

रथारोही पांडवों ने निकट पहुंचते ही जयद्रथ की सेना पर आक्रमण कर दिया। देखते ही देखते अनेक पदाति सैनिक निष्प्राण होकर धरती पर बिछ-से गए। उनका प्रचंड कोप देखकर पदाति सैनिकों में भगदड़ मच गई, किंतु पांडवों के बाणों से कौन बच सकता था। तब पदाति सैनिक कातर कंठ से पांडवों से प्राणों की याचना करने लगे। धर्म के धनी पांडवों ने उनको छोड़ दिया और उनकी अवहेलना करके रथी तथा अश्वारोही और गजारूढ़ योद्धाओं को चारों ओर से घेर लिया। भीम अकेले ही जयद्रथ की ओर झपटे। तब शिवि राजकुमार कोटिकास्य ने अपनी रथसेना के साथ उनको घेरकर भीम तथा जयद्रथ के बीच अवरोध-सा खड़ा कर दिया। किंतु भीम ने अपनी शैक्य लौह से बनी विलक्षण गदा संभाली और जयद्रथ के अनुचरों द्वारा चारों ओर से नाराच, तोमर, प्रास और शक्ति से किए जाते प्रहारों की चिंता किए बिना उन पर टूट पड़े। उनके प्रचंड गदाघात से पहली बार में ही एक विशाल गजराज तथा चौदह सैनिक मारे गए। युधिष्ठिर ने अपने को घेरकर आक्रमण करते सौ सौवीर सैनिकों को पलक झपकते मार गिराया। नकुल अपनी तीक्ष्ण असि लेकर सहसा रथ से कूद पड़े और जयद्रथ के रथियों पर झपट-झपटकर उनका मस्तक काटने लगे।

सहदेव अपना रथ बढ़ाकर अकेले ही गजसेना पर भारी पड़ रहे थे। उनके अत्यंत विषैले तीक्ष्ण नाराचों से छिद-छिदकर चिंघाड़ते हुए गज अपनी पीठ पर बैठे योद्धाओं के साथ धरती पर गिरकर मरने लगे थे। क्षेमकर तथा महामुख नामक सैंधव राजकुमार जयद्रथ के महाबली अंगरक्षक थे। वे नकुल को दोनों ओर से घेरकर उन पर तोमरों का आघात करने लगे। तब नकुल ने

क्रोध में आकर अपने भयंकर विपाठ नामक बाणों से सहसा ही उन दोनों राजकुमारों को धराशायी कर दिया तथा अन्य रथियों की ओर झपट पड़े। उस समय गज पर सवार अत्यंत कुशल गजारोही योद्धा त्रिगर्तराज बड़े कौशल के साथ अपने गजराज का संचालन करता हुआ नकुल के सामने पहुंचा और उसने बड़ी दक्षता के साथ भीषण युद्ध में रत नकुल के रथ को ही अपने गजराज से उठवाकर सहसा उसे दूर फिंकवा दिया। नकुल बड़े कौशल से समय रहते रथ से कूद पड़े और ढाल-तलवार लिए हुए एक निरापद स्थान देखकर अविचल भाव से खड़े हो गए। त्रिगर्तराज ने कुपित होकर फिर से अपने गजराज को हूलकर उन पर टूट पड़ने को प्रेरित किया। उस समय पराक्रमी नकुल ने अद्‌भुत कर्म किया और अपनी लौहमय असि के एक ही आघात से गजराज के विशाल और भयावने दांतों सहित उसकी सूंड भी काट डाली। गजराज चिंघाड़कर तुरंत ही महावत सहित धराशायी हो गया। नकुल उस समय निकट से ही गुजरते भीम के रथ पर चढ़कर सुरक्षित हो गए और फिर अपनी प्रचंड असि से शत्रुओं का संहार करने लगे।

भीम ने इस बीच सहसा ही प्रहार करके कोटिकास्य के सारथी का मस्तक क्षुरप्र नामक अपने बाण से काट दिया। इसका पता ही कोटिकास्य को नहीं लगा और बिना सारथी के उसके अश्व भड़ककर इधर-उधर भागने लगे। तब विचलित कोटिकास्य को भीम ने मूठ वाले अपने प्रास के एक ही प्रहार से मार डाला।

अर्जुन ने इसी बीच अपने प्रखर बाणों से सौवीर के शेष बचे बारह में से दस राजकुमारों को मौत के घात उतार दिया था। फिर उन्होंने जयद्रथ के लिए युद्ध करते सिंधु, सौवीर तथा त्रिगर्तवासी अनेक योद्धाओं के साथ ही इक्ष्वाकु कुल के अनेक योद्धाओं को मार डाला। उनके द्वारा मारे गए योद्धाओं के रथ, अश्व तथा गज आदि वाहन अपने ध्वजों के साथ ही बिना रथी अथवा योद्धा के इधर-उधर भागते दीख पड़ रहे थे। सारी वनभूमि में उस समय सिर तथा विभिन्न अंगों से हीन शव ही शव रक्त के कीचड़ में पड़े दिखाई पड़ रहे थे। शेष बचे सैनिक अपनी जान बचाने के लिए पांडवों की दुहाई देते हुए इधर-उधर भाग रहे थे। अपनी सेना का पांडवों द्वारा लगभग पूर्ण विनाश देखकर जयद्रथ स्वयं भय से कांपने लगा। उसने तत्काल रथ से द्रौपदी को नीचे उतार दिया और वनप्रांत में छिपकर जान बचाने के लिए उस ओर भाग चला।

धौम्य मुनि द्रौपदी को साथ लेकर लौट पड़े।

पांचाली के साथ पैदल ही आते धौम्य मुनि को देखकर युधिष्ठिर ने उनको प्रणाम किया। उनके संकेत पर सहदेव ने द्रौपदी को संभालकर युधिष्ठिर

के रथ पर बैठा दिया।

आवेश में भीम उस समय भी अपने गदाघात से शेष योद्धाओं को यमलोक पहुंचाने में मस्त थे। तब अर्जुन ने उनसे सविनय कहा, ''पूज्य, जिसने वास्तव में अपराध किया है, वह दुष्ट जयद्रथ तो बचकर निकला जा रहा है! इन अभागे बलहीन सैनिकों का वध करने से क्या लाभ? आप तो उस दुरात्मा को पकड़ने का प्रयत्न कीजिए।''

भीम ने रुककर एक बार द्रौपदी की ओर देखा, फिर धर्मराज युधिष्ठिर से कहा, ''महाराज, अब तो आप सभी भाइयों से रक्षित होकर महात्मा धौम्य के साथ आश्रम पर जाइए और पांचाली को सांत्वना देकर शांत करिए। यह अधर्मी जयद्रथ तो अब चाहे पाताल तक भागे, आज मेरी गदा से इसे कोई नहीं बचा सकता...''

भीम क्रोध से होंठ चबाते हुए चले तो करुणा से भरकर युधिष्ठिर ने कहा, ''महाबली मध्यम पांडव, स्मरण रहे कि वह पापात्मा जयद्रथ हमारी भगिनी दुःशला का पति भी है! अतः तुम उसका वध मत करना। हम अपने हाथों अपनी बहन को ही विधवा कर देने का पाप कैसे सहन कर पाएंगे! तुम यशस्विनी माता गांधारी का विचार करके उसके प्राण मत लेना।''

''वह दुर्बुद्धि जयद्रथ तो अपने महान कुल और सिंधु देश का कलंक है। और पत्नी का अपहरण करने वाले पापात्मा को तो प्राणों की भीख मांगने पर भी क्षमा नहीं करना चाहिए।'' क्रोधावेग से कांपती पांचाली बोली, ''यदि आप लोग मेरा प्रिय करना चाहते हों तो उस नराधम को अवश्य मार डालिए!'' द्रौपदी ने आवेश के कारण भर्राए कंठ से भीम की ओर देखकर आग्रह किया।

अर्जुन तथा भीम फिर से जयद्रथ का पीछा करने लगे।

अर्जुन को लगा कि इस बीच प्राणभय से रथ को हांकता हुआ जयद्रथ एक कोस से भी दूर निकल गया है, तो उन्होंने एक अद्‌भुत कर्म किया। उनके पास अनेक दिव्यास्त्र थे। उन्होंने अपने अभिमंत्रित बाणों से उतनी दूर होने पर भी जयद्रथ के रथ को खींचते उत्तम प्रजाति के सैंधव अश्वों को मार डाला। समर्थ होने पर भी उन्होंने केवल युधिष्ठिर की आज्ञा न होने के कारण जयद्रथ का वध नहीं किया। बस, उसकी गति रोक दी।

घोड़ों के मरते ही अपने पीछे अलौकिक पराक्रम करने वाले अर्जुन को लगा समझकर जयद्रथ एकदम हताश हो गया और उसे जान बचाकर भागने के सिवा और कोई उपाय नहीं सूझा।

उसका पीछा करते अर्जुन ने उसे ललकारकर कहा, ''सिंधुराज के महान् पुत्र, तुम क्या भागने के पराक्रम के बल पर ही पांचाली का अपहरण करने

आए थे! तुम्हारे वह भुजदंड आज क्या कुंठित हो गए हैं जिन पर तुमको इतना अभिमान था? अथवा तुम अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का कौशल ही भूल गए हो। पराई स्त्री का अपहरण करके चोरों की तरह भागने वाले महाबली जयद्रथ, तुम शस्त्र धारण करके अपने अनुचरों की रक्षा करने का कर्म भी भूल गए हो? उनको शत्रुओं के बीच प्राणभय से कांपते छोड़कर स्वयं भाग रहे हो!''

अर्जुन के व्यंग्य करने पर भी जयद्रथ रुका नहीं, भागता ही रहा।

तब भीम उसको ललकारते हुए उसकी ओर झपट पड़े। उस समय अर्जुन ने उनको फिर ज्येष्ठ पांडव की आज्ञा की याद दिलाने के लिए कहा, ''भैया, तुम इस कायर के प्राण मत लेना। उसको हमारे ज्येष्ठ भ्राता जो दंड देंगे, उस पर ही संतोष करना उचित होगा।''

जयद्रथ उनके प्रबल वेग वाले रथों से कब तक बचता! भीम ने उसको निकट पाते ही सहसा झपटकर दबोच लिया और सिर से ऊपर तक उठाकर आकाश में नचाने के बाद धरती पर दे मारा। उन्होंने राजा जयद्रथ के केश पकड़कर उठाया उसके सिर पर कई थप्पड़ मारे और फिर धरती पर दे मारा। इतने पर भी जयद्रथ मरा नहीं। भीम ने उसको उठने की चेष्टा करते देखकर उसके सिर पर लात से प्रहार किया। वह गिर पड़ा तो भीम ने उसको घुटनों से दबाकर उसका तिरस्कार करते हुए उसे रौंदना आरंभ कर दिया। जयद्रथ उस भीषण प्रहार को नहीं झेल सका। वह कुछ देर तक मरते हुए पशु की भांति चिंघाड़ता रहा। फिर अचेत होकर पड़ रहा। भीम उसका वध कर देने पर उतारू हैं, यह देखकर अर्जुन ने फिर कोमल शब्दों में उनको याद दिलाया, ''आर्य, अब यह आपके प्रहार नहीं झेल सकेगा। आप एक बार महाराज के उस वचन को याद कीजिए जो उन्होंने दुःशला के वैधव्य और हमारी माता देवी गांधारी की पीड़ा के विषय में सोचकर कहा था।''

भीम ने कोपकर कहा, ''इस पापी ने पांचाली का अपमान किया है! उसे अनाथ स्त्री की भांति अरक्षित सोचकर उसका घोर तिरस्कार किया। इसको तो जितना भी कठोर दंड दिया जाए, कम ही है। मेरे हाथ से इसका जीवन बचना उचित नहीं, परंतु मैं कर ही क्या सकता हूं! हमारे महाराज तो हर समय करुणा से भरे रहते हैं और तुम भी जब देखो, बालक की भांति अपनी हठधर्मिता से मेरे ही हाथ रोक देते हो...फिर भी इसे पांचाली के क्लेशों और तिरस्कार का ऐसा दंड तो मिलना ही चाहिए कि वह फिर जीवन-भर किसी की कुलीना का इस प्रकार तिरस्कार करने के पहले भीम की आन माने।''

अर्जुन की भर्त्सना करके भी भीम ने उनकी इच्छा का आदर किया,

लेकिन जयद्रथ का राजकीय गौरव नष्ट कर देने की इच्छा से उन्होंने उसके लंबे-लंबे केशों को बरबस मूंड दिया और उसके सिर पर अपनी याद दिलाने के लिए एक की जगह पांच-पांच शिखाएं छोड़ दीं। फिर हँसकर बोले, ''इससे इस पंचशिख को याद रहेगा कि पांडवों की प्रिया का अपमान करने के कारण इसको कितना उत्तम पुरस्कार मिला था!''

उन्होंने बालकों की भांति प्रसन्न होकर जोर से अट्टहास किया। फिर जयद्रथ को देखकर बोले, ''सिंधुराज, मैं अपने महाराज और अपने इन महादयालु भ्राता की इच्छा से तुझको तभी प्राणों की भिक्षा दे सकता हूं, जब तुम राजाओं की सभाओं अथवा गोष्ठियों में पहुंचने पर अपनी ही ओर से सबसे पहले यह निवेदन करोगे कि 'मैं पांडुनंदन महाराज युधिष्ठिर का दास हूं...' युद्ध में पराजित दंभी और अकर्मण्य व्यक्ति के लिए तो ऐसा ही विधान है। अब यदि तुम्हें जीवित रहना हो तो हमारी आज्ञा स्वीकार करो, पराक्रमी सिंधुराज!''

भीम उस समय भी जयद्रथ को धरती पर घसीटते हुए उसे प्रताड़ित कर रहे थे। भयंकर पीड़ा से त्रस्त जयद्रथ ने प्राणभय से महाबली भीम की आज्ञा मानने की शपथ ली।

भीम ने हँसकर उसे छोड़ दिया, किंतु जयद्रथ को फिर उठकर खड़ा होते देखकर उन्होंने क्रोध से भरकर कहा, ''अब तो पहले तुझे चलकर हमारे महाराज तथा महारानी पांचाली को प्रणाम करके क्षमा मांगनी ही होगी। हम तो उनके अनुचर हैं। क्षमा करने का अधिकार तो उन महात्मा को ही है, जिनकी आज्ञा से तू इस दुष्कर्म के बाद भी जीवित रहकर अपने कुल में जाकर अपने पराक्रम की गाथा सुना सकेगा!''

भीम ने जयद्रथ को फिर से गिराकर उसको बांध लिया और उसे रथ पर लादते हुए कहा, ''हम पांडव तो अपने अपराधी बंदियों को इसी प्रकार आदर से ले जाकर महाराज के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।''

धूल से सना जयद्रथ अब भी भीम के प्रचंड प्रहारों से अचेत हो रहा था। वह चुपचाप रथ पर बंधा पड़ा रहा।

उस समय आश्रम पर अनेक ऋषि-मुनियों के साथ ही वहां पांडवों की रक्षा में रहने वाले अनगिनत लोग इस घटना से विह्वल होकर आ गए थे। महाराज युधिष्ठिर तथा नकुल और सहदेव के साथ पांचाली के सुरक्षित आ जाने पर सब प्रसन्न होकर उसी विषय में चर्चा कर रहे थे। तभी भीम और अर्जुन भी आ पहुंचे। भीम ने बंधे हुए जयद्रथ को काठ के पुतले की तरह उठाकर युधिष्ठिर के चरणों पर रख दिया और बोले, ''आपकी आज्ञा न होने

के कारण मैंने इस दुरात्मा का वध तो नहीं किया, किंतु इसको न्याय के लिए आपके समक्ष उपस्थित करना हमारा कर्तव्य था।''

सिंधुराज जयद्रथ को उस रूप में देखकर महाराज युधिष्ठिर अट्टहास करके बोले, ''कुरुनंदन, इसको तो तुमने सतकार करके पूरी तरह से तृप्त कर ही दिया है, अब इसे मुक्त कर दो।''

भीम ने फिर भी कहा, ''तो महाराज, अब आप स्वयं पांचाली को सूचित कर दीजिए कि इस नराधम ने अपनी प्राणरक्षा के लिए अपने को पांडवों का चिरकालीन दास बनाकर यह जीवन प्राप्त किया है।''

द्रौपदी ने हँसकर युधिष्ठिर की ओर देखा और उनकी दयालुता को स्मरण करके बोली, ''अब तो, मध्यम पांडव, तुमने सिर मूंडकर इसे विधिवत् महाराज का दास बना ही दिया है। अत: महाराज की प्रसन्नता के लिए अब इसको मुक्त कर देना ही उचित होगा, जिससे यहां से जाकर अपने गौरव के अभिमानी कौरवों को यह बता सके कि हमारे महाराज कितने उदारमना हैं और दास बन जाने पर शत्रु को भी क्षमा कर देते हैं।''

जयद्रथ आंख उठाकर किसी की ओर नहीं देख पा रहा था, फिर भी युधिष्ठिर को प्रणाम करने के बाद उसने वहां उपस्थित महर्षियों तथा सभी पूज्य जनों को प्रणाम किया और सिर झुकाए खड़ा रह गया।

उस पर अर्जुन को दया आ गई। उन्होंने बढ़कर आश्वासन-सा देने के लिए उसका हाथ थाम लिया।

युधिष्ठिर ने भी मृदु स्वर में कहा, ''सिंधुराज, अब तुमको हम अपनी दासता से भी मुक्त करते हैं। तुम अब किसी के दास नहीं रहे। किंतु तुमको धिक्कार है कि तुमने इस प्रकार परस्त्री के प्रति अपराध किया। फिर कभी ऐसा करने का दुस्साहस नहीं करना। तेरे ये सहायक भी तुम्हारी ही भांति अधम हैं, नहीं तो ऐसा हीन कर्म कौन करता है! तुमने महात्मा धौम्य की बात भी नहीं मानी। धिक्कार है...अस्तु, हम तो यही कामना करते हैं कि तुमको विधाता सद्बुद्धि दें। अब तुम अपने बचे हुए अनुचरों के साथ अपने वाहन आदि को लेकर यहां से निर्द्वंद्व जा सकते हो।''

युधिष्ठिर की बातों से अत्यंत लज्जित होकर सिर झुकाए जयद्रथ चुपचाप एक बार फिर, बिना किसी की ओर देखे, प्रणाम करके वहां से चला गया।

अपने अपमान के कारण जयद्रथ इतना क्षुब्ध हो गया था कि वह अपने देश अथवा राज्य की ओर नहीं गया। सीधा वहां से गंगाद्वार पहुंचा और वहां अपने अपमान का बदला लेने के लिए पांचों पांडवों को युद्ध में पराजित कर देने की कामना लेकर त्रिनेत्रधारी देवाधिदेव शंकर की घोर तपस्या करने लगा।

कहा जाता है कि महादेव ने प्रसन्न होकर उसको वर मांगने को कहा, तो उसने पांचों पांडवों को युद्ध में पराजित करने का वर मांगा। किंतु भगवान् शंकर ने कहा, "यह कदापि संभव नहीं, किंतु मैं इतना वर अवश्य देता हूं कि महाबाहु अर्जुन के दिव्य पराक्रम के सामने तो तुम कभी नहीं टिक सकोगे...हां, एक दिन सूर्यास्त तक तुम अन्य चारों पांडवों को अवश्य युद्ध में रोके रख सकोगे। अर्जुन साधारण व्यक्ति नहीं हैं, उनके पास दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं, तुम दो पल को भी उनके सामने नहीं ठहर सकते। अत: उनसे अपनी रक्षा करना!"

ग्यारह

द्वैतवन में रहते हुए पांडवों का बारहवां वर्ष पूरा होने को आया। तब युधिष्ठिर को चिंता हुई कि अब तेरहवां वर्ष हमको अज्ञातवास में बिताना है। यदि तेरहवें वर्ष में किसी भी प्रकार कौरवों को हमारे रहने का स्थान ज्ञात हो गया अथवा हमको पहचान लिया गया तो प्रतिज्ञा के अनुसार हमें फिर से पूरे बारह वर्ष वन में बिताने पड़ेंगे। उन्होंने अपनी यह चिंता अपने चारों भाइयों, पांचाली तथा स्वयं धौम्य मुनि के सामने प्रकट की।

बड़ी देर तक गहन विचार-विमर्श के बाद अर्जुन ने अज्ञातवास में रहने योग्य उचित स्थान का चुनाव करने के लिए युधिष्ठिर के सामने कई राज्यों का परिचय दिया। वह बोले, "मैं कुछ ऐसे राज्यों के विषय में बता रहा हूं जो हर प्रकार से संपन्न हैं तथा कुरु राज्य के आसपास ही बसे हैं। उन जनपदों में अकाल आदि का भय नहीं व्यापता और वे बड़े ही सुरम्य हैं। इसके अतिरिक्त उनमें कुछ तो हमारे परम हितैषी संबंधियों के अधीन ही हैं, अत: वहां हमें स्नेह और हर प्रकार से सुरक्षा तथा सहायता भी मिलेगी—जैसे पांचाल, चेदि, शूरसेन, विशाल कुंतिराष्ट्र तथा अवंती देश। इनके अतिरिक्त पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल जनपद, युगंधर तथा सौराष्ट्र आदि ऐसे ही सुरक्षित तथा हर दृष्टि से निवास करने योग्य हैं। अब जिस स्थान को आप उपयुक्त समझें, वहीं चलकर बसने का उपाय किया जाए।"

युधिष्ठिर ने कहा, "तुमने निश्चय ही हमारे लिए हितकर स्थानों का ही परामर्श दिया है, किंतु आरंभ के जिन पांचों राज्यों के नाम तुमने लिए हैं, वे हमारे सबसे प्रियजनों के राज्य हैं और वहां सारी सुविधाएं भी हैं, फिर भी उनके साथ सबसे बड़ी आशंका का कारण यह है कि उन राज्यों से हमारे अत्यंत निकट के संबंध हैं। और इस विषय में सभी जानते हैं। कौरवों में से दुर्योधन, शकुनि आदि निश्चय ही अपने चरों को पहले से ही लगाकर यह अनुमान लगाने का प्रयास कर रहे होंगे कि हम तेरहवां वर्ष किस राज्य में बिताएंगे। ऐसे

में उनका ध्यान सबसे पहले तो इन्हीं राज्यों की ओर जाएगा। उनको यही आशा होगी कि हम अज्ञातवास के लिए निश्चय ही अपने किसी संबंधी का राज्य ही चुनेंगे, अत: उनके चर तो अभी से उन राज्यों में फैल गए होंगे। हमको तो किसी ऐसे राज्य में रहने का निश्चय करना चाहिए जहां हमारे शत्रुओं को हमारे होने की कल्पना तक न हो!''

अंत में बहुत सोचकर उन्होंने मत्स्य देश को अज्ञातवास के लिए उचित माना। इसका कारण यह था कि मत्स्य देश के राजा विराट अत्यंत तेजस्वी, पराक्रमी, न्यायी और हर प्रकार से समर्थ थे और वे पांडवों के प्रति आदरभाव रखते हुए भी उनके उस प्रकार से घनिष्ठ संबंधी नहीं थे कि कौरवों को वहां के विषय में विषेष संदेह होता है। वैसे तो उनके चर पांडवों को तेरहवें वर्ष में पहचान लेने के लिए प्राणपण से चेष्टा करेंगे ही।

यह निश्चय होने के बाद वे लोग विचार करने लगे कि मत्स्य राज्य में जाकर वे किस प्रकार अपने को गुप्त रखेंगे। उन्होंने अपनी-अपनी विशेषताओं के अनुसार अपना वेश बदलकर विराटराज के यहां रहने का विचार कर लिया।

अंत में उनका मार्ग प्रदर्शन करने वाले श्रेष्ठ पुरोहित धौम्य मुनि ने उनको अनेक ऐसे सूत्र बताए, जिनका किसी राजा के अधीन रहने पर पालन करना मंगलकारी होता है। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, ''ऐसे तो आप स्वयं ही चक्रवती नरेश हैं और सर्वज्ञ भी, किंतु मैंने इस कारण यह सब कहा कि अपने प्रियजन को हर बात विदित होने पर भी हितैषी व्यक्ति का कर्तव्य है कि वे अपने सुहृद को अपनी ओर से जो भी आवश्यक लगे, उसकी शिक्षा अवश्य दें। यही सोचकर मैंने यह जानते हुए भी कि तुम सभी महाभाग पांडव लोक-व्यवहार तथा जन-साधारण के आचरण के विषय में सब कुछ जानते हो, यह सब कहा। यही सनातन धर्म है तथा इसी से काम एवं अर्थ की प्राप्ति होती है।''

युधिष्ठिर ने विनयपूर्वक कहा, ''ब्रह्मन्, आपका कल्याण हो। आपने हमको जो शिक्षा दी है, वह महात्मा विदुर तथा हमारी पूजनीया माता के अतिरिक्त और कौन देता! उनके न रहने पर तो यहां हमको आपका ही सहारा है।''

फिर यात्रा के लिए तत्पर युधिष्ठिर ने उनसे अनुरोध किया, ''आप हमारे मंगल के लिए जो भी शास्त्रविहित हो, इस समय वह सब करें।''

युधिष्ठिर ने पहले ही निश्चय कर दिया था कि जब वे द्वैतवन छोड़कर चले जाएं तो यहां से पूज्य धौम्य मुनि सूपकारों तथा पाकशाला के अध्यक्ष को साथ लेकर पांचाल में जाकर महाराज द्रुपद के यहां निवास करें, और हमारे अग्निहोत्र के अग्नि की रक्षा करें। उनके साथ ही हमारे साथ रहकर पांचाली

की रक्षा एवं सेवा करने वाली धात्रेयिका आदि सब स्त्रियां भी पांचाल ही जाकर वहां निवास करें। उन्होंने अपने सारथी इंद्रसेन आदि को ओदश दिया कि वे सब केवल रथों को लेकर यहां से यादवों की दुर्जेय नगरी द्वारका जाकर वहीं पूरा वर्ष व्यतीत करें। वहां यदि कोई हमारे विषय में पूछे तो यही कहें कि हमको द्वैतवन में छोड़कर पांडव देवी पांचाली के साथ न जाने कहां चले गए हैं, अतः हम आश्रय लेने के लिए यहां आए हैं।

राजा युधिष्ठिर के अनुरोध करने पर उनका कल्याण चाहने वाले धौम्य मुनि ने विधिवत् अनेक अनुष्ठान संपन्न किए। उन्होंने पांडवों की अग्निहोत्र-संबंधी अग्नि को प्रज्वलित किया और पांडवों की समृद्धि, एवं राज्यलाभ की कामना की पूर्ति, वृद्धि तथा पृथ्वी पर विजयप्राप्ति के लिए वेदमंत्रों का उच्चारण करके हवन किया। तत्पश्चात पांडवों ने शुभ मुहूर्त में अग्नि तथा वहां उपस्थित वेद-वेदांग में पारंगत तपस्वी ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा की। फिर शुभांगी पांचाली को पथ पर आगे करके उन्होंने वन से अज्ञातवास के उद्देश्य से प्रस्थान किया। उस शुभ मुहूर्त में उन छह व्यक्तियों ने ही आसन से उठकर यात्रा के लिए प्रस्थान किया था।

द्वैतवन के आश्रम से निकलकर पांचों पांडव यथासंभव वेग से यात्रा करने लगे।

वनप्रांत में चलते समय वे शस्त्रों से सुसज्जित थे। कंधे पर विशाल धनुष, कटिबंध में तीक्ष्ण धारवाली असि, पीठ पर बाणों से भरे तूणीर के साथ उन्होंने गोह के चर्म से बने अकाट्य अंगुलित्राण धारण कर रखे थे। कोमलांगी पांचाली के साथ दुर्गम वनप्रांत को पार करते हुए वे पैदल ही यमुना नदी के दक्षिण तट के साथ-साथ पैदल ही चलते रहे। उस समय पांडवों के भीतर उत्साह जाग उठा था। वे निरंतर सोच रहे थे कि तेरहवां वर्ष अज्ञातवास में बिताने के बाद हम निश्चय ही अपना खोया हुआ राज्य फिर से प्राप्त कर लेंगे।

पराक्रमी योद्धा पांडव दुर्गम वनों, पर्वतों तथा नदियों-नालों को लांघते हुए यात्रा करते रहे। बीच-बीच में उचित और सुविधाजनक स्थान देखकर पांडव वहीं रात को शिविर डाल देते। वे बारी-बारी से अपने शिविर की रक्षा करने के लिए रात-भर जागते रहते थे। मार्ग में वे वन से अपने आहार के निमित्त अनेक फलमूल आदि का संग्रह तथा मेध्य पशुओं—मृग आदि का आखेट करते चल रहे थे।

बड़े धैर्य के साथ पांचाली की रक्षा करते हुए पांडवों ने मत्स्य देश की ओर जाने के लिए अपना मार्ग-निश्चय करते हुए कई राज्यों की सीमा में प्रवेश

किया और बुद्धिचातुर्य से अपने को मत्स्य देश में निवास करने की कामना से यात्रा करने वाले पथिक बताकर अनेक शंकाओं का समाधान करते हुए, सुशोभना पांचाली के साथ पश्चिम की ओर बढ़ते रहे। आगे चलकर उनको दशार्ण राज्य के उत्तर रहते हुए, तथा पांचाल के दक्षिण से गए मार्ग का आश्रय लेकर शूरसेन राज्य के बीच से होते हुए यात्रा करनी पड़ी।

उन धनुर्धर योद्धाओं को यात्रा करते कितने ही दिन बीत चले थे और थकान से उनके शरीर मलिन तथा उदासी से क्लांत-श्रांत हो चले थे।

उनके केश तथा दाढ़ी-मूंछ भी बहुत बढ़ गए थे।

अंततः यात्रा का अंत आ गया। एक दिन उन्होंने यात्रा सफलता से पूरी करके मत्स्य देश की सीमा में प्रवेश किया।

यह मत्स्य राज्य का जनपद क्षेत्र था। चारों ओर हरे-भरे खेत दिखाई पड़ने लगे। सुकुमार अंगों वाली द्रौपदी अत्यंत श्रांत हो रही थी। दूर-दूर तक पसरे खेतों तथा पगडंडियों को देखती हुई वह युधिष्ठिर से कहने लगी, ''राजन्, अभी तो लगता है कि राजा विराट की राजधानी यहां से बहुत दूर ही होगी। मैं थकान के मारे आगे चलने में असमर्थ हो रही हूं। ऐसी स्थिति में कहीं उचित स्थान देकर एक रात और विश्राम कर लेने से यात्रा सहज हो जाएगी।''

किंतु राजा युधिष्ठिर अब किसी प्रकार की बाधा से बचकर गुप्त स्थान पर अज्ञातवास करना ही उचित मानते थे। यहां कहीं रुकने पर दुर्योधन के किसी चर को उन लोगों पर शंका न हो जाए कि इतनी दूर की कठिन यात्रा ही निष्फल हो जाए, इसीलिए उन्होंने अर्जुन को आदेश दिया कि पांचाली को अपनी भुजाओं से उठाकर चलें। उन्होंने कहा, ''इस दुर्गम वनप्रांत को पार करने के बाद अब हमारे लिए राजा विराट की राजधानी में निवास करना ही उचित होगा।''

गजराज के समान बलशाली धनंजय ने अपनी प्रिया द्रौपदी को सचमुच अपनी भुजाओं से संभालकर उठा लिया। और वन पार करने के बाद राजा विराट की चहल-पहल से गुंजारित होती राजधानी में पहुंचकर ही उन्होंने पांचाली को नीचे उतारा।

अब राजधानी कुछ ही दूरी पर थी। युधिष्ठिर ने पुर के बाहर ही एक स्थान पर रुककर भाइयों से कहा, ''हमको अपने इन विशाल शस्त्रों के साथ नगर में प्रवेश करते देखकर निश्चित रूप से पुरजनों में उद्विग्नता व्याप सकती है। विशेषकर तुम्हारे विशाल गांडीव तथा भीम की भारी-भरकम इस विलक्षण गदा को देखकर तो कोई न कोई शंका कर ही बैठेगा। इन शस्त्रों की तो लोक में प्रसिद्धि व्याप्त है। ऐसे भी हमको अपने निश्चय के अनुसार जो वेश धारण

करने हैं, उनके साथ इन शस्त्रों की संगति नहीं बैठती। हमें फिर से तो बारह वर्षों के लिए वनवास करने की कामना है नहीं, अतः इन शस्त्रों को उपयुक्त स्थान पर सुरक्षित रखने की व्यवस्था करनी होगी।''

वे आसपास ऐसा स्थान खोज निकालने का प्रयास करने लगे, जहां उनको शस्त्र छिपाने का सुयोग प्राप्त हो। अंत में अर्जुन ने निकट ही श्मशान में टीले पर एक विशाल वृक्ष देखा। निकट से जाकर देखने पर शमी का वह विशालवृक्ष उन्हें उपयुक्त लगा।

शमी का वह वृक्ष श्मशान भूमि के अनुरूप ही था— भयानक और अत्यंत विशाल। उसकी डालियां भी इतनी भयावनी थीं कि उन पर जल्दी कोई चढ़ने का भी साहस नहीं कर सकता था। अर्जुन ने युधिष्ठिर तथा अन्य भाइयों की सम्मति लेकर अपने शस्त्रों को उसी वृक्ष पर छिपा देने का निश्चय किया। युधिष्ठिर ने नकुल को आज्ञा दी कि वे शमीवृक्ष पर चढ़कर सबके शास्त्रों को उसके भयावने खोखलों में ही छिपा दें। उन महाधनुर्धरों ने अपने-अपने धनुषों की तनी हुई प्रत्यंचाएं उतार दीं। और सभी शस्त्रों तथा तूणीरों एवं असि, चमकीले खड्गों, विपाठ तथा तीक्ष्ण क्षुरप्र आदि बाणों को शमी के खोखलों में रखकर उन्हें रस्सी से जकड़कर बांध दिया। उनको यह देखकर विशेष शांति मिली कि वृष्टि होने पर भी उनके लौहमय शस्त्र सुरक्षित रहेंगे, क्योंकि पानी वृक्ष के दुर्गम खोखलों में नहीं पहुंचेगा।

शस्त्रों को सुरक्षित रख देने के बाद उन्होंने एक और विचित्र-सा उपाय कर दिया कि कोई अकस्मात् उस वृक्ष पर चढ़कर उनके छिपाए गए शस्त्रों को देख न ले। भीमकर्मा भीम जाकर श्मशान में पड़े एक ऐसे शव को उठा लाए जो ऐसे ही अरक्षित पड़ा था। नकुल ने फिर से चढ़कर उस शव को शमीवृक्ष की एक शाखा से बांध दिया। पांडवों का विचार था कि उस शव से दुर्गंध उठने के कारण लोग इधर नहीं आएंगे। यदि कोई उस ओर आ भी जाएगा तो, उसे भी शव बंधा देखकर वृक्ष पर चढ़ने का साहस नहीं होगा।

वहां से निकलकर आते समय आसपास के वनों में पशुओं को चराते ग्वालों तथा अजापालों (गड़ेरियों) को पांडवों ने एक विचित्र-सी बात बताकर उनकी शंका का समाधान किया। उन्होंने कहा कि हमारी माता अत्यंत वृद्धावस्था की थी, अतः हमने अपने कुल की परंपरा के अनुसार ही उसके शव का संस्कार किया है।

शस्त्रों की ओर से निश्चिंत होकर परतंप पांडवों ने मत्स्य देश की उस शोभायुक्त राजधानी विराटपुरी में प्रवेश किया। किंतु नगरी में जाने के पहले उन्होंने एक गुप्त, निर्जन स्थान चुनकर अपनी-अपनी निश्चित भूमिका के

अनुरूप अपना वेश-परिवर्तन किया।

बारह

मत्स्य देश के अधिपति राजा विराट अपनी राजसभा में सभासदों के साथ विराजमान थे कि एक तेजस्वी ब्राह्मण ने आशीर्वचन का उच्चारण करते हुए प्रवेश किया।

राजा विराट की दृष्टि उन पर टिक-सी गई। वे कुछ विचित्र-से लगते ब्राह्मण युवक की ओर ताकते ही रह गए। उनकी वेशभूषा भी विचित्र एवं आकर्षक थी—सिर पर सुशोभन उष्णीष, हाथ में कमंडल, मस्तक पर प्रभावशाली मोटी शिखा, और शरीर पर मंजीठ के वर्ण का लाल वस्त्र, त्रिदंडधारी! विराट उनकी ओर अचरज-भरी दृष्टि से देखते ही रह गए। उनको लगा कि ब्राह्मण के वेश में होते हुए भी वह आचरण से ब्राह्मण नहीं लगते और उनकी सभा को कुछ इस दृष्टि से देख रहे हैं मानो स्वयं कहीं के सम्राट् हों। उनके लक्षणों से भी लगता था मानो राजयोग होते हुए भी उनको किसी कारण इस वेश में विचरण करना पड़ रहा हो।

राजा विराट ने उनका परिचय पूछा तो ब्राह्मण ने अत्यंत गंभीर, मृदु वाणी में कहा कि मैं अपना सर्वस्व गंवाकर एकाकी ही रह गया हूं और आपके यहां रहकर आपका प्रिय करते हुए जीवनयापन करना चाहता हूं। उन्होंने अपने कुल एवं गोत्र का परिचय देते हुए बताया, ''मैं व्याघ्रपाद गोत्र में उत्पन्न हुआ हूं। मेरा नाम कंक है। यहां आने से पहले मैं इंद्रप्रस्थ के चक्रवर्ती नरेश महाराज युधिष्ठिर के साथ रहता था। वे मुझे अपना सखा मानकर आदर देते थे। मैं वास्तव में चौसर खेलने की कला में पारंगत हूं और पासे फेंकने में निपुण हूं। राजा युधिष्ठिर को भी यह व्यसन बड़ा ही प्रिय था, अत: मैं उनका प्रेमभाजन बन गया था।''

स्वयं राजा विराट भी अन्य अनेक क्षत्रिय राजाओं की भांति द्यूतक्रीड़ा के प्रेमी थे, अत: उन्होंने कंक का विशेष स्नेह से स्वागत किया और उनको अपने साथ सखा के रूप में ही रहने को आमंत्रित किया।

कंक ने कहा, ''मैं तो स्वयं अपने निर्वाह की कामना से ही आपके पास आया हूं। मुझे विश्वास था कि आप जैसा पराक्रमी राजा ही युधिष्ठिर जैसे महाराज के सखा को यथोचित सम्मान तथा वर देकर अपने पास रखने में समर्थ हो सकेगा।''

राजा विराट ने उनको तत्काल अपने मनोवांछित वर प्रकट करने को कहा।

कंक ने कहा, ''ऐसे कुछ विशेष नहीं हैं, महाराज! पहला वर तो मैं यही मांगना चाहता हूं कि चक्रवर्ती सम्राट् युधिष्ठिर के यहां रहते समय मेरा कभी किसी हीन वर्ण के व्यक्ति से संपर्क ही नहीं होता था, अत: मेरा स्वभाव ऐसा हो गया है। मैं एक तो यही चाहता हूं कि मुझे आपके यहां कभी किसी हीन वर्ण के व्यक्ति से विवाद न करना पड़े। दूसरा वर यह दीजिए कि मुझसे पराजित होने वाला कोई भी व्यक्ति मेरे जीते हुए धन को अपने पास न रखे। मेरा अधिकार मुझे अवश्य मिल जाए।''

राजा विराट ने तत्काल कहा, ''यह तो न्यायसंगत ही है। आप निश्चिंत होकर साधिकार हमारे यहां रहें। जो भी आपके प्रति कोई अपराध करेगा, उसे मैं कठोर दंड दूंगा।'' इसके साथ ही विराट ने अपनी राजसभा में घोषणा कर दी कि कंक का उनके समान ही आदर किया जाए और कोई किसी प्रकार उनकी अवमानना नहीं करे। ''कंक मेरे राज्य में स्वयं मेरी ही भांति पूज्य एवं आदरणीय होकर निवास करेंगे।''

और सचमुच राजा ने कंक के लिए अपने समान ही भव्य निवास तथा अन्य सारी सुविधाओं की व्यवस्था करवा दी। उन्होंने कंक के लिए राजभवन में अबाध प्रवेश की आज्ञा भी दे दी। साथ ही उनको जब भी इच्छा हो, जिसको भी वह चाहें, उसको मनमाना दान आदि देने का अधिकार भी दे दिया। इसके अतिरिक्त उनको अपना परम सखा घोषित करके राजा विराट ने आदेश दिया कि कंक के साथ राजभवन की सभी स्त्रियों—अंत:पुर की रानी-महारानी और अन्य अंत:पुरिकाओं को भी किसी प्रकार का परदा करने की आवश्यकता नहीं। कंक स्वयं राजा के समान ही आदरणीय एवं समर्थ होंगे।

फिर राजा विराट की राजधानी में एक और विचित्र दृश्य देखने में आया—एक दिन चरों ने उस भव्य पुरी में एक अद्‌भुत रूपवती स्त्री को विचित्र वेश में, राजमार्ग पर विपन्न अवस्था में इधर-उधर भटकती देखा। देखने में वह किसी अप्सरा की भांति विलक्षण रूपयौवनशालिनी थी। उसका मुखमंडल तेजस्वी रूप के कारण देवताओं को भी मुग्ध कर लेने वाला था, किंतु कितना विचित्र लगता था कि वह अत्यंत मलिन वस्त्रों से तन को किसी प्रकार ढके हुए किसी सैरंध्री की भांति बड़ी ही दीनहीन अवस्था में वीथी-वीथी भटक रही थी। नगरी के कितने ही स्त्री-पुरुष उसके अद्‌भुत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उससे बात करने का प्रयास करते।

वह बड़ी शालीन और मधुर वाणी में उत्तर देती, ''मैं सैरंध्री हूं, किंतु अकस्मात् अत्यंत विपन्न अवस्था में पहुंच जाने के कारण इस प्रकार भटक रही

हूं। यदि किसी को आवश्यकता हो तो मुझे अपने यहां नियुक्त कर ले। मैं सैरंध्री की समस्त कलाओं में निपुण हूं और हर प्रकार से संतोष देने में समर्थ हूं!''

किंतु उसकी बात सुनकर तथा उसकी शालीनता और उस वेश में भी उफनते-से उसके अनिद्य रूप-यौवन को निहारकर किसी को विश्वास नहीं आता था कि वह वास्तव में सैरंध्री होगी और किसी के अंत:पुर में रहकर दासी का कार्य कर सकेगी।

उस विलक्षण श्यामा सुंदरी के विषय में राजभवन में भी समाचार पहुंच गया। राजा विराट की प्रिया-महारानी सुदेष्णा केकय देश की राजदुहिता थीं और रूपगर्विता भी थीं। उन्होंने भी कुतूहलवश अट्टालिका पर चढ़कर एक मात्र वस्त्र धारण किए, वीथी में भटकती उस विलक्षण सुंदरी को देखा तो चकित होकर उसे राजभवन में बुलवा लिया और उससे पूछा, ''तुम कौन हो, और किस कारण इस प्रकार भटक रही हो?''

उस रूपसी ने रानी सुदेष्णा को भी वही रटारटाया-सा उत्तर दिया, ''मैं निपुण सैरंध्री हूं और यहां इसी निमित्त आई हूं कि किसी के यहां सैरंध्री का कार्य करने का अवसर मिल जाए तो जीविका अर्जित करती हुई जीवन का निर्वाह कर सकूं।''

रानी सुदेष्णा केकय की राजदुहिता थीं और मत्स्य देश जैसे संपन्न राज्य की पट्टमहिषी थीं। उन्होंने एक ही दृष्टि में उस स्त्री के शुभ लक्षणों को पहचान लिया। यह तो अत्यंत शुभ लक्षणों से युक्त नारियों में रत्न है! वह मन ही मन उसके रूप-यौवन को निरखती-सी विचार करने लगीं—'यह तो शास्त्रों में वर्णित सौंदर्य की पराकाष्ठा है। इसके गुल्फ ऊंचे हैं। नाभि, वाणी और बुद्धि में गांभीर्य है। इसके आंख, कान, नाक, स्तन, नख तथा घाटी—छहों अंगों में शोभनीय ऊंचाई है। इसके सुंदर हाथों, पैर के तलवों, आंखों के कोनों, होंठों, जिह्वा और नखों में अत्यंत स्वाभाविक और मन को लुभाने वाली मृदु लालिमा है। इसकी वाणी हंसों की काकली की भांति गद्गद एवं मधुर और कर्णप्रिय है। अंग की कांति अत्यंत मोहक श्याम है। इस श्यामा सुंदरी के सभी अंगों में लालित्य तथा विश्व को मोहित कर लेने वाला आकर्षण है। विशेषकर इसके उरोजों तथा पीन नितंबों की छवि तो साक्षात कामदेवता को भी डिगा देने वाली है!

रानी सुदेष्णा ने सहसा व्यग्र होकर कहा, ''तुम्हारे रूप-रंग और सुशोभन अंगों के लक्षणों से तो विश्वास नहीं होता कि तुम कोई दासी हो। तुम अपना वास्तविक परिचय दो। मुझे तो प्रतीत होता है कि तुम कोई अप्सरा-गंधर्वी

अथवा यक्षबाला हो जो किसी कारण रूप बदलकर इस प्रकार विमोहित करने आई हो।''

उस युवती ने हँसकर कहा, ''महारानी, विश्वास करें—मैं कोई अप्सरा या यक्षिणी नहीं हूं। मैं तो सामान्य मानवी ही हूं और आपसे सच कहती हूं कि मैं सैरंध्री ही हूं और दासी का कार्य करने की कामना से ही आपकी नगरी में भटक रही हूं। मैं केशों का उत्तम श्रृंगार करना भी जानती हूं तथा देह को अद्‌भुत कोमलता और कांति प्रदान करने वाले सुरभित अंगराग और लेप आदि तैयार करना जानती हूं। देवी, वास्तव में मुझे वासुदेव कृष्ण की परम प्रियतमा महारानी सत्यभामा जैसी मुहासुंदरी के अतिरिक्त पांडवों की विख्यात रानी द्रौपदी पांचाली का भी श्रृंगार करने का अवसर प्राप्त हो चुका है। कुरुकुल की वह अनन्य सुंदरी महारानी द्रौपदी तो स्नेहवश मुझे मालिनी कहकर ही पुकारती थीं। मैं कमल, चंपक, मल्लिका तथा उत्पल आदि पुष्पों से उत्तम हार भी गूंथ लेती हूं।''

महारानी सुदेष्णा ने उससे एक बार भी यह नहीं पूछा कि तुम ऐसी संपन्न और विख्यात सुंदरियों की सेवा में रह चुकी हो, फिर भी आज तुमको इस प्रकार किस कारण भटकना पड़ रहा है! वास्तव में वह अपनी ही विचारधारा में बही जा रही थीं। कुछ पल सोचने के बाद उन्होंने कहा, ''और तो सब ठीक है, किंतु तुम्हारे इस विलक्षण रूप-यौवन के कारण शंका-सी होती है। भाविनी, तुम देखती हो न कि इस राजभवन में एक से एक रूपवती स्त्रियां राजसेवा के लिए नियुक्त हैं, तथा मेरे अंत:पुर में भी कितनी ही वरानना सुदरियां हैं, किंतु वे भी ठगी-सी खड़ी एकटक तुमको ही निहार रही हैं। तुमने अपने इस मलिन वेश में भी उनको वशीभूत कर लिया है! फिर तुमको देखते ही राजकुल के पुरुष अथवा स्वयं महाराज भी कामासक्त हो सकते हैं। यह तो हमारे लिए घोर विपत्ति का साधन हो जाएगा। इसी कारण तुमको चाहते हुए भी मैं अपनी सैरंध्री बनाने में सशंक हो रही हूं।''

सैरंध्री मालिनी ने हँसकर कहा, ''तो फिर देवी इस ओर से निश्चिंत रहें! मुझे कोई भी पुरुष... स्वयं महाराज विराट भी आसक्त होकर किसी भी प्रकार पाने में समर्थ नहीं हो सकते। अब मैं आपसे सत्य बता ही देती हूं—वस्तुत: मैं मानवी होती हुई भी एक अर्थ में विशेष हूं कि पांच गंधर्व मेरे पति हैं। वे महाबली गंधर्व सदा मेरी रक्षा करते हैं। अत: मेरे साथ यह अभिशाप जुड़ा है कि यदि कोई भी पुरुष मुझे पाने के लिए किसी प्रकार की धृष्टता करता है तो वे पांचों गंधर्व कुपित होकर उसे भयानक दंड देते हैं। कितनी ही बार देखने में आया है कि ऐसे धृष्ट पुरुष की रात को ही सहसा मृत्यु हो जाती है। यह

सब वास्तव में मेरे उन पांचों गंधर्व पतियों के रोष का ही परिणाम होता है।''

पल-भर रुककर सुंदरी मालिनी बोली, ''हां, आपको एक और बात बता देना आवश्यक है कि जो लोग मुझे बरबस किसी का जूठा खाने को नहीं देते अथवा मुझसे अपने पांव नहीं धुलवाते, उनसे मेरे पांचों गंधर्व पति बहुत प्रसन्न रहते हैं और उनका हर प्रकार से कल्याण करते हैं। किंतु इससे विपरीत करने वालों को घोर पीड़ा मिलती है। मुझे सामान्य मानवी मानकर सतीत्व से विचलित करने की चेष्टा करने वाला तो अत्यंत पीड़ादायी मृत्यु पाता है।''

सुदेष्णा उसकी बात सुनकर संतुष्ट हो गईं। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, ''सुशोभने, तुम निश्चिंत रहो। तुम्हारे बलवान पतियों की इच्छा के अनुसार, मैं तुमको तुम्हारी सुविधा के अनुरूप ही अपने राजभवन में रखूंगी—तुमको कभी कोई अपवित्र भोजन नहीं देगा और न कभी तुमको अपना पांव धोने को ही विवश करेगा। तुम मेरे साथ सखी की भांति सुख से रहो।''

इस प्रकार युधिष्ठिर तथा पांचाली ने युक्तिपूर्वक राजा विराट के यहां रहने का उपाय कर लिया था। सैरंध्री के वेश में पांचाली सहज ही महारानी की प्रिय सखी बनकर अंत:पुर में ही रहने लगी थी। रानी सुदेष्णा ने जो वचन दिया था, उसके अनुसार ही द्रौपदी को राजभवन में कभी न तो किसी का जूठन छूना पड़ता था, न उसे किसी का पांव धुलाने को विवश किया जाता था। सुदेष्णा स्वयं रूपवती थीं और केकय राज्य की सुंदरियों के समान उनको भी अपने रूप पर बड़ा अभिमान था। वह सैरंध्री मालिनी की कलानिपुणता के कारण अकस्मात ही मानो फिर यौवन के शिखर पर पहुंच गई हों। मन ही मन वह आनंदित थीं और द्रौपदी का आदर करती थीं।

कंक के रूप में महाराज युधिष्ठिर ने राजा विराट का मन जीत लिया था। उनको राजभवन में अबाध प्रवेश का अधिकार था और राजा ने उन्हें अपने समान ही अधिकार देने की घोषणा कर दी थी, इस कारण द्रौपदी को उनसे मिलने में कोई बाधा नहीं थी। यह मालिनी के वेश में अवसर पाने पर युधिष्ठिर से मिलकर अपने मन की पीड़ा भी दूर कर लेती थी।

उनकी सोची हुई युक्तियां सफल हो रही थीं, यह देखकर द्रौपदी मन में विशेष रूप से प्रसन्न रहती थी। उन्होंने मन ही मन सोचा कि महाराज युधिष्ठिर का यह विचार बड़ा ही सफल रहा कि अज्ञातवास के समय यही कहकर अपने को अधिक विश्वसनीय बनाया जा सकता था कि हम लोग राजा युधिष्ठिर अथवा महारानी द्रौपदी के अनुचर-परिचारिका रहे हैं। पांडवों के अकस्मात ही लुप्त हो जाने के बाद तो यह विश्वसनीय ही लगता था कि

दुर्योधन से पीड़ित पांडवों के अनुचरों को इस प्रकार विपन्न अवस्था में भटकना पड़ रहा है।

एक दिन सहदेव भी गोप के वेश में महाराज विराट की राजसभा में आ पहुंचे। उन्होंने अपना परिचय वैश्य कहकर दिया और बताया कि वे पांडवों के विशाल गोष्ठ में गोवंश की गणना आदि करने के लिए नियुक्त थे। बोले, "पांडवों के अकस्मात् जुए में पराजित हो जाने के बाद वनवास तथा फिर एकदम से अदृश्य हो जाने के कारण उनके न जाने कितने अनुचर जीविका से वंचित हो गए, क्योंकि कौरवों के राजा दुर्योधन तो पांडवों के प्रिय अनुचरों को भी पांडवों की भांति ही पीड़ित करके संतुष्ट होता था। और बिना जीविका के तो किसी का भी जीवन नहीं चल सकता, अत: मैं जीविका की खोज में आपका बहुत यश सुनकर आपकी ही शरण में आया हूं।"

राजा विराट उनके स्वभाव तथा व्यवहार से संतुष्ट हो गए, फिर भी उनकी कला आदि के विषय में उत्सुकता प्रकट की तो सहदेव ने बताया कि उनको पांडवों की असंख्य गायों से भरे गोष्ठ में रहकर सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका था और वे उनके मुख्य गणक और निरीक्षक थे। उनको वहां तंतिपाल कहा जाता था। उनका नाम तो अरिष्टनेमि है, किंतु राजा युधिष्ठिर के यहां सब उनको तंतिपाल के नाम से ही जानते थे। उनको गौओं के विषय में हर प्रकार का ज्ञान था। वे ऐसे उपाय भी जानते थे कि गोवंश की संख्या किस प्रकार शीघ्र ही बढ़ाई जा सकती है तथा उनको रोगों से कैसे बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उनको अनेक ऐसे उपायों का भी ज्ञान था कि किस प्रकार से गोधन से गोरस के अतिरिक्त और भी ओषध आदि प्राप्त किए जा सकते हैं।

राजा विराट ने प्रसन्न होकर अरिष्टनेमि को अपने विशाल गोष्ठ के सभी पशुपालकों का प्रमुख नियुक्त कर दिया। उनके गोष्ठ में एक लाख से अधिक उत्तम पशु थे। और अरिष्टनेमि के नाम से सहदेव वहीं गोष्ठ में रहकर सुख से समय काटने लगे। राजा की ओर से सहदेव की इच्छा के अनुरूप उनके लिए जीविका की व्यवस्था भी कर दी गई।

इसी बीच एक दिन राजा विराट की राजसभा में आकर महाबली भीम ने भी अपने लिए जीविका की व्यवस्था कर ली थी। भीम ने हाथ में मथानी, दर्वी, करछी तथा शाक आदि काटने वाला काले रंग का एक तेजधारवाला छुरा ले रखा था। राजा को अपना परिचय देते हुए उन्होंने अपना नाम बल्लव बताया और कहा कि वे पहले पांडव नरेश युधिष्ठिर के यहां सूपकार थे। उनके बनाए हुए व्यंजनों को महाराज युधिष्ठिर बड़ी रुचि के साथ खाते थे। उन्होंने बताया

कि उनको हर प्रकार का भोजन बनाने का अनुभव है। इसके साथ ही वह अपने शारीरिक बल से भी राजा युधिष्ठिर को प्रसन्न करते रहते थे। वह मल्लयुद्ध के अपराजेय योद्धा थे और क्रीडा के लिए हाथियों और सिंहों आदि से भी जूझ जाते थे।

राजा विराट को मल्लयुद्ध का और विशेषकर मनुष्यों को पशुओं से लड़ाकर आनंद लेने का व्यसन था। भीम के विशालकाय शरीर को देखकर उनको विश्वास हो गया कि वह बलिष्ठकाय व्यक्ति अवश्य श्रेष्ठ मल्ल होगा। उन्होंने भीम को अपनी पाकशाला का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया और उनके लिए उनकी आवश्यकता के अनुसार जो भी इच्छा हो, खाने-पीने की पूरी व्यवस्था कर दी।

एक दिन राजधानी की सुरक्षा के लिए बनी चहारदीवारी के पास अद्‌भुत रूपवान युवक दिखाई पड़ा। अपने बड़े-बड़े केशों को खोलकर उसने बांहों पर फैला रखा था। उसका वेश विलक्षण ही था। उस विशालकाय बलिष्ठ युवा ने स्त्रियों के-से आभूषण धारण कर रखे थे। कानों में बड़े-बड़े कुंडल थे और कलाई में उसने शंख की चूड़ियों के साथ सोने के कंगन भी पहन रखे थे। देखने में तो उसने किसी क्लीव (नपुंसक) की वेशभूषा धारण कर रखी थी, किंतु अपनी विशाल, ऊंची काया और चौड़े वक्ष के कारण वह विशालकाय योद्धा लगता था।

वह निर्भीक युवा प्रत्येक डग में धरती को प्रकंपित-सा करता हुआ राजा विराट की सभा में आया। उसने यद्यपि क्लीव पुरुष की वेशभूषा धारण कर रखी थी तो भी उसकी काया और गंभीर वाणी से प्रभावित राजा विराट चकित रह गए। उसने बताया, ''मेरा नाम बृहन्नला है और मैं नृत्य तथा संगीतकला में पारंगत हूं। इसके अतिरिक्त, मैं वेणीरचना तथा स्त्रियों की वेणी में पुष्पमाला आदि गूंथने की कला में दक्ष हूं। इस कला में तो स्त्रियां भी मेरे समक्ष नहीं ठहर सकतीं। वेणीरचना के साथ-साथ पुष्पहार तथा पुष्पों का ही उत्तम आवरण बनाने में भी मुझे निपुणता प्राप्त है। मैं स्नान कराने की कला में कुशल हूं। दर्पण आदि को निर्मल करने के अतिरिक्त मैं चंदन आदि द्रव्यों से सुंदर पत्ररचना करके सुंदरियों का उत्तम शृंगार करना भी जानता हूं। इन सारी कलाओं में तो स्त्रियां भी मुझसे अधिक कुशल नहीं हो सकतीं। मैं आपकी उदारता की ख्याति सुनकर ही आया हूं। मुझे आशा है कि आप मुझे अपनी सुदर्शना राजपुत्री उत्तरा को संगीत-नृत्य आदि कलाएं सिखाने का कार्य देकर मेरी जीविका का प्रबंध अवश्य कर देंगे।''

राजा विराट उस सुशोभन लेकिन विलक्षण पुरुष से प्रभावित तो थे, किंतु उनको और उनकी सभा के अनेक विद्वान पुरुषों को यही विश्वास नहीं आता था कि यह पराक्रमी योद्धा-सा दीखने वाला युवा पुरुष वास्तव में क्लीव है और राजपुत्री को उचित रूप से संगीत-नृत्य आदि की शिक्षा दे सकेगा।

राजा विराट ने तो प्रकट रूप से कहा, ''जिस प्रकार भगवान शंकर का वेश अशुभ लगता है, किंतु वे परम शिव हैं— मंगलकारी हैं, उसी प्रकार तुम्हारी वेशभूषा भले ही षण्ढ की-सी हो, किंतु तुम तो देखने में सारी पृथ्वी को अपने पराक्रम से जीत लेने में समर्थ बलिष्ठकाय पुरुष लगते हो।''

उत्तर मिला, ''महाराज, मेरा यह रूप किस कारण हुआ और मुझे आज इस रूप में किस कारण बृहन्नला का कर्म करना पड़ रहा है, इस विषय में आपको बताने से कोई लाभ नहीं, किंतु आप विश्वास करें कि मेरी शिक्षा से राजकन्या का ही संस्कार ही होगा और उनका मंगलकारी रूप किसी पराक्रमी कुल की वधू बनने में सहायक होगा।''

अंत में राजा विराट ने अपने सभासदों के परामर्श से अत्यंत गोपनीय रूप से बृहन्नला के पौरुष की परीक्षा अनेक रूपवती तथा मुग्ध कर लेने वाली रमणियों से करवाई। जब उस परीक्षा से प्रमाणित हो गया कि बृहन्नला वास्तव में पौरुषहीन है तब उसको राजदुहिता उत्तरा के राजभवन में अबाध प्रवेश का शासन मिल गया।

अपने प्रियतम सव्यसाची अर्जुन को इस अद्‌भुत वेश में अपने इतने निकट पाकर तो द्रौपदी खिल उठी। किंतु वे दोनों पूरी सतर्कता के साथ अपने रहस्य की गोपनीयता को बनाए रखकर राजा विराट के राजभवन में रहने लगे।

इसके बाद सबसे सुंदर और अपने रूप से किसी भी मोहित कर लेने वाले गंधर्वों के समान रूपवान नकुल राजा विराट के यहां आ पहुंचे। वे आते ही राजा के अश्वों का ध्यान से निरीक्षण करने लगे। विराट ने उन्हें देखा तो निकट बुलवाकर उनके संबंध में पूछा।

नकुल ने पहले से ही सोची युक्ति के अनुसार उत्तर दिया, ''मेरा नाम ग्रंथिक है। मैं ज्येष्ठ पांडव महाराज युधिष्ठिर का प्रिय अश्वपाल था। मैं घोड़ों को शिक्षित करने के कौशल में पारंगत हूं। मेरा सिखाया हुआ अश्व कभी कायर नहीं हो सकता। अश्वों के हर रोग तथा उनके उपचार के साथ ही मुझे उनके लक्षणों की गहरी पहचान है। महाराज प्रसन्न हों तो अपने अधीन सारथी का पद देकर मुझे जीविका का अवसर दें। मैं इंद्रप्रस्थ में चक्रवती सम्राट् युधिष्ठिर के यहां उनके असंख्य अश्वों का प्रमुख निरीक्षक था!''

राजा विराट को उन सबके विषय में कोई शंका नहीं हुई। वे सुन ही चुके

थे कि शकुनि के कपट के कारण पांडवों पर भीषण संकट आ गया है, अतः उनके अनुचरों पर विपदा आनी स्वाभाविक ही थी। उन्होंने पांडवों के अश्वपाल ग्रंथिक को हर दृष्टि से श्रेष्ठ समझकर अपनी विशाल अश्वशाला का भार सौंप दिया।

इस प्रकार पांचाली सहित पांचों पांडव राजा विराट के यहां रहकर अज्ञातवास की अवधि काटने लगे।

मत्स्य देश में रहते समय पांडव अत्यंत गोपनीय ढंग से एक-दूसरे की सुविधा का ध्यान रखते थे। राजा युधिष्ठिर मात्र व्यसनी होने के कारण द्यूतप्रेमी रहे हों, ऐसा नहीं था। वे पासे फेंकने में सचमुच निपुण थे, किंतु कुछ तो नियति का दोष था और कुछ कौरवों की ओर से पासे फेंकने के लिए चुने गए शकुनि का कपटजाल था, जिसकी चतुराई ने उनको ठग लिया था। यदि वही क्रीड़ा वास्तव में न्याय के साथ होती तो उस क्रीड़ा में युधिष्ठिर की उस प्रकार पराजय नहीं होती, किंतु उनकी नियति को तो कोई बदल नहीं सकता था! और पांडव तो उस समय कालचक्र के प्रभाव से हतचेत हो ही रहे थे!

कंक के रूप में युधिष्ठिर ने राजा विराट को अपने गुणों से मोहित कर लिया था। इतना ही नहीं, उनक़े सदाचार का प्रभाव राजसभा के साथ-साथ मत्स्य देश की प्रजा पर भी पड़ रहा था। उनके संस्कारों से सभी प्रभावित होते थे। राजा युधिष्ठिर पासों का मर्म जानते थे। जिस प्रकार कौतुक दिखाने वाला मदारी सूत से बांधकर पक्षियों को अपनी इच्छा के अनुसार उड़ाता है, उसी प्रकार युधिष्ठिर पासों को यथेच्छा फेंककर राजा तथा कुलीनों और प्रभावशाली सभासदों को द्यूतक्रीड़ा का आनंद देते थे। जुआ खेलने पर वह जो धन जीतते थे, राजा के दिए हुए वचन के अनुसार, उनका धन कोई रोकता नहीं था। अपेन जीते हुए धन को युधिष्ठिर गुप्त रूप से अपने भाइयों तथा पांचाली को भी देते रहते थे। यह रहस्य किसी को पता नहीं लग पाता था।

दूसरी ओर, भीम आदि भी अपनी ओर से ऐसा ही करते रहते थे। वहां मत्स्य-नरेश द्वारा समय-समय पर भीम को जो उत्तम पदार्थ भोजन अथवा स्वाद के लिए प्राप्त होते थे, उसे वह अपने भाइयों को भी अवश्य दिया करते थे। अर्जुन को भी बृहन्नला के वेश में अंतःपुर में रहने के कारण कितनी ही बार रानियों अथवा राजकुमारियों की ओर से कितने ही बहुमूल्य वस्त्र अथवा अलंकार आदि मिलते रहते थे। उनको दासी की वृत्ति करते देखकर कितनी ही बार रानियां अपने अमूल्य वस्त्राभूषण भी उतारकर उनको दे दिया करती थीं। अर्जुन अथवा पांडवों में से कोई भी उन पुराने अलंकारों आदि को धारण तो

कर नहीं सकते थे, अत: अर्जुन उन आभूषणों-रत्नों को ले जाकर बेच देते थे और उससे प्राप्त धन को अपने सभी भाइयों में बांट देते थे।

पांचाली को भी उन सबकी ओर से धन प्राप्त होता रहता था। गोपनीय रूप से एक-दूसरे की सहायता करते हुए पांचाली सहित पांडव योद्धा मत्स्य देश में अज्ञातवास का समय पूरा कर रहे थे।

नकुल को अश्वविद्या में निपुणता प्राप्त थी और सहदेव गोष्ठ में अपनी बुद्धि से सब कुछ करते रहते थे। उन दोनों को भी पुरस्कार आदि में जो भी धन अथवा बहुमूल्य पदार्थ प्राप्त होते रहते थे, उन्हें वे दोनों भी अवसर देखकर ज्येष्ठ भ्राताओं को अर्पित कर देते थे। उनके द्वारा सभी को पर्याप्त धन मिलता रहता था। इस प्रकार अत्यंत विकट स्थिति में रहते हुए भी पांडवों को विशेष कष्ट नहीं होता था।

समय बीत रहा था।

सुंदरी पांचाली राजप्रिया सुदेष्णा के अधीन सैरंध्री के रूप में परिचर्या कर रही थी और साथ ही किसी न किसी प्रकार अपने पांचों पतियों की सेवा का समय भी निकाल ही लेती थी। अत्यंत गोपनीयता बनाए रखकर वह पतियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखती। किंतु सबके सामने वह अपने पतियों के साथ ऐसा व्यवहार करती थी कि किसी को शंका न हो जाए।

अज्ञातवास करते हुए उनके लगभग चार महीने बीत चले थे। तब एक विशेष पर्व आ गया। मत्स्य देश में ब्रह्मा के पूजन के इस पर्व की बड़ी ही मान्यता थी। मत्स्य देश की प्रजा का यह प्रिय उत्सव था और वे पूरे वर्ष-भर इस समारोह की प्रतीक्षा करते रहते थे। इस पर्व पर विशेष रूप से मल्लयुद्ध का आयोजन किया जाता था, अत: इन दिनों मत्स्य देश में अनेक देशों के हजारों मल्ल आया करते थे। इस वर्ष भी चारों ओर से प्रसिद्ध मल्ल वहां आने लगे। देखते ही देखते मत्स्य देश में उत्साह और आवेश-सा छा गया।

इस बार वैसे तो अनेक देशों के एक से एक मल्ल आए थे, किंतु उनमें एक महाबली मल्ल जीमूत भी आया था। वह आकार में विकराल था। उसका पर्वताकार शरीर देखकर ही उससे टक्कर लेने की सोचते ही अन्य मल्लों का साहस उड़ जाता था। वह किसी से पराजित नहीं हुआ। अनेक मल्लों को पछाड़कर उसने विजेता की भांति वहां आए सभी मल्लों को दर्प के साथ ललकारना आरंभ कर दिया, किंतु कोई भी उसका सामना करने के लिए रंगभूमि में नहीं उतरता था। उसके विशाल कंधे और ग्रीवा सिंह के समान थे। एक दिन वह सभी मल्लों को बिना लड़े ही परास्त करके दंभ के साथ रंगभूमि में खड़ा हर किसी को चुनौती देने लगा।

तब सहसा राजा विराट को अपने सूपकार बल्लव की याद आ गई। उनको जीमूत मल्ल का दंभ अच्छा नहीं लग रहा था और उनकी इच्छा थी कि कोई जीमूत को टक्कर देकर उसके दर्प का दलन कर दे। इसी कारण उन्होंने बल्लव को बुलाकर जीमूत के साथ द्वंद्वयुद्ध करने का आदेश दे दिया।

भीम को इस अवसर पर विशेष उत्साह नहीं था। वास्तव में वे मन ही मन दु:खी ही हुए, क्योंकि अभी तो अज्ञातवास के वर्ष में से पूरे आठ महीने का समय शेष था। ऐसे में भीम को अपने पहचाने जाने की आशंका हो रही थी। तो भी वे राजा विराट की आज्ञा का उल्लंघन तो नहीं कर सकते थे, अत: विवश होकर उनको मल्लों का वेश धारण करके जाना ही पड़ा। लेकिन रंगभूमि में उतरते ही मानो भीम को संसार की सारी शंकाओं-चिंताओं से मुक्ति मिल गई। अपने सामने वृत्रासुर की भांति विकराल शरीर वाले उस मल्ल को देखते ही भीम के मन में सदा बसी रहने वाली प्रचंड विजय की अभिलाषा जाग उठी। वे उत्साह में भरकर तत्काल रंगभूमि में कूद पड़े। विजयदर्प से भरा जीमूत भी उत्साह से उफन-सा रहा था। वह भीम को देखते ही गरजकर आया और देखते ही देखते दोनों विकराल शरीर वाले मल्ल योद्धा एक-दूसरे पर टूट पड़े।

महाबली भीम को भी बहुत दिनों के बाद टक्कर का योद्धा मिला था। इधर बहुत दिनों से वह सूपागार में सेवा करते-करते उकता रहे थे। वनवास के उपरांत उनको बहुत दिनों से किसी वनचर अथवा राक्षस से भिड़ने का अवसर भी नहीं मिला था। आज जीमूत को पाकर उन्हें मानो अपने मन का जोड़ मिल गया था। वह जीमूत से द्वंद्व करने लगे।

जीमूत वास्तव में ऐसा-वैसा नहीं था। भीम को अपनी टक्कर का पाकर वह उन पर सिंह की भांति टूट पड़ा। दोनों मल्लों में विकट युद्ध होने लगा। बड़ी देर तक वे एक-दूसरे को परास्त करने के लिए भयानक संघर्ष करते रहे। जीमूत भी शक्तिशाली था और वह जरा भी विचलित हुए बिना हर उपाय से भीम को परास्त करने का प्रयत्न करने लगा। एक प्रकार से उन दोनों मल्लों के बीच द्वंद्व की कोई मर्यादा ही नहीं रह गई। भीम को जब ऐसा लगा कि जीमूत छल-बल हर उपाय से युद्ध करके उनको परास्त करना ही चाहता है और उन पर गरज-गरजकर आक्रमण करने लगा है तो उनको भी क्रोध आ गया। वह घनघोर मल्लयुद्ध देखकर प्रजा तथा सभासद तक उत्तेजित होकर कोलाहल करने लगे। वे दोनों ही मल्लों को उत्साहित करते हुए वे हर्षनाद करने लगे।

दोनों मल्ल कभी प्रतिद्वंद्वी को बांहों में दबोचकर बरबस उसकी अपनी

ओर खींच लाते और कभी आगे-पीछे झटककर दूर फेंक देते। वे एक-दूसरे पर घुटने और बांहों से प्रचंड आघात करते और अवसर पाते ही किसी न किसी प्रकार दूसरे को धराशायी करने का प्रयास करते।

दांव-पेच में निपुण दोनों ही मल्ल पैंतरे बदलते हुए एक-दूसरे को थका देने का प्रयास कर रहे थे। किंतु भीम तो भीम ही थे। वे बड़ी देर तक मल्लयुद्ध के अप्रतिम कौशल दिखाकर दर्शकों को मोहित करते रहे और जीमूत से खेलते-से रहे। फिर अवसर देखकर वह एकाएक जीमूत की ओर झपटे और उसको पकड़कर उन्होंने अचानक दोनों बलिष्ठ भुजाओं से सिर के ऊपर उठा लिया। दर्शक भीम के कौशल और बल के लिए जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर उनका अभिनंदन करने लगे। जीमूत ने उनकी पकड़ से बचने का घोर प्रयास किया, किंतु एक बार भीम के चंगुल में आ जाने के बाद वह किसी भी प्रकार अपने को मुक्त करने में सफल नहीं हुआ। इतनी देर से भीम उसके भीषण आघातों को झेलते-झेलते अत्यंत कुद्ध हो चुके थे। उन्होंने कोपकर जीमूत को आकाश में अनगिनत बार नचाया फिर उसको उठाकर चट्टान की तरह रंगभूमि में दे मारा। जीमूत तो भीम द्वारा सौ बार घुमाए जाने से ही चेतना खो बैठा था। धरती पर गिरने के बाद भीम ने उसे रौंद डाला। जीमूत निष्प्राण होकर लोंदे की तरह निष्चेष्ट पड़ा रह गया। उस लोकविख्यात महामल्ल जीमूत को इस प्रकार छकाकर अंत में उसका वध कर देने वाले भीम के पराक्रम से मत्स्य देश की प्रजा और राजा सभी आश्चर्यचकित रह गए थे।

विजय के उपरांत राजा विराट ने भीम को अनेक बहुमूल्य पुरस्कार देकर उनका सम्मान किया। उनकी आज्ञा से रंगभूमि में ही भीम पर स्वर्ण की वर्षा-सी कर दी गई।

कुछ ही दिनों में अनेक मल्लों को परास्त करके भीम ने यश के साथ ही राजा विराट से बहुमूल्य पुरस्कारों के साथ-साथ उनका का आदर और प्रेम भी जीत लिया, किंतु वह प्रेम उनके लिए कोई विशेष सुविधाजनक नहीं रहा। राजा विराट ने जब देखा कि मत्स्य देश में अब भीम की टक्कर का कोई मल्ल आता ही नहीं है तो वह भीम को हाथियों, बाघों तथा सिंह जैसे हिंस्र जंतुओं से लड़ाकर उनके द्वंद्वयुद्ध का आनंद लेने लगे। कितनी ही बार राजा विराट अपनी रानियों को—विशेषकर अपनी प्रिया सुंदरी पट्टमहिषी सुदेष्णा को प्रसन्न करने के लिए भीम के मल्लयुद्ध का आयोजन अंतःपुर की रंगभूमि में करवाते। भीम को मतवाले और बलवान सिंहों को भी परास्त करते देखकर अंतःपुरिकाएं स्तंभित होकर भीम के महाबल की सराहना करतीं। और रानियां भी अपनी ओर से उनको इस दुर्लभ आनंद के लिए अनेक पुरस्कार देतीं।

किंतु सैरंध्री के वेश में महारानी सुदेष्णा के निकट ही बैठकर अपने परम प्रिय पति महापराक्रमी भीम को इस प्रकार उन हीन कोटि की रानियों तथा अंत:पुरिकाओं की यह गर्हित इच्छा पूरी करके उनको आनंद देने का जब भी आयोजन किया जाता था, पांचाली को रोना आ जाता। युद्ध में इंद्र को भी पराजित कर देने में समर्थ महाबलशाली मध्यम पांडव को इन हीन स्त्रियों की प्रसन्नता के लिए किस प्रकार हिंस्र जंतुओं के साथ भीषण द्वंद्व करना होता है, यह सोच-सोचकर पांचाली अपने दुर्भाग्य को कोसती रहती। कितनी ही बार जंतुओं के आघात अथवा पंजों के प्रहार से भीम के शरीर में खरोंच भी आ जाती तो मात्र प्रतिज्ञा से बंधी होने के कारण ही पांचाली अपने को किसी तरह संभालती अथवा रुआंसी-सी होकर वहां से उठकर चली ही जाती थी। एकाध बार तो उसके विवर्ण मुखमंडल को देखकर अंत:पुर की कोई चंचला कटाक्ष करके अन्य सखियों को भी पांचाली की ओर दिखा-दिखाकर हँसती। धीरे-धीरे पांचाली पर कई रानियां व्यंग्य भी करने लगीं।

एक दिन तो स्वयं महारानी को दिखाकर एक रानी ने कहा, ''आपकी यह सैरंध्री तो पांच गंधर्वों की पत्नी है, महारानी! तो भी लगता है इस बल्लव मल्ल के लिए इसके मन में कहीं बड़ा ही कोमल स्थान है। मैं कितनी ही बार देख चुकी हूं कि जब भी बल्लव यहां किसी हिंस्र पशु से लड़ने लगता है, इसका मुखमंडल विवर्ण हो उठता है। आज भी देखिए न कि इसका सुंदर चेहरा किस प्रकार उदास-सा हो गया है। लगता है, अब रो ही पड़ेगी। भला किसी गंधर्वपत्नी का किसी सूपकार मल्ल से ऐसा लगाव क्या शोभा देता है! इसके गंधर्वों को क्या इसके मन में बसे बल्लव के विषय में पता नहीं चलता होगा।''

रानी सुदेष्णा ने भी पांचाली की ओर देखा और व्यंग्य से हँस पड़ीं। फिर उसको छेड़ती हुई बोलीं, ''यह हमारी सैरंध्री भी इंद्रप्रस्थ के राजभवन में पांडवों की प्रिया महारानी पांचाली की सैरंध्री के रूप में रह चुकी है न! और बल्लव भी पहले राजा युधिष्ठिर का सूपकार ही था। उस समय भी तो दोनों को निकट रहने का अवसर मिलता ही होगा। कौन जाने तब की ममता की भावना मन में बसी होगी, स्त्री का क्या है! किसी के प्रति भी कोमल हो जाती है।''

ऐसे-ऐसे परिहास सुनकर पांचाली मन ही मन कुपित तो हो उठती, किंतु वह विवश थी, अत: कितनी ही बार तो स्वयं भी उनकी हँसी में हँसी मिलाकर बात को उड़ा देती, और कितनी ही बार वह ऐसे अवसर पर वहां उन सबके साथ बैठकर भीम का वह अद्‌भुत पराक्रम देखने की इच्छा होने पर भी वह बहाने से स्वयं किसी और ही काम में लगी रह जाती।

तेरह

दिन बीतते जा रहे थे। महारथी पांडवों को मत्स्य देश में छिपकर अपने लिए सर्वथा अयोग्य तथा अकरणीय कार्य करके दिन बिताते धीरे-धीरे दस महीने पूरे हो गए थे। तब अकस्मात् एक ऐसी विपत्ति ने पांचाली को जकड़ लिया कि उसकी जान संकट में पड़ गई। राजा विराट का सेनापति था महाबली कीचक। वह अपनी बहन सुदेष्णा के कारण उस राजभवन में स्वयं राजा की भांति रहता था। उसके विषय में द्रौपदी को बहुत-सी बातें ज्ञात हो गई थीं। यहां रहने के बाद धीरे-धीरे द्रौपदी को बहुत कुछ मालूम हो गया था। उसने सुना कि महारानी सुदेष्णा वास्तव में सूतराज केकय की पुत्री थीं। केकय स्वयं किसी कुलीना क्षत्राणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। सूत जाति के विषय में कुछ विशेष बातें थीं, जिनके संबंध में द्रौपदी को पहले से ही ज्ञात था। क्षत्रिय पिता की किसी ब्राह्मणी माता के गर्भ से जन्म लेने वाली संतान को सूत कहा जाता था। दोनों उच्च वर्णों की संतान होने के कारण सूत जाति वैश्यों से उत्तम मानी जाती तथा द्विज संस्कारों की अधिकारी होती थी। उस युग में सूत जाति के लोगों को उतना हीन नहीं माना जाता था। वे उच्च वर्ण के ही गिने जाते थे और उनका स्थान समाज में वैश्यों की अपेक्षा उच्चतर होता था। हां, वे ब्राह्मण ही नहीं, क्षत्रियों की अपेक्षा भी हीन माने जाते थे।

सूत जाति के अधिकांश लोगों को रथयुद्ध की विशेष शिक्षा मिलती थी। और वे उत्तम सारथी होने के साथ ही अर्थनीति तथा राजधर्म के भी ज्ञाता माने जाते थे। सारथी के रूप में वे वास्तव में में राजा के मंत्री ही माने जाते थे। प्राचीन काल में राजा दशरथ के सबसे प्रमुख मंत्री के रूप में सूत सुमंत अथवा सुमंत्र प्रसिद्धि पा चुके हैं। सूतों को हीन जाति का नहीं माना जाता था और कितने ही क्षत्रिय राजा भी सूतजाति से वैवाहिक संबंध स्थापित करते थे; किंतु सूत जाति के व्यक्ति को राजा की उपाधि नहीं मिलती थी। तो भी सूतों के लिए कई राज्यों की व्यवस्था की जाती थी। सुदेष्णा के पिता केकय वास्तव में ऐसे ही एक सूतराज्य के अधिपति थे।

सूतराज केकय का जन्म किसी क्षत्रिय की कन्या के गर्भ से हुआ था। उनकी दो पत्नियां थीं। दोनों ही मालव देश की थीं और रूप-गुण में श्रेष्ठ थीं। उनकी पहली मालव पत्नी से अनेक पुत्र उत्पन्न हुए थे जो महाबलशाली थे। सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम कीचक था। उसके अन्य भाइयों को उपकीचक कहा जाता था। कीचक महाबली था। केकय की दूसरी मालव रानी के गर्भ से एक रूपवती कन्या का जन्म हुआ था, जिसका नाम सुचित्रा था। वह सुचित्रा ही

वास्तव में विराटराज की प्रिय पत्नी सुदेष्णा थी। वह समस्त कीचकों की प्रिय छोटी बहन थी।

राजा विराट की पहली रानी कोसल देश की राजकन्या देवी सुरधा थीं। उनका ही पुत्र राजा विराट का ज्येष्ठ पुत्र श्वेत था। किंतु रानी सुरथा का यौवनकाल में ही देहांत हो गया था। उनकी मृत्यु हो जाने पर राजा विराट ने सूतराज केकय की रूपवती पुत्री सुदेष्णा से विवाह किया और उसे पट्टाराजमहिषी का पद दिया। अपने रूप-यौवन के बल पर रानी सुदेष्णा ने राजा विराट के मन पर अधिकार कर लिया था। उन्हें पाकर राजा विराट का सुरथा जैसी महारानी के विछोह से होने वाला दुःख कम हो गया था। रानी सुदेष्णा की दो संतान थीं—पुत्र उत्तरकुमार तथा एक अत्यंत रूपवती पुत्री उत्तरा।

कीचक अपनी बहन सुदेष्णा के प्रभाव से राजा विराट के यहां ही आकर रहने लगा। उसके साथ उसके सभी अनुज-उपकीचक तथा अनेक बंधु-बांधव भी मत्स्य देश में ही आकर बस गए। कीचक किसी महाबली दैत्य के समान था। बलशाली होने के साथ ही वह घोर दंभी था और प्रजा पर उसका आतंक छाया रहता था। फिर भी राजा विराट उसका आदर करते थे। उसको उन्होंने अपने यहां का सबसे वरिष्ठ सेनापति बना दिया था।

वास्तव में कीचक तथा उपकीचकों का मत्स्य देश में आना राजा विराट के लिए शुभ ही रहा। वे सभी भाई पराक्रमी थे और कीचक तो अपने बाहुबल के लिए दूर-दूर तक विख्यात था। कीचकों की सहायता से राजा विराट ने अपने सभी शत्रुओं को पराजित कर दिया था और अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त करके अपार धन और संपदा प्राप्त की थी। राजा विराट के राजकोश में उस युग के एक से एक अनुपम रत्न आदि थे, जिनके विषय में सुन-सुनकर अन्य राजा ललचाते रहते थे। राजा विराट ने कीचक की सहायता से त्रिगर्त, दशार्ण, मेखल, कशेरुक, मालव आदि कितने ही राज्यों पर विजय प्राप्त की थी और उनसे अपार धन-संपदा लेकर उनको अपने शासन में रख छोड़ा था। आसपास के अनेक जनपदों के स्वामी भूपाल तो कीचक के भय से अपना जनपद तक छोड़कर अन्य राज्यों की ओर भाग गए थे।

कीचक अपने सभी बलवान भाइयों के साथ रथसेना लेकर जिधर निकल जाता था, उधर भगदड़ मच जाती थी। राजा विराट के अपने दस भाई थे—शतानीक आदि। वे भी बड़े शक्तिशाली महारथी थे, किंतु उन्होंने भी कीचक भ्राताओं की शक्ति से प्रभावित होकर उनकी अधीनता-सी स्वीकार कर ली थी। राजा विराट ने कीचक को महासेनापति बना दिया था। महाशक्तिशाली होकर कीचक स्वयं राजा विराट की ही भांति मत्स्य देश में राजसुख भोगता

था। उस पर किसी का शासन नहीं था। एक तो राजा विराट स्वयं अपनी विजय तथा लोक में अपने बल के प्रभाव के लिए कीचक का ही उपकार मानते थे, फिर वह मन ही मन स्वयं भी कीचक की शक्ति से भयभीत रहते थे।

इस प्रकार कीचक निरंकुश हो गया था। वह जो मन आता, वही करता। अपनी वासना की तृप्ति के लिए वह किसी भी कुलकन्या अथवा सुंदरी कुलवधू को भी छीनकर बरबस अपने अधिकार में कर लेता था। उसके कामुकतापूर्ण अनाचारों के बारे में राजा विराट को कितनी ही बार प्रजा से तथा सभासदों से उलाहने मिलते ही रहते थे, किंतु राजा मात्र दिखावा करके किसी प्रकार बात को दबा भर देते थे। कीचक को अनुशासित करने का प्रयास वह कभी करते ही नहीं थे। और संभवतः करने का प्रयास करते तो उनको सफलता भी न मिलती। अतः कीचक स्वच्छंद रूप से आनंद भोग रहा था। राजभवन अथवा कहीं भी उसकी अबाध गति थी। वह रानी सुदेष्णा का प्रिय भाई था, फिर महासेनापति होने के कारण उसका असीम प्रभाव था!

इस कीचक सेनापति के कारण ही इतने दिनों के बाद पांचाली सहसा बड़े विकट संकट में फंस गई। एक दिन कहीं दूर की यात्रा करके कीचक लौटा ही था। वह महारानी सुदेष्णा से मिलकर विदेश से लाए उपहार देकर उन्हें प्रसन्न करने आया था। महारानी सुदेष्णा के भव्य कक्ष में प्रवेश करते ही वह ठगा-सा रह गया—सामने उसे एक अत्यंत रूपवती युवती दिखाई दी। उसका जाज्वल्यमान रूप मानो सारे राजभवन को देदीप्यमान करता-सा जान पड़ता था। कीचक बड़ी देर तक एकटक उसकी ओर देखता रह गया। सैरंध्री का वेश धारण करने के कारण वह रूपसी देखने में तो दासी ही लगती थी, किंतु उसके अंगों का सौष्ठव तथा देहकांति उसको कुछ और ही सिद्ध कर रही थी। कीचक की ओर अचानक ही दृष्टि उठी तो उसे अपनी ओर इस प्रकार दूषित दृष्टि से निहारते पाकर पांचाली सहसा लजा गई। वह उठती हुई महारानी से बोली, ''देवी अतिथि का स्वागत करें। मैं फिर आऊंगी।''

किंतु कीचक उस पर आसक्त हो गया था। द्रौपदी ने महारानी से जाने की अनुमति मांगी थी, फिर भी सुदेष्णा ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह अपने महाबली भाई कीचक के स्वागत में हँसती हुई बोली, ''तुम पहले जाकर मेरे भ्राता के लिए उत्तम पेय ले आओ।''

दोबारा उस कामुक व्यक्ति के सामने आना पड़ेगा, यह सोचकर पांचाली को वितृष्णा-सी हुई, किंतु उस समय तो उसको अन्यत्र जाने का अवसर मिल ही गया, अतः वह तुरंत चली गई।

अवसर पाकर कीचक अपनी बहन महारानी सुदेष्णा से बड़ी निर्लज्जतापूर्वक

बोला, "सुदेष्णे, मनुष्यमात्र को अपने मादक सौंदर्य से उन्मत्त कर देने वाली यह सुंदरी कौन है? मत्स्यराज के विशालभवन में देश-विदेश की कितनी ही अनिद्य सुंदरियां हैं, किंतु यह तो पहले कभी देखने में नहीं आई। यह तो किसी अप्सरा से भी अधिक आकर्षक है। इसकी उत्तेजक देहगंध मेरे मन को मथे डाल रही है। यह अत्यंत उत्तेजक वाहीकदेशीय मदिरा की भांति मुझे आविष्ट किए दे रही है। यह तो स्वयं राजरानी बनकर गंधर्वियों से अपनी सेवा कराने योग्य है, फिर तुम्हारे भवन में इस प्रकार दीनहीन दासी का वेश धारण करके यह किस कारण सैरंध्री बनी फिर रही है? मुझे तो यह देवांगनाओं की भांति चिरयौवना तथा इसका रूप नित्य नवीन रहने वाला जान पड़ता है। मैं इस पर अनुरक्त हूं और इसे किसी भी मूल्य पर गृहलक्ष्मी बनाकर अपने भव्य प्रासाद में रखने को आतुर हो उठा हूं। यह वहां रहकर एकछत्र राज करे, आज से...इसी समय चलकर यह मेरे चित्रमय विशाल भवन की शोभा बने। अब तो मेरी अपार संपत्ति, प्रियजनों तथा परिजनों से भरे आगार को यह दिव्य सुंदरी चलकर सुशोभित करेगी, तभी मेरा उद्वेग शांत होगा!"

सुदेष्णा कीचक की अनुजा थी और अपने बलवान भाई के प्रभाव से भी परिचित थी, अत: उसे भी इसमें कोई दोष नहीं दिखाई पड़ा। वह जानती थी कि एक बार कीचक को जिस भी भोग अथवा पदार्थ को पाने की इच्छा हो जाएगी, वह उसको किसी भी विधि से पाए बिना नहीं मानेगा। और इस विषय में स्वयं महाराज विराट भी उसके मार्ग में बाधा नहीं डाल सकते। कीचक तथा उसके अन्य प्रतापी भाइयों के बल पर ही राजा विराट ने कितने ही राज्यों और शत्रुओं को पराजित करके अपार संपदा प्राप्त की थी तथा अनुगत राजाओं का प्रणाम करवाने में भी सफल हुए थे। कीचक को किसी भी कारण रुष्ट करके उस अतुल संपदा तथा शक्ति से वंचित होने का साहस तो स्वयं महाराज भी नहीं कर सकते!

इसके अतिरिक्त एक और भी कारण यह था कि महारानी सुदेष्णा को अब पांचाली से ही ईर्ष्या और भय होने लगा था—उन्होंने स्वयं अनुभव किया था कि महाराज विराट भी इस अनिंद्य रूपवती युवती को देखकर लुभा गए थे। किंतु पांचाली के पांचों गंधर्व पतियों वाली बात का भय तो था ही। महाराज का चित्त पांचाली के प्रति आसक्त देखकर रानी सुदेष्णा के रूपगर्व को भी गहरी ठेस लगी थी। कोई भी पत्नी चाहे वह राजप्रिया ही हो, यह तो नहीं सहन कर सकती कि उसका पति किसी अन्य युवती पर अनुरक्त हो। यद्यपि उन दिनों राजाओं पर कोई ऐसा बंधन नहीं था और उनके अंत:पुर अनेक रमणियों से भरे रहते थे। रानी सुदेष्णा को लगा कि यदि पांचाली कीचक की पत्नी बन

जाए तो महाराज को फिर पांचाली के विषय में आसक्ति-भरा विचार भी नहीं आएगा। यद्यपि सुदेष्णा ने महाराज को सैरंध्री के गंधर्व पतियों के कोप का भय दिखाकर उन्हें द्रौपदी की ओर से अनासक्त करने की चेष्टा की थी, और उसके बाद फिर महाराज की ओर से पांचाली के प्रति कोई आग्रह भी नहीं दिखा था, किंतु राजचित्त और राजाओं की वासना तथा दुर्बलता का अनुभव सुदेष्णा को था। और उनको भय लगता था कि वास्तव में ऋषि-मुनियों को भी कामातुर करके विचलित करने में समर्थ यह सैरंध्री न जाने कब अवसर पाकर महाराज के मन पर अधिकार कर ले। अतः सैरंध्री का इस प्रकार पूरी तरह दुर्लभ हो जाना ही इसका एकमात्र उपाय हो सकता है। यही सोचकर रानी सुदेष्णा ने कुछ न कहकर एक प्रकार से अपने भाई कीचक के मन में द्रौपदी के प्रति उपजे आवेग के प्रति सहमति ही जताई।

पेय लेकर जब पांचाली फिर आई तो वह द्वार पर ही ठमककर उन दोनों के बीच होने वाली वार्ता के कुछ अंश सुन चुकी थी। कीचक के विषय में वह पहले से ही जानती थी कि वह लंपट है और उससे स्त्रियों के सतीत्व पर आए दिन संकट आते ही रहते हैं। ऐसी कितनी ही गम्या और अगम्या युवतियों को कीचक ने बलपूर्वक अपने अंतःपुर में डालकर उनको भ्रष्ट किया था और उनकी इच्छा-अनिच्छा की बात सोचे बिना उनका उपभोग करता ही रहता था। सबसे भयानक बात तो यह थी कि स्वयं राजा की ओर से भी कीचक पर अनाचारों को रोकने का कोई शासन नहीं था और वह निरंकुश होकर जो भी मन आता, करता ही रहता था। इस समय पांचाली को आश्चर्य यह हो रहा था कि उसने आते ही महारानी सुदेष्णा को अपने विषय में, अपनी प्रतिज्ञा तथा अपने पांचों महाबलशाली गंधर्व पतियों के बारे में जो कुछ बता दिया था, वह सब वस्तुतः पांचाली ने यह सोचकर ही तो कहा था कि महाकोपी गंधर्वों के भय से कोई राजपुरुष तक उसका अपमान नहीं करने पाएगा। उसको अपने यहां नियुक्त करते समय रानी सुदेष्णा ने वचन भी दिया था कि उसके प्रति ऐसी कोई त्रुटि नहीं होने पाएगी, जिससे उसके पति कुपित होकर अनर्थ करें। किंतु कीचक द्वारा पांचाली के लिए ऐसे अपमानजनक शब्द कहने पर भी महारानी ने कीचक को एक बार भी वर्जित करने की चेष्टा नहीं की थी। ऊपर से वह भाई की निर्लज्जता-भरी बातें सुनकर इस प्रकार मुसकरा रही थीं मानो उसकी इस इच्छा से वह स्वयं भी सहमत हों।

फिर भी पांचाली आज्ञा पालन करने से तो मना नहीं कर सकती थी। और ऐसे समय में जबकि पांडवों के अज्ञातवास को पूरा होने में अब कुछ ही दिन शेष रह गए थे, वह किसी प्रकार यह समय बिताना ही चाहती थी। वह

सिर झुकाए चुपचाप आई और उसने पेय से भरा कलश तथा कोशिका वहीं निकट ही रख दी। रानी का यह संकेत उसने अनदेखा कर दिया कि उनके महाबली भाई के लिए वह स्वयं कोशिका में मदिरा डालकर किसी साधारण-सी दासी की भांति मंद-मंद हँसी के साथ सेनापति को प्रसन्न करने के लिए अपने हाथ से आदरपूर्वक चषक उनके सामने प्रस्तुत करे।

किंतु कीचक को उस समय पेय अथवा किसी की ओर से होने वाले मान-अपमान की चिंता कहां थी! वह तो पांचाली को दोबारा सामने देखते ही कामाग्नि से दहकता-सा, अपनी प्रकृति के विपरीत, बड़े ही मधुर स्वर में प्रलोभन देता हुआ कहने लगा, ''सुंदरी, तुम किस कुल-गोत्र की कन्या हो? और तुम जैसी मत्तकाशिनी रमणी इस सर्वसंपन्न मत्स्य देश में भी आकर इस अनुचित वेश में दासीकर्म किस कारण कर रही है? मैं तो यह देखकर विस्मित हो रहा हूं कि तुम साक्षात कामदेवता के आलिंगन में शोभा पाने वाली स्वंय रति सुंदरी से भी अधिक रूपवती हो। कौन-सा पुरुष इस संसार में ऐसा होगा जो तुमको देखकर काम के अधीन न हो जाए। तनुमध्यमे, तुम तो अपने ही मादक यौवन के भार से पीड़ित हो। सुभ्रू, तुम सर्वांगसुंदरी हो। निश्चय ही तुम वह नहीं हो जो दीखती हो। किंतु अब तुमको किसी का भी भय नहीं होना चाहिए। चारुहासिनी, तुम तो आज, अभी से मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे मन को शांत करने वाली अपनी मृदु हँसी से मेरी भार्या बनने का आश्वासन दो और मेरी अतुल संपदा तथा हर प्रकार की भोग-सामग्री से अपने को संतुष्ट करो। यदि तुमको मेरी अन्य स्त्रियों से आपत्ति हो तो भी तुम निश्चिंत रहो। मैं तुम्हारा संकेत भर हो जाए तो अपनी सभी स्त्रियों को त्यागकर अपने भवन से उनको निर्वासित किए देता हूं, अथवा उचित तो यह होगा कि मेरी वे वरांगना स्त्रियां तुम्हारी सेवा करने के लिए दासी बनकर तुम्हारी इच्छा के अनुकूल आचरण करें। तुम जैसी विलासिनी सुंदरी के लिए परिचारिकाएं भी तो वैसी ही हो सकती हैं! तो फिर यही निश्चय रहा! तुम इसी समय उत्तम वस्त्रालंकारों को धारण करके मेरे भव्य शयनागार में चलो...अथवा यदि इच्छा हो तो मेरे नंदनकानन जैसे प्रमोदवन में चलकर मनचाही क्रीड़ा करके मुझे इस संतापकारी काम के दाह से बचा लो...मैं स्वयं आज से दास की भांति तुम्हारे अधीन रहूंगा और मैंने जिन राजाओं को पराजित करके अपना दास बनाया है, वे भी आकर तुम्हारे कमल जैसे चरणों की उसी प्रकार उपासना करें, जिस प्रकार लक्ष्मी की पूजा-अर्चना करके वे अपनी मनोकामना पूरी करते हैं...''

उसका आवेग-भरा अनुरोध कहीं समाप्त होने को नहीं आता था। महारानी उसकी ऐसी उद्दंड कामुकतापूर्ण बातें सुनती हुई विचित्र मुसकान के

साथ पांचाली को देख रही थीं। मानो उनको विश्वास हो कि कीचक जैसे महाबली सेनापति की ओर से भार्या बनने का आमंत्रण पाकर सैरंध्री निश्चय ही उसकी बन जाएगी।

पांचाली का तन-मन रोष से दहक-सा उठा, किंतु अपने को नियंत्रित करके वह यथासंभव मृदु स्वर में ही बोली, ''सूतपुत्र, मुझ जैसी हीनकुल की दासी के प्रति आपकी यह कामना सर्वथा अनुचित है। धर्म के अनुसार मनुष्य की अपनी जाति तथा कुल के अनुरूप ही भार्या होती है, तभी मंगल होता है। मैं तो हीनकुल की दासी हूं। यहां महारानी के केशों का शृंगार आदि करके किसी प्रकार दिन काट रही हूं। फिर मैं कुमारी भी नहीं, किसी की पत्नी हूं। अतः मुझसे ऐसी बातें करना आप जैसे बलशाली सेनापति को शोभा नहीं देता।''

लेंकिन कीचक पर पांचाली के इस शुभ वचन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह तो नारियों में रत्न पांचाली के रूपयौवन को देखकर उन्मत्त हो गया था। आवेश के साथ बोला, ''कजरारे नयनों वाली सुंदरी, मैं तो सर्वथा तुम्हारे कामोत्तेजक अंगों के वश में हूं। मेरे लिए तुमको इस प्रकार मंगल-अमंगल का उपदेश देने की क्या आवश्यकता है? तुमको संभवतः ज्ञात नहीं कि इस मत्स्य देश का वास्तव में तो मैं ही अधिपति हूं। यह राज्य मेरा ही बसाया हुआ समझो। मैं यह सारा संपन्न राज्य तुमको अर्पित करता हूं। वरांगने, तुम तो भीरुता छोड़ दो। इस प्रकार दासी बनाकर रहने की इच्छा को त्यागकर मुझे अपना लो और मेरे साथ समस्त उत्तम भोगों का उपभोग करके जीवन का आनंद लो!''

उसकी हठधर्मिता तथा महारानी सुदेष्णा की ओर से उस लंपट की अनुचित बकवाद तथा घृष्टता की अवहेलना के कारण पांचाली क्रोध से तप उठी। उसने तीक्ष्ण दृष्टि से कीचक की ओर देखकर कहा, ''सूतपुत्र, तुम अपनी कामुकता के वशीभूत होकर अपने प्राण क्यों गंवाने पर तुले हो? तू मुझे नहीं जानता, इसी कारण कामातुर होकर ऐसी निर्लज्जताभरी बातें कर रहा है। तू महारानी से पूछ ले कि मेरे पांच महाबली गंधर्व पति तत्परता से मेरी रक्षा करते हैं। वे अदृश्य रहकर भी मेरे साथ किसी के द्वारा किए जाने वाले व्यवहार को जान लेते हैं और फिर उसके अनुरूप ही दंड अथवा पुरस्कार देते रहते हैं। कोई असमर्थ पुरुष चाहे कितना ही प्रयास करे, वह पर्वत को तो मूल से नहीं उखाड़ सकता... तू किसी भी प्रलोभन से मुझे विचलित नहीं कर सकता। अतः तेरा हित इसी में हैं कि मुझे पाने की कामना का त्याग करके तत्काल मुझसे विरत हो जा, नहीं तो कुल-सहित तेरा विनाश निश्चित है।''

पांचाली कोप के साथ उसे झिड़ककर वहां से हट गई।

लेकिन दंभी कीचक तो उस समय अपने अभिमान के साथ-साथ द्रौपदी के अप्रतिम रूप की ज्वाला से धधक रहा था। वह अपनी बहन महारानी सुदेष्णा से कातर होकर बोला, ''तुम मुझ पर दया करो अनुजे! और अपने वश में रहने वाली इस रूपवती को किसी भी प्रकार मेरे भवन पर आने के लिए तैयार कर लो। यदि वह मेरे कामज्वर को शांत करने के लिए नहीं आती तो मेरा मरण निश्चय ही समझो!''

कीचक की स्थिति देखकर सुदेष्णा के मन में करुणा जाग उठी, किंतु वह उसका अहित भी नहीं चाहती थी, अत: कोमल स्वर में बोली, ''भैया, उसने तो यहां आते ही मुझे अपने पांच प्रबल गंधर्व पतियों से रक्षित होने की बात बता दी थी। मैं एक बार तो डरी किंतु वह इंद्रप्रस्थ की विख्यात महारानी द्रौपदी पांचाली की सैरंध्री रह चुकी थी, अत: उससे अपना शृंगार करवाने का मोह नहीं छोड़ सकी थी। और मैं इधर कोई एक वर्ष से देखती भी रही हूं, वह वास्तव में बड़ी ही सदाचारिणी है, अत: मैं तुम्हारे मन की बात उससे कहते भी हिचक़ती हूं। स्वयं महाराज भी इसके रूप-यौवन को देखकर मोहित हो गए थे, किंतु मैंने जब गंधर्वों की बात कही तो वह शांत हो गए और अब कभी मन में इसका चिंतन नहीं करते। मैं तो तुमको भी यही कहूंगी कि इसके प्रति अपनी आसक्ति मन से निकाल दो। इसी में कल्याण है।''

लेकिन महारानी सुदेष्णा की बात का भी कीचक पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने गर्व के साथ कहा, ''तुम तो मुझे बच्चों की तरह डराना चाहती हो। क्या तुमको मेरी लोकविख्यात शक्ति का ज्ञान नहीं! तुम पांच गंधर्वों से डरा रही हो, मैं तो अकेला ही गंधर्वों की पूरी सेना का विनाश कर सकता हूं। तुमको तो मेरी मनोकामना पूरी करने का उपाय करना ही होगा! चाहे जो हो, तुम किसी युक्त से उस सुनितंबिनी को एक बार मेरे भवन तक भेज तो दो। फिर तो वह स्वयं ही मेरा ऐश्वर्य देखकर विचलित हो जाएगी। और यदि लोभवश नहीं मानी तो भी मेरी अवहेलना करके वह बचकर तो नहीं लौट सकती...''

उसका कठोर स्वर सुनकर सुदेष्णा को विश्वास हो गया कि कीचक पूरी तरह काम के वश में है और अपने हित-अहित की भी नहीं सोचना चाहता। किंतु सुदेष्णा को भय लगता था कि गंधर्व पतियों के विषय में सैरंध्री ने सच ही कहा होगा। वह जिस प्रकार निश्चिंत होकर अपने पतियों की ओर से आत्मविश्वास से भरपूर अपने को सुखी रखती है और किसी अति मूल्यवान पदार्थ के लिए भी उसके मन में लोभ नहीं जागता, उसी से लगता है कि वह

सहज ही वश में नहीं की जा सकती। लेकिन कीचक से महारानी सुदेष्णा स्वयं भी तो भयभीत रहती थीं। उन्हें भय था कि कीचक यदि रुष्ट हो गया तो मत्स्य राज्य और राजा विराट का यह सारा वैभव ध्वस्त हो जाएगा।

सुदेष्णा को लगा कि कीचक को इस उन्माद की स्थिति में कुछ समझाने की चेष्टा करने का अर्थ अपना ही विनाश आमंत्रित करना होगा। दूसरी ओर, उसे विश्वास-सा हो गया कि पांचाली को बलात् वश में करने का प्रयास अथवा उसे किसी भी प्रकार दूषित करने की चेष्टा का अर्थ है, कीचक का विनाश। किंतु अब रानी सुदेष्णा दंभी कीचक से स्वयं भी कुपित हो गई थीं—वह बलात् मत्स्य देश की राजमहिषी को एक ऐसे कार्य में नियुक्त कर रहा था, जो किसी भी रूप में न तो प्रतिष्ठा का कारण हो सकता है, न हित का... फिर भी अपने उस दुराग्रही अग्रज को वह मना तो नहीं कर सकती।

सामने ही खड़ा कीचक बार-बार व्यग्रता से उनकी ओर ताक रहा था।

महारानी सुदेष्णा ने हारकर कहा, "तो फिर इसका एक ही उपाय है कि तुम किसी पर्व के बहाने अपने यहां कोई समारोह आयोजित करो और अपने भवन पर उत्तम मदिरा, व्यंजन आदि का प्रबंध करो। उस समय तुम्हारा संकेत मिलने पर मैं अपनी इच्छा जताकर सैरंध्री को तुम्हारे यहां से पेय आदि ले आने की आज्ञा दूंगी। तब अवसर देखकर तुम सैरंध्री को कोमलतापूर्वक समझा-बुझाकर अपने प्रति आसक्त करने का प्रयास करना। संभवत: उसके मन में तुम्हारे लिए अनुराग जाग ही उठे और वह तुम्हारे मन के अनुकूल तुमको सुख देने को तैयार हो जाए।"

महारानी की ओर से आश्वासन पाने के बाद कीचक हर्षित हो उठा। उसको लगा कि अब उसका मनोरथ पूरा होकर रहेगा। सैरंध्री को एकांत में पाने के बाद उसे वश में कर लेना कठिन नहीं होगा। ऐसी कितनी ही सुंदरियों को कीचक पहले भी वशीभूत करके उनके साथ रमण कर चुका था और अंत में वे स्वयं उसकी अनुगामिनी बनकर उल्लास के साथ सभी उत्तम भोगों का आनंद लेती रहती हैं... यह श्यामा सैरंध्री तो, कुछ भी हो, निश्चय ही उन सभी से सौगुना सुंदर है। इसके अंगों की ऐसी शोभा है... यौवन के मद से माती सैरंध्री तो नारी-रत्न है... कीचक उसको पाने के लिए कितना ही बड़ा छल कर सकता है।

कीचक के मन में यह भी संकल्प जाग उठा कि एक बार वश में आते ही वह इस मदमाती सुंदरी को गांधार अथवा सौवीर की उन्मादित कर देने वाली सुरा पिला देगा तो वह अपने-आप उमड़कर समर्पण कर देगी... नहीं तो बलपूर्वक उसे वश में करना कीचक के लिए कठिन नहीं होगा। वह राजभवन

में, विशेषकर अपनी बहन स्वयं महारानी के कक्ष में ऐसी कोई बात नहीं करना चाहता था। वास्तव में कीचक उस अपरूप युवती को प्रसन्न करके ही उसके रूप-यौवन का आनंद पाने को आतुर हो रहा था, नहीं तो क्या वह इतनी देर तक उपदेश देकर और महाबली कीचक को अपने पतियों का भय दिखाकर बची रह जाती! सुदेष्णा से एक बार फिर आग्रह करके वह अपने भवन में चला गया।

पांचाली का रूप कीचक की आंखों में ऐसा बसा था कि वह एक पल भी उसको भुला नहीं पाता था। अंत में उसने एक अवसर खोज ही निकाला और भव्य स्तर पर समारोह की तैयारी आरंभ कर ही दी। फिर उसने इस विषय में अपनी दासी से सुदेष्णा के पास संदेश भेजा, ''आज मेरे यहां गांधार और सौवीर तथा कापिश देश से लाई गई उत्तम सुरा से अतिथियों का स्वागत-सत्कार किया जाएगा। यदि महारानी स्वयं भी अपनी सखियों आदि के साथ पधारकर हमारा सत्कार स्वीकार करें तो मैं आभार मानूंगा।''

महारानी सुदेष्णा सुनकर एक बार तो मन ही मन कांप-सी उठीं। उनको लगा कि उनके पराक्रमी भाई कीचक का काल आ ही गया है। किंतु वह अब किसी भी प्रकार कीचक को इस गर्हित कार्य से रोक तो नहीं सकती थीं। अत: उन्होंने उसी दासी से कहला दिया कि मुझे स्वयं इस विषय में उत्सुकता है, अत: भ्राता से कहना कि मैं तत्पर हूं, देवता उनका मनोरथ पूरा करेंगे...

कीचक को सारी बात समझ में आ गई। वह अपनी ओर से पूरी तरह तैयार होकर उस गजगामिनी की प्रतीक्षा करने लगा, जिसके लिए उस महाबली का मन वश में नहीं रह गया था!

और सचमुच महारानी सुदेष्णा ने अपना वचन निभाया।

पहले तो वह स्वयं जाने की तैयारी करती रहीं। वह सैरंध्री को भी जता चुकी थीं, ''आज महाबली भ्राता कीचक अपने दिग्विजय के साथ अनेक राज्यों से लाई गई मदिरा तथा उत्तम भोजन से कुल का सत्कार करना चाहते हैं। मैं भी उनको वचन दे चुकी हूं। मैं उनके यहां जाकर उनकी मदिरा का स्वाद अवश्य लूंगी। कुल के लोगों की उपस्थिति में ऐसी पानगोष्ठी का आनंद ही कुछ और होता है।''

पांचाली सुनकर कुछ विस्मित ही हुई, क्योंकि आज तक उसने महारानी को किसी के यहां भी जाकर मदिरापान करते नहीं देखा था, किंतु यह सोचकर रह गई कि संभवत: अपने अग्रज और सेनापति कीचक प्रसन्न करने के लिए महारानी वहां जाना चाहती हैं। उसने रूपगर्विता महारानी सुदेष्णा की इच्छा के

अनुरूप, आज की गोष्ठी में जाने के लिए, उनके केशों का विलक्षण श्रृंगार किया।

किंतु संध्या हो जाने पर भी महारानी सुदेष्णा गोष्ठी में नहीं गईं। उन्होंने तो अपना रथ तक लौटा दिया।

कुछ अंधेरा घिर आने पर सहसा सुदेष्णा ने पांचाली को बुलवाया।

सशंक-सी पांचाली महारानी के कक्ष में पहुंची तो महारानी कुछ विचलित और क्लांत-सी पर्यंक पर अस्त-व्यस्त पड़ी थीं। पांचाली कुछ बोलती कि महारानी सुदेष्णा सामने रखे मणिजटित स्वर्णपात्र की ओर संकेत करती हुई बोलीं, ''सैरंध्री, तुम ऐसा करो। मेरे महाबली भ्राता कीचक के यहां आज भव्य आयोजन है। सहसा अस्वस्थ हो जाने के कारण मैं तो जा नहीं सकूंगी। तुम यह पात्र लेकर चली जाओ। महासेनापति कीचक से कहना कि महारानी स्वस्थ नहीं हैं, अतः उन्होंने अपनी प्यास बुझाने के लिए कोई उत्तम पेय वहीं मंगवाया है।''

पांचाली सुनते ही सशंक होकर बोली, ''क्षमा करें, देवी! आप मुझे वहां जाने की आज्ञा न दें तो मेरा ही नहीं, स्वयं सेनापति का भी कल्याण होगा। आप स्वयं देख चुकी हैं कि आप जैसी माननीया भगिनी के समक्ष भी सेनापति कीचक ने उस दिन मेरे विषय में कितनी निर्लज्जता के साथ अपनी कामातुरता प्रकट की थी। सुशोभने, मुझे वहां जाने में भय लगता है। वह मुझे देखते ही आसक्त होकर फिर कहीं मेरा अपमान न करें। मैं अपने महाबली पतियों की अवहेलना करके स्वेच्छाचारिणी अथवा व्यभिचारिणी बनकर नहीं रह सकती। आपके अधीन तो मेरे अतिरिक्त और भी सैकड़ों दासियां हैं, महारानी! कृपा करके मेरी जगह किसी और को मदिरा ले आने के लिए भेज दीजिए।''

लेकिन महारानी सुदेष्णा ने किंचित अरुचि-सी जताते हुए कहा, ''तुम तो व्यर्थ ही अग्रज कीचक के संबंध में आशंकित हो। मैंने तुमको भेजा है, यह जानने के बाद वह कभी तुम्हारे प्रति अपमानजनक व्यवहार नहीं कर सकते। तत्काल जाओ!'' सुदेष्णा ने स्वयं पात्र उठाकर पांचाली के हाथ में थमा दिया।

विवश-सी पांचाली चली तो मन ही मन देवी-देवता मनाती जा रही थी—'मेरे सतीत्व की रक्षा करो! मैं तुम लोगों के बल पर ही इस संकट में अपने को फंसाने को विवश हो रही हूं।'

कीचक की दृष्टि द्रौपदी पर पड़ी तो वह आनंद से हुलसकर उठ खड़ा हुआ। उसने आवेश से भरकर कुछ कांपते हुए स्वर में कहा, ''स्वागत है, मत्तकाशिनी! मेरे भवन में तुम जैसी वरसुंदरी का स्वागत है, आओ! दासियों ने तुम्हारे योग्य विभिन्न राज्यों से लाए हुए एक से एक सुंदर वस्त्रों तथा अलंकारों की व्यवस्था कर रखी है। आओ, और इस अशुभ दासीवेश को त्यागकर, उत्तम

स्नान के बाद सुंदर वेश धारण करके मेरे साथ रेशमी आस्तरण से सुशोभित इस दिव्य पर्यंक पर बैठकर तुम उत्तम माध्वीक सुरा का पान करो।''

''सावधान सूतपुत्र!'' पांचाली आक्रोश से कांपकर बोली, ''तुम अपनी दुश्चेष्टाएं छोड़कर महारानी की आज्ञा का पालन करो। देवी ने मुझे इसलिए भेजा है कि तुम्हारे यहां से उनके लिए उत्तम पेय ले जाकर उनकी प्यास बुझाने का उपाय करूं।''

''तुम उनकी चिंता मत करो, कल्याणी!'' कीचक ने कहा, ''उनके लिए पेय लेकर हमारी अन्य दासियां तत्काल ही चली जाएंगी। तुम तो मेरी प्यास बुझाने की अनुकंपा करो...''

कहते-कहते ही धृष्ट कीचक ने लपककर पांचाली का दाहिना हाथ पकड़ लिया।

द्रौपदी उसकी भर्त्सना करती हुई बोली, ''तुम अपने विनाश का उपाय मत करो, सूतपुत्र! यदि तुमने जरा भी धृष्टता की तो कुल के सहित तुम्हारा विनाश होकर रहेगा...''

कीचक को ऐसा भय? उसने पांचाली को पकड़कर आलिंगन में भरने की चेष्टा की, किंतु पांचाली उसको झटका देकर पीछे हटने लगी। फिर तो कीचक ने झपटकर पांचाली का उत्तरीय पकड़ लिया और उसको बलपूर्वक खींचकर अपने वश में करने का प्रयत्न करने लगा। आंचल छू जाते ही द्रौपदी के तन में मानो आग-सी लग गई। उसने प्राणभय की चिंता किए बिना सहसा ही कीचक को इतनी तेजी से धक्का दिया कि वह जड़ से उखड़े वृक्ष ही भांति दूर जा गिरा। उससे छूटते ही पांचाली वेग से भवन के बाहर निकल गई और भागती हुई राजसभा में जा पहुंची। वह राजा की शरण लेकर अपनी रक्षा करना चाहती थी।

उस समय भी सभा में राजा विराट के साथ पासे फेंकते कंक के वेश में स्वयं युधिष्ठिर बैठे थे। पांचाली को यह देखकर धीरज हुआ कि राजसभा में अन्य सभासदों के बीच स्वयं भीमसेन भी बैठे थे। वह रक्षा के लिए गुहार मचाती सभा में पहुंची ही थी कि उन्मत्त राक्षस की भांति उसका पीछा करता कीचक भी आ पहुंचा। उसने सारे समाज, सभासदों तथा स्वयं राजा विराट की अवहेलना करके झपटकर पांचाली के लंबे केशों को पकड़ लिया और राजा के सामने ही उसके सिर पर लात से प्रहार किया। किंतु इसके साथ ही आवेश में अपने को ही न संभाल पाने के कारण वह स्वयं झटके से इस प्रकार दूर जा गिरा मानो किसी अदृश्य शक्ति ने उसको उठाकर फेंक दिया हो।

कीचक के पदाघात से द्रौपदी मुंह के बल गिर पड़ी और उसके मुंह से

रक्त बहने लगा। वह राजा के सामने ही कांपती हुई क्रंदन करने लगी तथा दुहाई देने लगी। ''इस महापापी से मेरी लाज बचाइए, महाराज! आपका कल्याण हो।''

सभा स्तंभित-सी होकर कीचक का यह अनाचार देख रही थी। पांचाली की दुर्दशा देखकर कितने ही लोग कीचक की भर्त्सना करने लगे, ''महाबली सूतपुत्र, अपने बंधु-बांधवों से हीन, महारानी की शरण में सेवाकर्म करने वाली एक अबला के साथ तुमने घोर अनाचार किया है। तुम्हारा यह व्यवहार कदापि उचित नहीं!''

पांचाली का यह अपमान देखकर भीम की भौंहें सहसा ही टेढ़ी हो गईं। सारा शरीर पसीने से भीग गया। आवेश से उनकी आंखें लाल हो उठीं। वे कोप के साथ आग बरसाती आंखों से सूतपुत्र की ओर देखने लगे। दांत पीसते हुए वह झपटकर कीचक का वध कर देते, किंतु युधिष्ठिर उनकी मुद्रा देखकर उस अनर्थकारी क्षण को टालने का उपाय सोचने लगे। उस समय भीम भी आक्रोश से भरे दूर एक वृक्ष की ओर आंखें गड़ाए मानो अपने को वश में करने का निष्फल-सा प्रयास कर रहे थे। युधिष्ठिर को लगा कि अब भीम कीचक को पकड़कर उसका वध कर ही देंगे तो उनका अंगूठा धीरे से दबाकर शांत रहने का संकेत किया और प्रकट स्वर में में बोले, ''तुमको क्या हो रहा है, बल्लव? तुम क्या ईधन के लिए हरे-भरे वृक्ष को ही नष्ट कर देने पर तुले हो? तुम्हें ईधन ही चाहिए तो जाकर किसी सूखे वृक्ष से काष्ठ ले लो। जिस हरे-भरे वृक्ष की छाया में आश्रय लेकर मनुष्य रहता हो, उसके उपकारों को याद करके उसकी तो रक्षा ही करनी चाहिए...''

अग्रज का संकेत समझकर भीम ने अपने क्रोध को किसी प्रकार नियंत्रित कर लिया।

किंतु पांचाली को और खीझ-सी आई। वह विकल होकर द्वार पर ही खड़ी क्रंदन करने लगी। अपने पतियों की ओर देखती हुई पांचाली राजा विराट से आग्रह करने लगी, ''महाराज, मैंने कोई अपराध नहीं किया था, तब भी स्वयं आपकी आंखों के समक्ष सूतपुत्र कीचक ने मुझ पर पांवों से प्रहार किया। मैं क्रीत दासी नहीं हूं, फिर भी मेरा ऐसा अपमान किया जा रहा है! आप ही प्रजा के पालक और पिता के समान हैं, आप इसका न्याय करें।''

द्रौपदी करुण स्वर में क्रंदन करती रही, फिर भी राजा विराट असमर्थ-से बैठे रहे। वह अपने महाबली सेनापति के विरुद्ध कोई भी अनुशासन अथवा दंड की व्यवस्था करने का साहस नहीं कर पा रहे थे।

पांचाली ने सब कुछ देखकर अत्यंत व्यथा-भरे स्वर में कहा, ''महाराज,

इस सभा में यदि अनाचारी को दंड नहीं दिया जाता तो प्रजा को क्या विश्वास रह जाएगा? जो राजा न्याय नहीं करते, उनकी राजसभा में बैठने वाले विद्वान सभासदों को भी अधर्मी कहा जाता है...''

फिर वह कुपित होकर विलाप करने लगी, ''मैं अनाथ नहीं हूं, मेरे पांचों महाबली गंधर्व पति तो औरों को भी शरण देकर उनका पालन करते हैं, किंतु आज वे न जाने किस कारण अपनी प्रिया, मुझ जैसी माननीया पत्नी को इस प्रकार अनाथ दासीपुत्री की भांति सूतपुत्र के पदप्रहार से पीड़ित होती देखकर भी विचलित नहीं होते। वे सर्वज्ञ महारथी न जाने किस दोष के वशीभूत होकर वेश बदले कायरों की भांति अपने इस मानिनी पत्नी का अपमान सह रहे हैं! उनका महाबल जैसे नपुंसक हो गया हो। अपनी पत्नी को एक दुरात्मा से मार खाती देखकर भी वे न जाने क्यों शांत हैं...''

राजा विराट के अन्याय की निर्भीकता से भर्त्सना करने वाली इस वरांगना युवती के साहस और धर्मज्ञान् को देखकर सभासद उसकी प्रशंसा करने लगे। सामने खड़ी सैरंध्री के अंगों में विस्मयकारी शुभ लक्षणों की चर्चा करते हुए सभासद परस्पर उसके अनिंद्य रूप तथा उन लक्षणों की बात करने लगे, जिनसे लगता था कि वह सदाचारिणी युवती निश्चय ही कहीं की सम्राज्ञी होने योग्य है। न जाने किन देवताओं के अभिशाप से उसे ऐसा हीन कर्म करना पड़ रहा है। देवांगनाओं के समान शोभासंपन्न एवं साक्षात इंद्राणी के समान सौभाग्य-शालिनी, शुभांगी, कुंदपुष्पों की शोभा को भी लज्जित कर देने वाली मधुर मुसकान से संपन्न यह युवती कदापि पादप्रहार के योग्य नहीं है। सेनापति कीचक ने निश्चय ही उस पर प्रहार करके घोर अन्याय किया है...

सभी सभासद मंत्रमुग्ध-से पांचाली के एक-एक अंग की शोभा की सराहना करते हुए कीचक के कृत्य की भर्त्सना कर रहे थे। स्वयं युधिष्ठिर भी कीचक द्वारा लोकपूजिता मानिनी पांचाली का अपमान किए जाने से क्षुब्ध थे। क्रोध को बरबस रोकने के कारण उनका मस्तक पसीने से भीग गया था।

राजा विराट ने सभासदों की ओर से भी भर्त्सना होती देखकर केवल इतना ही कहा, ''सैरंध्री, हमको तो इसका ज्ञान नहीं कि कीचक और तुम्हारे बीच विवाद किस बात का था। अस्तु, समय आने पर इसका उचित विवेचन किया जाएगा।''

सुंदरी पांचाली लंबी सांस लेकर फिर कुछ कहने को उद्यत-सी नतशीश खड़ी थी। किंतु उसने आंखें उठाकर सहसा ऊपर देखा तो समझ लिया कि ज्येष्ठ पांडव महाराज युधिष्ठिर कुछ कहना चाहते हैं, अतः वह सिर झुकाए चुप खड़ी रह गई। कंक के रूप में विराट के अनन्य प्रिय सखा होने के कारण

युधिष्ठिर उस समय तक सभासदों एवं प्रजा में भी मान्य हो गए थे। पुर तथा जनपद में भी वे लोकप्रिय हो चुके थे। उनके आचरण से सभी प्रभावित थे। इसी कारण वे न्याय के समय भी राजा को अपनी ओर से परामर्श देते रहते थे। इस समय राजा विराट को संकट में पड़ा देखकर वह आगे आए।

उनको भय था कि पंचाल की राजदुहिता द्रौपदी सभी शास्त्रों में पारंगत है और वह स्वयं उनके इतने विशाल साम्राज्य के अनेक ऐसे भार संभालती थी जो किसी स्त्री तो दूर, पुरुष के लिए भी असंभव-प्राय थे। यदि कोप से पांचाली ने बिफरकर राजा विराट की भर्त्सना करना आरंभ कर दिया तो बड़ी विकट स्थिति होगी। अतः उन्होंने भीम की तरह ही पांचाली को भी भी सांकेतिक भाषा में स्थिति का ज्ञान कराने के लिए कहा, ''अरे सुशोभना सैरंध्री, तू अब महारानी सुदेष्णा के भवन में चली जा! पति का अनुसरण करने वाली पत्नियां तो हर प्रकार का अपमान सहकर भी अपने पति की अनुगत ही रहती हैं। तुम तो अपनी वार्ता से विदुषी और व्रत पर अटल प्रतीत होती हो। अपने गुणों तथा दिव्य रूपसंपदा के कारण लोक का मन जीत लेने वाली सुंदरी, तुमको स्वयं ही सोचना चाहिए कि तुम्हारे पति कहीं किसी प्रतिज्ञा से तो नहीं बंधे हैं। वरानने, तुम स्मरण करने का प्रयास करो कि कहीं तुम्हारे बलवान गंधर्व पतियों ने समय-संबंधी किसी प्रतिबंध को तो नहीं स्वीकार किया है। मुझे तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि तुम जैसी प्रिया अपने जिन पतियों के पराक्रम तथा धर्म का ऐसा विवरण देती है, वे अवश्य किसी विशेष वचन के बंधन में पड़कर ही तुम्हारे मान-अपमान को देखकर भी प्रकट नहीं हो रहे हैं। यही लगता है कि तुम्हारे सूर्य के समान तेजस्वी पति गंधर्वगण निश्चय ही अभी क्रोध करने का उचित अवसर न होने के कारण ही ऐसी स्थिति में भी तुम्हारी रक्षा करने के लिए नहीं प्रकट होते...''

बड़ी-बड़ी काली आंखों से उनकी ओर निहारती पांचाली चुप सुनती रही।

कंक ने फिर कहा, ''सुमध्यमे, तुम तो जानती ही होगी कि क्षमा का इस लोक में और परलोक में भी बड़ा महत्त्व है। और मेरे विचार से तो क्षमा ही सत्य है, धर्म है, दान है तथा क्षमा ही महान तप है। देवी, काल प्रबल है—जिनके दो अंश होते हैं—उत्तरायण तथा दक्षिणायन। इसके बारह अंग हैं—बारह मास; चौबीस पर्व हैं—चौबीस पक्ष; और इस महाचक्र के तीन सौ साठ अरे हैं—वर्ष के दिन। और, भाविनी, यदि इस चक्र को पूरा होने में मात्र एक ही मास रह गया हो तो कौन ऐसा अधीर होगा कि क्षमा का आश्रय लेकर चक्र के पूरा होने की प्रतीक्षा न करे? तुम्हारे गंधर्वों को अवश्य ऐसा ही कोई

बंधन रोकता होगा। तुमको धैर्यपूर्वक अपने पतियों का इसी प्रकार अनुगमन करती रहना चाहिए। यही कल्याण का मार्ग है।''

इतना सुनकर भी पांचाली न जाने किस आग्रहवश वहीं खड़ी रही तो राजा युधिष्ठिर ने मानो अपने मधुर व्यवहार को ढकने के लिए जरा कठोर होकर कहा, ''तू अपने महाबली गंधर्व पतियों का आख्यान तो बड़े गर्व से सुनाती रहती है, सुशोभना सैरंध्री, फिर भी तू इस प्रकार राजसभा में अड़कर खड़ी है! स्वच्छंद जीविका से जीवन-यापन करने वाली नटी की भांति राजसभा में आकर तू इन माननीय महाराजकुमारों की क्रीड़ा में विघ्न डाल रही है। तुम अब तो निश्चिंत होकर महारानी के आश्रय में जाओ, मन में विश्वास रखो कि तुम जिन महाबली गंधर्व पतियों की इच्छा से उनके लिए इतना मान-अपमान सहती हो, वे निश्चय ही सब कुछ देखते होंगे। तो फिर जो भी तुम्हारा अपमान कर रहा है, वह अपने जीवन के लिए अमंगल के बीज ही तो बो रहा है। जिसने तुम्हारा अपमान किया, क्या तुम सोचती हो कि तुम्हारे तेजस्वी पति उसको ऐसे ही जीवित रहने देंगे? दो दिन बाद ही सही, उन अपकार करने वालों को दंड तो मिलकर ही रहेगा।''

ज्येष्ठ पांडव ने पहली बार 'नटी' कहकर पांचाली से बात की थी। पांचाली के कमलदल के समान किंचित लालिमा से युक्त अधरों पर ज्येष्ठ पांडव से पहली बार 'नटी' कहकर मिली मीठी झिटकार से हँसी की रेखा तैर गई। वह तमककर सीधी खड़ी हो गई तो उसकी सुंदर कटि में लहर-सी उठी जो उसके समूचे तन में एक आकर्षक थिरकन-सी दौड़ा गई। वह पति की भांति ही रहस्यमय भाषा में बोली, ''मेरे जिन महाबली गंधर्व पतियों के ज्येष्ठ भ्राता महाव्यसनी हैं और आपकी ही भांति दिन-रात द्यूतक्रीड़ा से मन बहलाते रहते हैं, उन महान् गंधर्वों के प्रति मैं मन-वचन-कर्म से सदा ही सदाचारिणी रहती हूं, मेरा अपकार करने वाले दुरात्मा उन महाबली गंधर्वों के बध्य पशु हैं...''

इतना कहकर सुष्ठु अंगों वाली पांचाली मान के साथ क्रोध से आंखें लाल किए धर्मराज की आज्ञा मानकर फिर महारानी सुदेष्णा के प्रासाद में चली गईं।

चौदह

सुदेष्णा उसे कीचक के भवन में भेजने के बाद से ही अत्यंत भीरुता के साथ उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। मन ही मन वह भयभीत थीं कि कहीं वास्तव में कीचक के अपराध से कुपित होकर सैरंध्री के गंधर्व पति कीचक को भीषण

दंड न दें। उनको यह तो ज्ञात था ही कि पांचाली को अकेली पाने के बाद आज कामातुर कीचक उसको ऐसे ही नहीं आने देगा।

किंतु कीचक की कामना नहीं पूरी हो सकी, इसका आभास इस बीच रानी सुदेष्णा को अपनी दासियों तथा चरियों से मिल चुका था। उनको पता लग गया था कि पांचाली क्रंदन करती हुई भागी-भागी राजसभा में गई है और उसका पीछा करता कीचक भी वहां पहुंचकर घोर उद्दंड व्यवहार कर बैठा था। उसने राजसभा में महाराज की उपेक्षा करके पांचाली पर पांव से प्रहार किया था, जिसके कारण सभासद भी उसकी भर्त्सना कर रहे थे। किंतु महाराज उस संकट से कैसे पार उतरेंगे, महारानी यह नहीं समझ पा रही थीं।

अचानक आवेश और क्षोभ के साथ रोती हुई पांचाली आ पहुंची। वह उस समय घोर ग्लानि से व्यथित थी। उसका वह रूप भी कितना अद्‌भुत लग रहा था! स्त्री होते हुए भी इस समय सुदेष्णा को पांचाली का यह आहत, क्षुब्ध सौंदर्य अत्यंत मोहक लग रहा था। संभवत: कीचक के यहां आज सैरंध्री पर जो बीतने वाली थी, उसकी कल्पना से विचलित होकर महारानी सुदेष्णा निरंतर अपनी विलक्षण सैरंध्री के उस रूप-यौवन के विषय में ही सोच रही थीं, जो कीचक जैसे महाबलशाली योद्धा के लिए वध का कारण भी बन सकता था। अब पांचाली को अपने यहां नियुक्त करके रानी सुदेष्णा मन ही मन पश्चात्ताप कर रही थीं। वह सोच नहीं पा रही थीं कि किस प्रकार इस विष जैसी घोर सुंदरी से अपने महाराज और भाइयों की रक्षा करें।

कीचक के वश से छूटी हुई पांचाली घोर आवेश से दहक रही थी। वह इस अवस्था में भी कितनी रूपवती लगती थी! सुदेष्णा अवाक् होकर उसकी ओर निहारती रह गईं। आक्रोश से फुफकारती नागिन की भांति उच्छ्‌वसित पांचाली के उन्नत, सटे हुए स्तन कांप रहे थे। उसकी सांस मानो अंतर में समा ही नहीं रही थी। वह ज्वाला बरसाती आंखों से इधर-उधर निहार रही थी, मानो वहां जो कुछ भी हो, उसे भस्म कर देगी।

रानी सुदेष्णा ने उसे प्रसन्न करने के लिए अपनी ओर से निकट जाकर मृदु स्वर में पूछा, ''भद्रे! क्या बात है? तुम इस प्रकार रो क्यों रही हो? आज किसका जीवन समाप्त हो गया कि उसने तुम पर प्रहार किया है? मैं तो कितनी देर से प्रतीक्षा करती रही कि तुम स्वादिष्ट पेय लेकर मेरी पिपासा शांत करने को आती ही होंगी, किंतु तुम तो न जाने किस पर इतनी कुपित हो कि तुम्हारी काली पुतलियों वाले नेत्रों से झरझर बहते आंसू रुकने का नाम ही नहीं लेते। तुम्हारे ये बिंबाफल जैसे लाल मोहक अधर किस कारण इस प्रकार संतप्त हो रहे हैं? तुमको किसने पीड़ा पहुंचाई है? मेरी सैरंध्री जानकर भी किसने तुम्हारे प्रति अपराध किया है?''

पांचाली ने निर्भीक स्वर में कुपित होकर कहा, ''महारानी, अब इस प्रकार अनजान बनकर क्यों मेरा और भी अपमान करती हो? तुम्हारे कहने पर विवश होकर मैं गांधार की सुरा लेने सेनापति कीचक के यहां गई थी। तब मेरी आशंका के अनुसार ही सूतपुत्र ने मुझे बलात् वश में करना चाहा। मैं किसी प्रकार वहां से बच निकलती तो वह मेरा पीछा करते हुए राजसभा में आ पहुंचा और मुझे केश पकड़कर पांव से मेरे सिर पर प्रहार किया। मुझे कोई अनाथ स्त्री अथवा गणिका समझकर कीचक ने मेरे साथ ऐसा नीच व्यवहार किया, किंतु महाराज ने तो अपनी आंखों से देखकर भी उनको कोई दंड नहीं दिया...''

सुदेष्णा ने उसे सांत्वना देने के लिए कहा, ''सुकेशिनी, यदि सेनापति कीचक ने ऐसा किया तो निश्चय ही अनुचित किया। काम से उन्मत्त होकर तुम जैसी मानिनी देवी का अपमान करके उन्होंने मुझे भी अपमानित किया है। यदि तुम कहो तो मैं उनको कठोर दंड दूं...''

पांचाली ने अमर्ष के साथ विहँसकर कहा, ''तुमको तो अब अपने अत्याचारी भाई के लिए जो दान-पुण्य करना हो, वह करना चाहिए, महारानी! मैं यह तो नहीं जानती कि मेरे प्रति लोक का व्यवहार एकाग्र होकर देखते रहने वाले मेरे पराक्रमी गंधर्व इस सूतपुत्र को अब तक किस कारण क्षमा करते रहे हैं! किंतु अब उसकी रक्षा देवता भी नहीं कर सकते...यह अटल है!''

सैरंध्री को सहसा कीचक के वध का व्रत लेते देखकर रानी सुदेष्णा कांप उठीं। वह कातर होकर सैरंध्री की मनुहार करने लगीं। उनके साथ ही अंतःपुर की और भी अनेक रानियां तथा सुदेष्णा की सखियां पाचांली को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगीं।

सब उससे क्रोध छोड़कर सुख से रहने का अनुनय-विनय करती रह गईं, किंतु पांचाली का क्रोध नहीं शांत हुआ। वह न तो स्नान करती, न मुंह में अन्न ही डालती। अपने रक्त से भीगे मुखमंडल तक को उसने धोकर साफ नहीं किया। अमर्ष से भरकर रोती हुई वह धरती पर ही लोट-लोटकर मन ही मन कीचक के सर्वनाश की कामना करती रही।

अंत में कोई संकल्प-सा करके पांचाली ने सहसा अपने-आप उठकर शौच-स्नान किया और शुभ्र वस्त्र धारण कर लिए। फिर भी वह चुप बैठी मन ही मन अपने अपराधी को दंडित करने का उपाय सोचती रही।

रात का पहला प्रहर बीत जाने पर पांचाली अपने महाबली पति भीम से मिलने का निश्चय करके चुपचाप पाकशाला के निकट ही बने उनके सुंदर आवास में जा पहुंची। वह मन ही मन ग्लानि से भरकर भीम की आलोचना-सी कर थी कि उस सूतपुत्र ने मेरा अपमान किया और तब भी अपने बल के अभिमान से उन्मत्त होकर यह अपने प्रासाद में निश्चिंत होकर सो रहे हैं...उस

लंपट दंभी के जीवित रहते भी ये कैसे निश्चिंत होकर सो रहे हैं...?

भीम के आवास में पहुंचकर पांचाली ने देखा कि स्वभाव के अनुसार भीमसेन सचमुच उस समय सिंह की भांति गहन निद्रा में लीन थे। पांचाली ने पल-भर सोचा, फिर उसने बढ़कर अपने बलशाली पति को आलिंगन में भर लिया और इस प्रकार लिपट गई जैसे नदी के तट पर फैली लता किसी महाशालवृक्ष से लिपट जाती है। पांचाली ने अपने पति को आलिंगन में भरकर दोनों भुजाओं से उनको भींच लिया। उसके स्पर्श से आतुर होकर भीम जाग उठे तो पांचाली कातर होकर वीणा की मृदु गांधार की-सी मधुर झंकृति से उस आवास को निनादित करती हुई बोली, ''मध्यम पांडव, तुमको ऐसा अनाचार आंखों से देखकर भी निद्रा कैसे आ गई? तुम जैसा पराक्रमी तो अपनी पत्नी को किसी अनाचारी के स्पर्श से दूषित होते देखकर इस प्रकार तटस्थ नहीं रह सकता। आज तुम्हें क्या हो गया है? वह पापी अब भी जीवित है, यह तो घोर अपमान की बात है।''

भीम ने उठकर अपनी अतुल रूपयौवनशालिनी प्रिया की कांतिहीन और श्रीहत-सी काया देखी तो विचलित होकर बोले, ''यह तुमको क्या हो गया, देवी! तुम्हारे कमनीय अंगों की शोभा को तो मानो ग्रहण-सा लग गया हो। हमारे जीवित रहते ही तुमको ऐसा क्या हो रहा है कि तुम इस प्रकार श्रीहीन होकर आई हो? तुम अपने मन को चिंता से मुक्त करो! तुम मन में जो भी संकल्प करके यहां आई हो, उसे पूरे विश्वास के साथ मुझे बता दो। मैं तुम्हारी पीड़ा का निवारण करने का उपाय अवश्य करूंगा। अपनी कामना बताकर तुम शीघ्र ही अपने आवास में चली जाओ, जिससे तुम्हारे यहां आने के विषय में किसी को आभास तक न होने पाए। मैं अपने-आप सब कुछ ठीक कर लूंगा।''

कातर स्वर में पांचाली बोली, ''जिस युवती के पति परमधैर्यवान राजा युधिष्ठिर हों, वह शोक से मुक्त होकर रहे, भला यह कहां संभव है!''

भीम ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, ''अब तुम धर्मराज से कुपित होकर समय मत नष्ट करो, प्रिये। इस समय जो भी अभीष्ट हो, वही कहो।''

पांचाली तो अपनी व्यथा सुनाने के लिए आतुर ही थी। वह करुण स्वर में बोली, ''आर्यपुत्र, पांचालराज द्रुपद जैसे माननीय राजा की पुत्री होकर भी मुझे कितना अपमान सहना पड़ा है, क्या तुम नहीं जानते! कौन जाने विधाता ने क्या सोचकर मुझे यह रूप-यौवन दिया है कि इसके कारण सूर्य के समान तेजस्वी पांडवों की प्रिया होने पर भी मुझे निरंतर अपमान सहना पड़ता है। मुझ एकवस्त्रा रजस्वला को उस दिन सभा में बरबस खींचकर लाया गया... महानग्ना वेश्या की भांति निर्वसन करके अपमानित करने की कुचेष्टा की गई।

भरी सभा में मुझे गणिका कहकर अन्य पति चुन लेने को कहा गया। यह सब मेरे पूज्य श्वसुर तथा कुल के श्रेष्ठ पुरुषों के सामने किया गया था...फिर काम्यकवन में दुरात्मा जयद्रथ ने कामभाव से दूषित आंखों से मेरे रूप को देखा और निर्भय होकर मेरा स्पर्श भी किया। वह अपमान आज भी नहीं भूली हूं मैं। वनवास के दिनों में ही और भी तो कितनी ही बार जटासुर जैसे अनाचारी राक्षसों ने मुझे अपमानित करने का प्रयास किया। उनसे भी तुमने ही मेरी रक्षा की थी! और अब इस घोर समय में, जबकि हमारे अज्ञातवास की अवधि पूरी ही होने को है, दुष्ट ग्रह की भांति सहसा ही मेरे पीछे राजा विराट का साला और सेनापति कीचक पड़ गया है। वह कितनी ही बार निर्लज्ज की भांति बलात् मेरा उपभोग करने की चेष्टा कर चुका है। उसके भय से राजा विराट तक अधर्म पर उतर आए हैं, उसे किसी प्रकार का दंड नहीं दिया...और कीचक की अनुजा, स्वयं राजा विराट की रूपगर्विता पत्नी महारानी सुदेष्णा भी अपने भाई के आग्रह पर विवश होकर उसकी अभिसंधि में साथ देने लगी। उसी के कहने पर मैं कीचक के यहां पेय लाने को गई थी, तब कीचक ने बलात् मेरा उपभोग करना चाहा। मैं किसी प्रकार भागकर शरण लेने के लिए राजसभा तक आई, किंतु वहां जो भी हुआ, तुम उसे देख ही रहे थे...अपने धर्मराज ने जो उपदेश दिया, उसे भी सुन चुके हो। किंतु अब मुझसे यह अपमान नहीं सहा जाता। वह सूतपुत्र कीचक जहां भी अवसर देखता है, मुझे घेरकर अपनी भार्या बनने के लिए प्रलोभन देने लगता है। इतना ही नहीं, किसी के वश में न होने के कारण वह निरंकुश अनाचारी मुझे बलपूर्वक भोगना चाहता है। मैं अब तक तो किसी प्रकार बचती ही रही, किंतु क्या हमारे बलवान गंधर्वों को तभी चेतना आएगी, जब उनकी यज्ञ से उत्पन्न इस माननीया पत्नी को वह पापी अपने वश में करके दूषित ही कर देगा!''

''नहीं!'' भीम ने सहसा गरजकर कहा, ''अपनी मर्यादा के विरुद्ध ऐसी घृणित कल्पनाएं करके तुम उचित नहीं कर रही हो, देवी। तुम निश्चिंत रहो। उस अनाचारी सूतपुत्र को अब महाकाल का निमंत्रण आ ही गया है। मैं उसका निर्णय कर दूंगा!''

भीमकर्मा भीमसेन पर पांचाली को पूरा भरोसा था कि वह किसी न किसी प्रकार लंपट कीचक से उसकी रक्षा करेंगे। किंतु सहसा धर्मराज की याद आ जाने पर वह बोली, ''मैं पूजनीय ज्येष्ठ पांडव के प्रति जो कहती हूं, उसे तुम अन्यथा मत लेना, आर्यपुत्र! मैं जानती हूं कि आज लोक में हमारे महाराज युधिष्ठिर धर्म के प्रतीक माने जाते हैं। हमको भी सावधान रहकर ऐसा ही करना होगा कि अवधि पूरी होने के पहले हमें कोई पहचान न ले, नहीं तो महाराज की आज्ञा का उल्लंघन होगा और हमारे कृत्य से उनकी प्रतिज्ञा के

अनुसार, फिर बारह वर्ष का भयानक वनवास भुगतना होगा...''

''कुछ देर सोचती रहकर पांचाली ही फिर बोली, ''उस नीच को प्रत्यक्ष प्रकट होकर तो दंड दिया नहीं जा सकता...वैसे मैं तुम्हें सत्य बताती हूं कि उस दंभी सूतपुत्र को अपने बल पर बड़ा अभिमान है। स्वयं राजा और महारानी सुदेष्णा उससे डरते हैं, इसी कारण निरंकुश होकर कीचक हर किसी का अपमान करता रहता है। एक मैं ही नहीं, उसकी कुटिल दृष्टि में जो भी कमनीय स्त्री पड़ जाती है, वह उसी का शीलभंग करके तृप्त होता है। वह वास्तव में ऐसा नरपशु है जो मेरे महाबली गंधर्व पतियों के लिए आखेट का उत्तम मेध्य मृग है! पांडवों के जीवित रहते स्त्री जाति के साथ बलात्कार करने वाला और अकर्मण्य रहकर प्रजा का धन छीनने वाला यह पापी पांडवों की कीर्ति पर कलंक ही तो है। वह मुझे किसी भी प्रकार नहीं छोड़ना चाहता। मैंने हर प्रकार से उसको समझाया। उसे भय भी दिखाया, किंतु वह तो अपने अभिमान में स्वयं को एक अथवा पांच तो क्या, पांच करोड़ गंधर्वों को भी परास्त कर देने में समर्थ मानता है। वह छल-बल का आश्रय लेकर मेरा शीलभंग करने पर उतारू है। अब तो उसने मेरे ऊपर हाथ उठाना भी आरंभ कर दिया है। वह मुझे आतंकित करके वश में करना चाहता है। उस दिन राजसभा में उसने मुझ पर पांव से भी प्रहार किया, अब तो अकेली पा जाने पर न जाने क्या करेगा। मैं तुम्हारी शपथ लेकर कहती हूं, उस कामोन्मत्त पापी के अधीन होकर तो मैं एक दिन भी जीवित नहीं रहना चाहूंगी। यदि तुम महाराज की भांति अब भी अज्ञातवास की अवधि पूरी होने की राह देखोगे तो मेरे लिए एक ही मार्ग है—आत्मघात! और तो किसी भी प्रकार कीचक से मेरी रक्षा संभव नहीं दीखती...'' पांचाली असह्य व्यथा से भरकर रोने लगी।

भीम अपनी प्रिया को बड़ी देर तक सांत्वना देते रहे। फिर उन्होंने सोचकर युक्ति निश्चित की। उन्होंने आलिंगन में भरकर पांचाली से कहा, ''प्रिये, तुम मात्र एक दिन की प्रतीक्षा करो, बस...''

आर्त पांचाली ने कहा, ''लेकिन इतना जान लो कि यदि कीचक के जीते-जी फिर सूर्योदय हो जाएगा तो तुम अपनी पांचाली को जीवित नहीं पाओगे। उस नीच कामांध के वश में पड़ने से पहले ही मैं विष पी लूंगी।''

भीम ने उसको सांत्वना देते हुए कहा, ''तुम जो चाहती हो, वैसा ही होगा। तुम स्वयं ही जाकर प्रदोषकाल में आगामी रात्रि के समय उसे अभिसार के लिए मत्स्य देश की विशाल नृत्यशाला में आमंत्रित करो। दिन-भर वहां नृत्य सीखने वालों की चहल-पहल रहती है, किंतु रात्रिवेला में वह सुनसान रहता है। तुम कीचक से कहो कि वहां गर्भगृह के गुप्त प्रकोष्ठ में जो विशाल पर्यंक है, वह अभिसार के लिए उत्तम है। उसको समझा देना कि ''मेरे गंधर्व पतियों ने

नृत्यशाला का वह गुप्त प्रकोष्ठ नहीं देखा है, अतः उनको तुम्हारे अभिसार का भेद नहीं मालूम हो सकेगा। इस प्रकार तुम उनके कोप से बचे रहकर कामवेदना को मिटाने के लिए जब भी चाहो, वहीं जाकर स्वच्छंद आनंद ले सकोगे!' वैसे तो तुम्हारे मुख से मनोकामना पूरी होने का आश्वासन पाते ही कीचक विक्षिप्त हो जाएगा। उसको किसी प्रकार की शंका और तर्क-वितर्क की सुधि ही नहीं रह जाएगी। लोक की अन्यतम सुंदरी से अभिसार का आमंत्रण पाने के बाद तो स्वयं तुम्हारे गंधर्व पति भी सुध-बुध खो बैठते हैं, कामांगिनी!''

भीम के चिढ़ाने पर पांचाली पहली बार उन्मुक्त हास बिखराकर लजाती हुई पति से लिपटकर बड़ी देर तक अपनी देह को धन्य-सी करती रही। फिर भीम ने उसको चुपके से अपने कक्ष से बाहर निकालकर राजभवन में पहुंचा दिया।

पांचाली रात में नृत्यशाला के गुप्त कक्ष के एकांत कोने में छिपी बैठी थी। कीचक अपनी उस विश्वमोहिनी प्रियतमा से अभिसार के लोभ में खूब शृंगार करके आया, जिसे पाने के लिए वह इस समय पागल हो रहा था। पांचाली अंधेरे में छिपी देख रही थी। मदिरा के आवेश में कीचक डगमग होता अपने वचन के अनुसार, दबेपांव नृत्यशाला के उसी गुप्त प्रकोष्ठ में आ पहुंचा, जहां विशाल पर्यंक पर आज पहली बार उसके दिए हुए दिव्य अंगराग से सुरभित अपनी देह पर, स्वयं कीचक द्वारा चुपचाप पहुंचाए गए मूल्यवान वस्त्र तथा मणियों से जगमग करते आभूषण आदि से अपनी कमनीय देह को सुसज्जित करके उसकी प्रियतमा सैरंध्री समर्पित होने को तत्पर बैठी होगी! कीचक को हर्ष इस बात पर था कि अंत तक उस सुंदरी ने कीचक के प्रेम से विवश होकर अपने-आप उसका प्रणय स्वीकार कर लिया। कीचक का अनुभव तो यही था कि अपने-आप समर्पित होने वाली सुंदरियां वास्तव में अनुपम रमण-सुख प्रदान करती हैं। फिर यौवनमद से इठलाती सैरंध्री तो मानो देवताओं की ओर से मिले वरदान के समान ही आनंदायिनी होगी।

कीचक को पांचाली ने प्रवेश करते देखा और कुछ देर बाद ही कामोत्तेजना से अवरुद्ध-से उसके भर्राए कंठ से प्रणय-निवेदन सुनाई पड़ा, ''सुभ्रू, विलासिनी, लो! मैं आज तुम्हारे लिए आतुर होकर अपने विशाल भवन की, असंख्य सुशोभना दासियों और समस्त प्रियाओं को, साथ ही अपने अपार ऐश्वर्य को तुम पर निछावर करता हूं। मत्स्य देश का यह महाबली कीचक तुमसे मिलने इस एकांत में चला आया है। तुम शपथ ले लो, इस विषय में मैंने अपनी अनुजा तक को नहीं बताया है कि आज की रात मेरी वही चिरकाल से

प्रिय सैरंध्री मेरी भार्या बनकर मेरा मनोरथ पूरा करने के लिए नृत्यशाला में मेरी प्रतीक्षा कर रही है...मेरे अंत:पुर की युवतियां आज आसक्त होकर बार-बार कहती थीं कि 'आपके समान सुवेशी तथा सुदर्शन पुरुष और कौन है, हम तो आपके मृदु उन्मद स्पर्शों की कामना से तरसती ही रहती हैं....' ''

उत्तर में सहसा भीम का भीम स्वर सुनाई पड़ा, ''तो हे सुदर्शन पुरुष, आओ... कामधर्म के विलक्षण ज्ञाता कीचक, तुमको ऐसा कोमल स्पर्श निश्चय ही कभी नहीं मिला होगा। आज तुम विलक्षण आनंद लेते-लेते ही स्वर्ग जाओ!''

वह भारी स्वर सुनकर चकित कीचक कुछ सोच-समझ पाता इसके पहले ही भीम ने एक ही छलांग में झपटकर कीचक को दबोच लिया और उसको उठाकर भीषण वेग से पत्थर की दीवार पर दे मारा। पीड़ा से चिंघाड़कर कीचक पल-भर को तो सहमा-सा रहा, फिर वह दंभी महाबली अपने को संभालकर भीम से जूझने लगा। भीम अतुल पराक्रमी थे तथा उनके लिए कीचक ऐसा भयानक मल्ल नहीं हो सकता कि उन्हें पीड़ा पहुंचा सके। पांचाली को अपने पराक्रमी मध्यम पांडव पर अडिग विश्वास था, किंतु जिस प्रकार कीचक अचानक ही संभलकर उन महाबली योद्धा से टकरा गया था, वह देखकर पांचाली चकित रह गई। अनजाने ही वह उठकर कोने से बाहर निकल आई और दोनों महाकाय योद्धाओं का तुमुल बाहुयुद्ध देखने लगी।

कीचक उसको देखते ही पागल होकर भीम पर प्रबल आघात करने लगा। उसने भीम को अपनी ओर से खींचने का प्रबल प्रयास किया। भीम वैसे तो अडिग ही रहे, किंतु निरंतर जोर पड़ने से वह जरा हिले ही थे कि अचानक कीचक ने उनके घुटनों पर अपने दोनों घुटनों से ही बारी-बारी से ऐसा प्रहार किया कि भीम संभाल नहीं सके और सहसा झटका खाकर गिर पड़े। कीचक जोर से हुंकारकर उछला और उन पर चढ़ जाने की चेष्टा करने लगा लेकिन भीम तो गिरते ही मानो पृथ्वी के आघात से ही फिर उछाल दिए गए हों, वह पलमात्र में उछलकर खड़े हो गए और क्रोध से उन्मत्त होकर कीचक पर टूट पड़े। कुछ देर तक दोनों ही पूरी शक्ति से एक-दूसरे को पछाड़ने के लिए हर संभव दावं लगाते रहे। दोनों के टकराने तथा एक-दूसरे पर प्रहार करने से ऐसा शब्द होता मानो बांस चटचटा रहे हों।

द्रौपदी अवाक खड़ी उनका संघर्ष देखती रही।

वह मन ही मन देवताओं से विनती कर रही थी कि उनका गर्जन कहीं भूगर्भ से उठकर राजभवन तक न पहुंचा जाए कि यहां भीड़ लग जाए। इस भूगर्भ को चुनकर मध्यम पांडव ने निश्चय ही बुद्धिमत्ता से काम लिया था। नृत्यशाला एक तो राजभवन से कुछ दूर बनी थी और चारों ओर से घेरे वन

जैसे घने उपवन के बीचोबीच स्थित थी। दिन में ही यहां नृत्य सीखने वाली बालाओं की चहल-पहल रहती थी, रात को तो निचाट सन्नाटा रहता था। कोई जल्दी इस ओर आता भी नहीं था।

अचानक कीचक जोर से चिंघाड़ा तो पांचाली का ध्यान फिर उस ओर गया। उसने देखा भीम दोनों हाथों को मुष्टिबद्ध करके कीचक की छाती पर प्रचंड प्रहार कर रहे हैं। कीचक उनको न तो रोक ही पा रहा था, न अपने को संभाल ही पा रहा था। पांचाली को यह देखकर हर्ष हुआ कि मध्यम पांडव ने कीचक को मार-मारकर क्षतविक्षत कर दिया है। वह अब शक्तिहीन होकर लड़खड़ा रहा था। भीम ने अचानक झपटकर कीचक को सिर के ऊपर उठा लिया और अपने विशेष कौशल से उसको अधर में ही अनवरत चक्कर कटवाते रहे। पांचाली की आंखें भय से मुंद-सी गईं। वह कांपती हुई अपनी दोनों कोमल हथेलियों से आंखें मूंदकर सहसा धरती पर बैठ गई। उस विशाल कक्ष में अब निरंतर विकट पीड़ा झेलते कीचक की दारुण कराहें मात्र गूंज रही थीं। और वह भी धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही थीं।

कुछ देर बाद भीम ने उसे धीमे से पुकारा। पांचाली चौंककर उठी तो भीम ने कहा, ''लोक में विख्यात माननीया पांडववधू से अभिसार करने को उत्सुक अपने इस नीच प्रेमी को एक बार अपनी कजरारी आंखों से देखकर उसको विदा तो कर दो, सुंदरी!''

इसके साथ ही भीम ने शलाका जलाकर प्रकाश कर दिया। पांचाली सामान्य स्त्रियों की भांति भीरुता से परे थी। उसने कितनी ही बार अपने बलशाली पति को शत्रुओं का मर्दन करते देखा था। उस दिन भीम ने जिस प्रकार पांचाली को उठाकर ले जाने को तत्पर जटासुर नामक भयंकर राक्षस को मारा था, तब भी पांचाली ने उस विकट युद्ध को प्रत्यक्ष देखा था। किंतु इस समय, अग्निशिखा के उस कांपते हुए प्रकाश में, उसको राजा विराट के महासेनापति बलशाली कीचक का मृत शरीर देखकर सिहरन-सी हो आई। मध्यम पांडव ने कुपित होकर कीचक को अपने बांहों की मार से ही ऐसा विकृत कर दिया था कि वह विचित्र-सा मांस का लोंदा-भर लगता था। भीम ने उसके सिर तथा समूचे शरीर को ऐसा कूट दिया था कि कीचक का सिर कबंध में धंसा हुआ-सा दीखता था। उस भीषण वीभत्स आकृति को देखकर पांचाली ने लंबी सांस ली। उसका संतप्त हृदय शांत हो गया था। जुगुप्सा से भरकर उसने सोचा, यही दंभी कीचक कुछ देर पहले वासना से उन्मत्त, अपने को सजा-संवारकर द्रौपदी की लज्जा का अपहरण करने आया था और अब वह मांस का लोंदा बना अपने परिजनों के समक्ष जाएगा तो उन पर क्या बीतेगी!

उस दुरात्मा के शव को पांव से ठोकर मारकर भीम ने कहा, ''सुमुखी, देख लो! गंधर्वों की प्रिया को अपमानित करने की चेष्टा करने वाले किसी भी कामी पुरुष की यही दशा होगी। जो भी तुमसे समागम की याचना करेगा अथवा तुम पर बलात् अधिकार करना चाहेगा, उसकी यही गति होगी!''

पांचाली अपने प्रियतम के रक्त से सने विशाल शरीर को आलिंगन में भरकर मानो उनके दुष्कर पराक्रम के लिए उनके प्रति आभार व्यक्त करने लगी। वह वास्तव में जो चाहती थी, उसमें सफल भी रही—प्रियतमा यौवनांगी पांचाली की सुरभित देहगंध तथा स्पर्श की मादकता ने कुछ ही पलों में भीम का क्रोध शांत कर दिया।

तब अपनी गंधर्वी जैसी पत्नी को निर्भय रहने का आश्वासन देकर भीम उसकी अनुमति से फिर अपने पाकशाला के निकट स्थित आवास में चले गए और रात को ही अपने को स्नान से परिमार्जित करके निर्द्वंद्व, गहन निद्रा में सो गए।

कीचक के वध से प्रसन्न पांचाली ने उसी समय जाकर नृत्यशाला के निकट ही बसे अनेक रक्षक सैनिकों को पुकारकर कहा, ''जाकर जरा नृत्यशाला के गर्भगृह में, देखो! परस्त्री पर आसक्त होकर बलात् उनका शीलभंग करने वाले उस अनाचारी सूतपुत्र कीचक की मेरे बलशाली गंधर्व पतियों ने कुपित होकर क्या गति बना दी है!''

सैरंध्री की बात से विस्मित रक्षकों का दल उल्काएं प्रज्वलित करके तुरंत ही नृत्यशाला में खोजता हुआ अंत में गर्भगृह में पहुंचा तो कीचक को सिर-हाथ-पांव से विहीन मांस के वीभत्स लोंदे के आकार में पड़ा देखकर वे एक साथ दुःख, भय और आश्चर्य से स्तंभित रह गए। महाबली कीचक को इस प्रकार मारने वाला कोई मनुष्य तो हो ही नहीं सकता! उनको विश्वास हो गया कि निश्चय ही यह भीषण कर्म सैरंध्री के गंधर्व पतियों ने ही किया होगा। उनमें से हर व्यक्ति को जानकारी थी कि कीचक पिछले कुछ दिनों से निरंतर सैरंध्री की मादक देहछवि का पान करके उन्मत्त हो गया था। यह भी देखने में आया था कि सैरंध्री के बार-बार दुहाई देने पर भी कीचक ने उसको अपमानित करने में कभी हिचक नहीं दिखाई थी। उसने स्वयं मत्स्यराज के सामने ही राजसभा में सबकी अवहेलना करके सैरंध्री को लात मारकर भी उसका तिरस्कार किया था। फिर भी उसका पीछा नहीं छोड़ा था और किसी भी प्रकार उसके मादक यौवन को भोगने को आतुर था। उनको तो यह भी सुनने में आया था कि कीचक ने अपने अंतःपुर की एक से एक सुंदरी रानियों को भी उस सैरंध्री की दासी बनाकर उसे ही अपनी भार्या बनाने की ठान ली थी।

उन्होंने हर प्रकार से कीचक के शव की परीक्षा की और इसी निष्कर्ष

पर पहुंचे कि निश्चय ही कीचक का इस प्रकार वध करने वाले गंधर्व ही रहे होंगे। किसी मनुष्य के वश की तो बात नहीं थी कि लोकविख्यात बलशाली महासेनापति कीचक की ऐसी दुर्गति कर सकता।

पलमात्र में यह समाचार राजधानी के कोने-कोने में फैल गया। कीचक की मृत्यु पर उपकीचकों तथा उसके परिजनों को विश्वास ही नहीं आ रहा था। लेकिन नृत्यशाला के गुप्त कक्ष में पहुंचकर उन्होंने कीचक के विकृत शव की जो गति देखी, उससे उनके रोंगटे खड़े हो गए। महाबली कीचक का शव जल से निकालकर बाहर फेंके गए किसी कच्छप की भांति गोलमोल-सा दिख रहा था— मांस के बीभत्स लोंदे जैसा। सूतपुत्र का सारा परिवार कीचक की दारुण मृत्यु से दु:खी होकर विलाप करने लगा।

अंतत: उपकीचकों ने अपने बलशाली भाई का दाहकर्म करके उसकी सद्गति के योग्य सभी उचित कर्मकांड करने का निश्चय किया। अपनी ओर से यह कोई हर्ष का अवसर नहीं था, तो भी वे यथा-संभव कीचक के शव को उत्तम विमान पर रखकर उसको श्मशान की ओर ले चले।

कीचक के सभी उपकीचक भाइयों की संख्या बहुत बड़ी थी। सूतराज केकय ने अपनी पहली मालवी रानी से अनेक पुत्रों को जन्म दिया था। वे सभी उपकीचक अपने बड़े भाई के समान ही बलवान और योद्धा थे तथा कीचक के ही अनुगत थे। उसके संकेत पर वे किसी भी राज्य को पलक झपकते उजाड़कर वहां हल चला देने में भी नहीं हिचकते थे।

कीचक को सुसज्जित विमान पर रखकर सभी उपकीचक श्मशान की ओर जा रहे थे तब उनमें से एक की दृष्टि राजभवन के निकट ही विशाल स्तंभ के ओट में खड़ी होकर कीचक की अंतिम यात्रा देख रही पांचाली पर पड़ गई। वह तुरंत रुक गया। उसने लपककर पांचाली को दबोच लिया।

पांचाली घबराकर रक्षा के लिए चीख-पुकार मचाने लगी। किंतु उपकीचकों ने कहा, ''हमारे महाबली भ्राता को इस स्त्री के कारण ही अपने प्राण गंवाने पड़े! वे इस पर आसक्त थे। अब हमारा धर्म है कि उनकी अंतिम इच्छा के अनुरूप कुछ ऐसा करें कि उनकी आत्मा को शांति मिले। इस स्त्री को भी मारकर उनके साथ ही चिता पर रखकर इसका भी दाह-संस्कार कर दो।''

''इसे मारने की क्या आवश्यकता है!'' दूसरे क्रूरकर्मी उपकीचक ने कहा, ''इस कमनीया रमणी को जीवित ही चिता पर रखकर उनके साथ परलोक भेज दो! वहां यह अपने गंधर्व पतियों की ओर से निश्चिंत होकर हमारे अग्रज के साथ रमण का आनंद लेगी....''

और उन्होंने पांचाली को उठाकर बरबस विमान पर कीचक के शव के

साथ ही लिटा लिया। छटपटाती, क्रंदन करती पांचाली को कसकर कीचक के शव के साथ जकड़कर बांध दिया गया।

फिर वे उत्साह के साथ कीचक का विमान लेकर श्मशान की ओर चल पड़े। वहां खड़े अनेक पुरजन तथा नगर के अत्यंत श्रेष्ठ नागरिक भी यह भयानक दृश्य देख रहे थे। उनको क्रंदन करती पांचाली पर दया भी आ रही थी। पुर की जो स्त्रियां मन ही मन अब तक सौभाग्यवती सैरंध्री को सराह रही थीं कि उसके कारण उस नीच बलात्कारी कीचक के आतंक से मुक्ति मिली, वे तो पांचाली की यह दुर्गति देखकर अचेत-सी होने लगीं। किंतु उनमें से किसी को भी उपकीचकों के भय से इस अत्याचार का विरोध करने का साहस नहीं हो रहा था। वे मन ही मन बेचारी सैरंध्री के मंगल के लिए देवताओं से प्रार्थना अवश्य कर रही थीं, किंतु प्रकट रूप में एक भी शब्द कहने का साहस किसी को नहीं हुआ।

पांचाली को जब लगा कि मार्ग पर भीड़ लगाकर उन पर होता अत्याचार देखते पुरजनों, उनकी स्त्रियों अथवा मत्स्य के योद्धाओं को भी उसकी रक्षा करने का साहस नहीं हो रहा था तो वह विकल होकर भी अपनी प्रतिज्ञा नहीं भूली। वह उच्च स्वर में सहसा अपने गंधर्व पतियों के सांकेतिक नाम ले-लेकर दुहाई देने लगी। वह विलाप करती हुई पुकार रही थी, ''मेरे पांचों प्रिय पति जहां भी हों सुनें, जय, जयंत, विजय, जयत्सेन, और जयद्बल! तुम पांचों जहां भी हो, जिस लोक में भी हो, अपनी प्रिया की आर्त वाणी को सुनो....ये सूतपुत्र उपकीचक मुझे अपने नीच भ्राता के साथ जीवित ही भस्म कर देने की ठानकर श्मशान में लिए जा रहे हैं। मैं इस नरपशु कीचक के घृणित शव के साथ बांधकर असमर्थ कर दी गई हूं। ऐसे में मेरे सभी गंधर्व पति मेरी रक्षा के लिए आएं! जिन पराक्रमी गधर्वों के रथ की घरघराहट से शत्रुओं की छाती दहल उठती है, और जिनके दिव्य धनुषों की प्रत्यंचा की टंकार से लोक अनाचारियों के भय से मुक्त रहता है, मेरे उन पतियों की अवहेलना करके ये क्रूरकर्मा उपकीचक उनकी प्रिया को जीवित ही भस्म कर देना चाहते हैं...मेरी रक्षा करो...''

अपने आवास में सोए भीम के कानों में पांचाली का करुण क्रंदन पड़ा तो वह तत्काल उछलकर उठ खड़े हुए और पांचाली को धैर्य देने के लिए वह वहीं से बोले, ''सैरंध्री, तू जो कुछ कह रही है, वह मैंने सुन लिया है.... और अब तू निश्चिंत हो जा! मेरे रहते तेरा अकल्याण करने वाला जीवित नहीं रह सकता। इन नीच सूतपुत्रों से तू निर्भय रह। आज तेरी प्रतिज्ञा के अनुसार, कीचक के समूचे कुल का विनाश होकर ही रहेगा!''

उपकीचकों को कुछ पता नहीं था। वे तो सैरंध्री के करुण विलाप से मन

ही मन आनंदित हो रहे थे। उनको लगता था कि सैरंध्री को उनके साथ विदा करने से परलोक में निश्चय ही महाबली कीचक को प्रसन्नता होगी और वे कुल का कल्याण करेंगे।

श्मशान निकट आ गया था।

अचानक ही उपकीचक ठमक गए। वे विमान सहित ठिठककर सामने का विस्मयकारी दृश्य अविश्वासभरी आंखों से देखने लगे। उनके सामने एक पर्वताकार व्यक्ति बड़ी सहजता से ताड़ का वृक्ष उठाए, मार्ग रोके खड़ा मानो उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उस विशाल ताड़ के वृक्ष को उसने ऐसे उठा रखा था जैसे कोई साधारण-सा दंड ले रखा हो। कीचक के विमान को देखते ही वह दानवाकार व्यक्ति ताड़ के वृक्ष को लेकर वेग से उपकीचकों की ओर दौड़ा। उसे आता देखकर उपकीचक भय से कांप उठे। उनको लगा कि वास्तव में इस सैरंध्री का कोई गंधर्व पति ही उसकी पुकार सुनकर आ गया है। कीचक की दुर्गति से तो वह स्तब्ध थे ही। इस भीमकर्मा पुरुष को देखकर उनकी हूक निकल गई।

उनमें से एक उपकीचक बोला, ''अरे, सावधान हो जाओ! यह गंधर्व हमारी ओर ही आ रहा है। उसका वेग तो देखो कि मार्ग के छोटे-मोटे वृक्षों को वह साधारण से दंड की भांति उखाड़कर फेंक देता है। इस सैरंध्री को छोड़ ही दो... इस मायाविनी स्त्री के कारण अपने समूचे कुल का नाश कराने से क्या लाभ!''

उन्होंने विमान उतारकर जल्दी से पांचाली को बंधनमुक्त कर दिया और सन्नाटा खींचकर खड़े, पांचाली को वहां से दूर पुरी की ओर भागती देखते रहे। किंतु इससे भी उस विशालकाय गंधर्व का क्रोध शांत नहीं हुआ और वह उपकीचकों की ओर झपटा। उसने दूर से ही वृक्ष की चपेट से अनेक कीचकों को पछाड़ दिया और विकराल स्वर में किलकारी-सी मारकर उनका मर्दन करने लगा। उपकीचक अपने प्राण लेकर भागे। विमान को तथा गंधर्व के वश में पड़कर रौंदे जाते भाइयों तथा कुल के योद्धाओं को भी छोड़कर वे तेजी से अपने प्राण बचाने के लिए पुर की ओर भाग चले। किंतु नगर के परकोटे तक पहुंचने के पहले ही गंधर्व ने उनको दबोच लिया और हुंकार-हुंकारकर उनका वध करने लगा। भय तथा अचरज से बौखलाए महाबली उपकीचकों में आत्मरक्षा का साहस मानो जग ही नहीं पाया। वे काठ के पुतलों की भांति श्मशान में रौंदे जाते रहे...

कुछ ही पलों में वहां सन्नाटा छा गया। उस भीमकर्मा गंधर्व के भय से श्मशान के रक्षक चांडाल ही नहीं, जैसे श्मशान के प्रेत भी वह स्थान छोड़कर भाग गए हों! कुछ ही देर में अपने बल और अनाचारों के लिए कुख्यात

कीचक के साथ ही उसके अनुगत एक सौ पांच उपकीचकों के शव भी श्मशान में ऐसे पड़े थे मानो किसी मदमत्त गजराज ने नदीतट पर उगे सरकंडों को रौंदकर डाल दिया हो!

पांचाली अब तक वहीं खड़ी थी। वह पूरी तरह से बंधनमुक्त भी नहीं थी। भीम ने उसके बंधनों को काटकर उसके कोमल अंगों को सहलाते हुए कहा, ''प्रिये, मुझको विश्वास है कि अब इस पुर में तो क्या, इस राज्य में भी कोई ऐसा नहीं रह गया है जो तुमको किसी भी प्रकार पीड़ित करने का दुस्साहस करे।''

कातर पत्नी को आश्वस्त करके भीमसेन ने कहा, ''प्रिये, अब भी हमको धर्मराज की प्रतिज्ञा के अनुरूप ही अपने व्रत का पालन करना होगा। तुम निश्चिंत होकर फिर रानी सुदेष्णा के राजभवन में ही चली जाओ। हमको कुछ और समय तक, किसी भी विपत्ति की अवहेलना करके, यहीं रहना होगा। वैसे तुम निर्भय रहो। अब तुमको कोई भी दुःखी नहीं करेगा। अब मैं जाता हूं। जिस प्रकार नगर का ऊंचा परकोटा लांघकर यह विकृत रूप धारण करके मैं आया था, उसी प्रकार अपरिचित मार्ग से मैं अपने निवास पर जाता हूं।''

और भीम ने सहसा छलांग लगाकर एक-एक डग में दो-दो धनुष की दूरी लांघते हुए नदीतट पर पहुंचकर अपने को वृक्षों के घने झुरमुट में अदृश्य कर लिया।

पांचाली इस संकट से मुक्त होने के बाद कुछ देर तक तो भीम के पराक्रम का चिंतन करती हुई मन ही मन हँसती रही। फिर उसने नदी में स्नान किया। अपने वस्त्रों को धोकर पवित्र किया। फिर पुर की ओर चली। अब उसको एक बार फिर से चिंता व्यापने लगी—न जाने अभी और कितनी विपदाएं झेलनी होंगी। ऐसे तो उसे भी विश्वास था कि इस भीषण कांड के बाद कोई उसका अपमान करने का साहस नहीं करेगा। किंतु आज उपकीचकों ने अचानक ही उसको पकड़कर जिस प्रकार जीवित ही उस नरपशु के साथ जला देने की ठान ली थी, उसको याद करते ही कोमलांगी पांचाली का तन सिहर-सिहर उठता था। वह कुछ सकुचाई-सी, कुछ भीत-सी, आशंका के साथ इधर-उधर देखती हुई राजभवन की ओर जा रही थी। उसको यह देखकर मन ही मन हँसी आ रही थी कि आज उसको देखते ही पुरुष संभवतः गंधर्वों के भय से तुरंत भागकर कहीं भी जा छिपते थे। पांचाली अपने रूप-यौवन की मादकता एवं व्यापक प्रभाव से परिचित थी। इसके कारण उसे कितना संकट भी झेलना पड़ता था! किंतु उसके रूप पर मोहित होने पर भी आज कोई उसके सामने रुककर उसको अपलक निहारने का साहस नहीं कर पाता था।

नगरवासियों ने भागकर श्मशान पर होने वाली उस भीषण घटना का

पूरा विवरण राजा विराट को सुना दिया।

चरों ने सूचना दी, ''गंधर्वों ने श्मशान पर सभी उपकीचकों को उसी प्रकार रौंदकर मार डाला है, जिस प्रकार उन्होंने महाबली कीचक का वध किया था और पांचाली को बंधनमुक्त करके अदृश्य हो गए। अब सैरंध्री फिर आपके राजभवन की ओर ही आ रही है। महाराज रक्षा करें... इस सैरंध्री के कारण तो लगता है, सारा राज्य संकट में पड़ जाएगा....''

राजा विराट स्वयं कीचक तथा उपकीचकों के वध से आतंकित हो गए थे। उनके मंत्रियों ने भी सोचकर परामर्श दिया कि यह सैरंध्री तो अब सचमुच नगर के विनाश का कारण बन गई है। वह अप्रतिम रूप-यौवन से संपन्न है और ऐसी युवती देखकर मानवमात्र को उसे पाने की लालासा जाग ही उठती है... यह स्वाभाविक है, किंतु इस बाला के गंधर्व पति महाकोपी हैं! और अब तो निश्चय हो गया कि वे किसी परम बलशाली मानव का भी वध कर सकते हैं। कीचक और उपकीचकों से बलवान कौन होगा? अत: इसके रूप के कारण सारा राज्य ही नष्ट न हो जाए... गंधर्वों से कोई भी टकरा नहीं सकता। वे एक तो पराक्रमी हैं फिर महामायावी भी हैं। उनकी गति का किसी को आभास तक नहीं मिल पाता, तो फिर उनसे अपनी रक्षा कौन कर सकता है?

राजा विराट ने चिंतित होकर कहा, ''जो भी हो, पहले तो कीचक तथा उपकीचकों का राज-सम्मान के साथ उत्तम सुगंधियों तथा रत्नों आदि से विभूषित करके दाह-संस्कार किया जाए। इस सैरंध्री के विषय में मैं शीघ्र ही उचित व्यवस्था करूंगा।''

उचित व्यवस्था का अर्थ था—महारानी सुदेष्णा की इच्छा के अनुसार जो भी किया जा सके। राजा विराट अब स्वयं भी गंधर्वों के भय से त्रस्त थे। उनके मन में भी सैरंध्री को देखकर उसके यौवन के उपभोग की लालसा जाग उठी थी। उन गंधर्वों को कौन जाने उनके मनोभाव का भी आभास हो गया हो! उनके भय से ही रानी सुदेष्णा की बात मानकर राजा विराट ने कभी पांचाली को अकेली पाकर भी उससे बात तक नहीं की थी, किंतु उनको अब यह भय सता रहा था कि सैरंध्री के विलाप करने पर भी उन्होंने उस दिन राजसभा में उसकी अवहेलना कर दी थी और अपने को इतना साहसी नहीं बना सके थे कि सभा में कीचक की भर्त्सना होती सुनकर उसे सैरंध्री पर अनाचार करने से रोकते। सैरंध्री उस दिन उन पर कुपित भी हुई थी...कंक की बात मानकर यह राजसभा से चली तो आई थी, किंतु कंक न होता तो वह संभवत: उनकी कठोर निंदा करती। अब उस बात को सोचकर राजा भयभीत हो उठे—कहीं सैरंध्री की बात मानकर उसके गंधर्व पति स्वयं उन्हें भी दंड न दें!

महारानी सुदेष्णा भी अपने सभी भाइयों के दारुण अंत से त्रस्त थीं। वैसे

तो कीचक और उपकीचकों के अनाचार से वे स्वयं भी दु:खी थीं और उनको लगता था कि राज्य की स्वामिनी होने पर भी उनको और महाराज को इन कीचकों की अधीनता में जीना पड़ता है। किंतु उनके इस भयानक अंत की तो उन्हें न इच्छा ही थी, न आशंका ही।

महाराज को देखते ही वह स्वयं विकल होकर उनके पास आ बैठीं। कुछ देर तक दोनों मन ही मन इस विकट समस्या से उलझते रहे, फिर महाराज ने कहा, ''प्रिये, वह सैरंध्री तो फिर यहीं आ रही है! तुम उससे मेरी ओर से विनय के साथ कह देना कि महाराज स्वयं तुमसे इस कारण बात नहीं करना चाहते कि तुम्हारे गंधर्व पतियों की अवहेलना न हो जाए! अत: उन्होंने यह संदेश मुझसे इसीलिए कहलवाया है कि स्त्री होने के कारण मेरे कहने पर कोई दोष नहीं होगा। कह देना—'हे वरानने, राजा अनजाने ही हो जाने वाले गंधर्वों के तिरस्कार से भी डरते हैं, अत: अब तुम्हें जहां भी तुम्हारी इच्छा हो, चली जाना ही उचित होगा। हमारे राज्य में तुमको यदि किसी प्रकार से कष्ट हुआ हो तो अपने महाबली पतियों से हमें क्षमा करने को कहना....''

पांचाली जब नगरद्वार से प्रवेश करके पुर में पहुंची तो अपने को विचित्र स्थिति में पाकर दु:खी हो उठी। मन ही मन विषाद हो रहा था कि उसके कारण इतना कष्ट उठाने वाले अपने पतियों का वह आदर तक नहीं कर पाती। ऊपर से लगता है कि उसी के कारण उनका अज्ञातवास भी पूरा नहीं होने पाएगा। कहीं पहले ही पहचान लिए गए तो फिर से बारह वर्षों का वनवास... यह कल्पना भी पीड़ादायी थी।

ऊहापोह में पड़ी पांचाली राजभवन की ओर बढ़ी जा रही थी। उसको भय-सा लग रहा था कि उसके कारण ही महारानी सुदेष्णा के एक-दो नहीं, पूरे एक सौ छह भाई और कुल के अनेक पुरुष मारे जा चुके हैं। ऐसे में क्या केकयपुत्री सुदेष्णा फिर उसको राजभवन में रहने देंगी?

सहसा उसने पाकशाला के निकट पहुंचकर देखा—मध्यम पांडव मतवाले गजराज की भांति खड़े मंद हँसी के साथ उसी की ओर निहार रहे हैं। पांचाली को विनोद के साथ ही अपने पति के प्रति आभार प्रकट करने की इच्छा जाग उठी। उसने भीम को देखा और मंद मुसकान के साथ अंतरिक्ष की ओर देखती हुई वह बोली, ''उन गंधर्वराज को नमस्कार करती हूं, जिन्होंने अपनी प्रिया को भारी संकट से मुक्त किया!''

भीमसेन ने सुना तो प्रसन्न स्वर में बोले, ''शुभे, तुम्हारे जो महाबली पुरुष तुम्हारी आज्ञा के अधीन होकर पहले से ही विचरते रहते हैं, वे तुम्हारी यह मधुर वाणी सुनकर शीघ्र ही अपनी प्रतिज्ञा से मुक्त हों और तुम्हारे साथ

उन्मुक्त विहार करें! तुम्हारा कल्याण हो!''

पांचाली प्रसन्न मन से आगे बढ़ी तो नृत्यशाला के पास पहुंची। वहां बृहन्नला के वेश में स्वयं सव्यसाची अर्जुन दिखाई पड़े। उनके साथ नृत्य सीखने आई राजपुत्री उत्तरा तथा अन्य कुलपुत्रियां भी बाहर निकलकर कुतूहल से सैरंध्री की ओर देखने लगीं। उनमें से राजपुत्री उत्तरा ने समवेदना प्रकट करने के लिए कहा, ''सैरंध्री, तुमको निरपराध ही जो संकट भुगतना पड़ा उससे तुम मुक्त होकर आ गईं, यह देखकर हमें हर्ष हुआ। उन अनाचारियों का वध कर दिया गया, यह तो और भी अच्छा रहा।''

बृहन्नला ने भी किंचित अचरज और उत्कंठा दिखाते हुए पूछा, ''हमने भी इस भयंकर संकट की बात सुनी है, सैरंध्री! किंतु यह तो बताओ कि उन बलवान उपकीचकों का वध कैसे हुआ और तुमको मुक्ति कैसे मिली?''

पांचाली ने मान दिखाते हुए उलाहना-सा दिया। बोली, ''बृहन्नले, तुमको अब राजा विराट के राज्य में इस सैरंध्री से क्या काम? तुम तो यहां मुझे पहचानतीं तक नहीं। इंद्रप्रस्थ में तो कभी तुम मेरे प्रति बड़ा मोह जताया करती थीं। अब यहां नवयौवना कन्याओं के बीच रहकर तुम्हें आनंद ही आनंद मिलता है। तुमको भला सैरंध्री की पीड़ा से क्या काम? मेरी पीड़ा तो तुमको समझ में आ ही नहीं सकती।''

बृहन्नला ने पांचाली का आक्रोश समझा और मृदु कंठ से कहा, ''आज इस नीच योनि में पड़कर यह बृहन्नला स्वयं जो घोर पीड़ा भुगत रही है, सुशोभने, तुम उसको नहीं समझ पातीं, इसी कारण ऐसा कह रही हो। मैं तो तेरे साथ इतने लंबे समय तक रह चुकी हूं, फिर भला तुम जैसी कोमलांगी कल्याणी युवती को संकट में पड़ी देखकर कौन दुःखी नहीं होगा? किंतु दूसरे के मन की पीर किसी और को नहीं व्यापती, इसी कारण तुम ऐसे कटु वचन कह रही हो।''

सुंदरी राजकन्याएं भी कुतूहलवश द्रौपदी के साथ-साथ ही राजभवन में गईं।

वहां पहुंचते ही महारानी सुदेष्णा ने उसे राजा विराट का संदेश कह सुनाया, ''राजा ने कहा है, कल्याणी कि तुम विलक्षण रूपयौवनशालिनी रमणी हो! इस पृथ्वी पर तो हमको तुम्हारे सौंदर्य की समानता करने में समर्थ कोई भी अन्य युवती नहीं दिखाई पड़ती। वरानने, इस भूमंडल पर जन्म लेने वाले पुरुषमात्र विषयभोग की लालसा से मुक्त नहीं हो सकते। तुम्हारे दर्शनमात्र से कौन पुरुष ऐसा है जो मुग्ध होकर तुम्हारे प्रति आसक्त नहीं हो जाएगा! अतः इस राज्य के कल्याण के लिए हमारा तुमसे यही आग्रह है कि अब तुम जहां भी रुचि हो, वहीं चली जाओ। तुमको हम राज्य की ओर से यात्रा के लिए रथ

आदि सभी साधन उपलब्ध करवा रहे हैं। मानवमात्र का मन तुम जैसी परनारी के मोह से ग्रस्त हुए बिना नहीं रह सकता और ऐसे में तुम्हारे महाबलशाली गंधर्व पति कुपित होकर न जाने क्या अनर्थ कर बैठें। अतः इस राज्य पर अनुकंपा करके तुम मनचाही दिशा में प्रस्थान करो....''

पांचाली को आशंका तो थी, किंतु उसने यह नहीं सोचा था कि सहसा राजा विराट उसे निष्कासित करने पर ही तुल जाएंगे। वह मन ही मन गणना-सी करती रही, फिर विनीत स्वर में बोली, ''शुभांगी महारानी, हमारी ओर से महाराज से विनयपूर्वक निवेदन करें कि हमको मात्र तेरह दिन का और अवकाश दें। मैं वचन देती हूं कि इस बीच मेरे गंधर्व पति राज्य का हित छोड़कर कोई अन्य कर्म नहीं करेंगे। बस, महारानी स्वयं अपना वह वचन अवश्य याद रखें जो मुझे यहां नियुक्त करते समय दिया था। यदि मेरा किसी प्रकार अपमान नहीं किया जाएगा तो मेरे पति राज्य का हित ही करेंगे। और अपनी प्रतिज्ञा से मुक्त होते ही वे प्रकट होकर राजा का उपकार करेंगे तथा मुझे लेकर स्वयं ही यहां से अपने लोक में चले जाएंगे...''

पांचाली ने संशय में पड़ी महारानी को आश्वासन देने के लिए कहा, ''देवी, वह गंधर्व महापराक्रमी होने पर भी साधु स्वभाव के हैं और राजा विराट ने उनके प्रति जो उपकार किया है, उससे बहुत प्रसन्न रहते हैं। उन्होंने तो महाराज का अहित करने वाला कोई दुष्कर्म नहीं किया है, किंतु देवराज की आज्ञा से वे अनाचारी पुरुषों को दंड अवश्य देते रहते हैं। वरानने, तुमको दुःख तो होगा। किंतु सोचकर देखो, उन कीचक जैसे अनाचारी पुरुषों के कारण महाराज अपने राज्य और प्रजा की रक्षा करने में भी संकोच करते थे—यह मैं स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव कर चुकी हूं। ऐसे दुरात्मा जनों के लिए दुःख नहीं करना चाहिए। मैं वचन देती हूं कि महाराज यदि पहले की भांति ही मात्र तेरह दिनों तक और शांत रहकर मेरे पतियों पर उपकार करते रहे तो इसका उत्तम फल देकर मेरे पति उनके प्रति आभार ही प्रकट करेंगे।''

सुदेष्णा कातर होकर बोलीं, ''भद्रे, हम तुम्हारी इच्छा के विपरीत भी तो बरबस कुछ नहीं कर सकते। कल्याणी, तुम जब तक इच्छा हो, इसे अपना ही राज्य समझकर रहो, किंतु हम पर अनुकंपा बनाए रखो।''

महारानी सुदेष्णा सहसा अपने भाइयों के दुःख से कातर होकर रोने लगीं। बोलीं, ''मैं अब तुम्हारी ही शरण लेती हूं...तुम जिन महापराक्रमी गंधर्वों की भार्या हो, उनसे हमारे पति और पुत्रों की रक्षा करती रहो।''

सैरंध्री के मन की स्त्री रानी की पीड़ा से व्यथित हो उठी। उसने सैरंध्री होते हुए भी सहसा बढ़कर महारानी को अपने आलिंगन में भरकर कहा, ''महारानी, आप निश्चिंत हों। मेरे पति और स्वयं मैं महाराज और आपकी

उदारता को कभी भूल नहीं सकते। देवी, निश्चय मानो, तुम्हारा कल्याण ही होगा...''

पंद्रह

कीचक का प्रेत-संस्कार आदि करके राजा विराट अभी सहज भी नहीं हो पाए थे कि उनके राज्य पर घोर विपदा टूट पड़ी। वैसे तो महासेनापति कीचक की मृत्यु के बाद ही राजा विराट सशंक हो उठे थे कि उनके जो शत्रु आज तक कीचक के भय से एकदम शांत रहते थे, वे अब कीचक के निधन के बाद अवश्य निःशंक होकर मत्स्य राज्य से अपना-अपना पुराना हिसाब चुकाने के लिए एक-एक करके अथवा एक साथ मिलकर भी आक्रमण कर सकते हैं। कीचक के साथ ही सब उपकीचक भी उस रहस्यमय सुंदरी सैरंध्री के महाकोपी गंधर्व पतियों के क्रोध से जीवन खो बैठे थे। एक प्रकार से बहुत दिनों के बाद मत्स्य राज्य एकदम अनाथ-सा हो गया था। उनको चिंतित देख एक दिन रानी सुदेष्णा भी विचलित होकर रोने लगी थीं। उन्हें पश्चात्ताप-सा हो रहा था कि स्वयं महारानी पांचाली की सैरंध्री को अपना श्रृंगार करने के लिए नियुक्त करके उसने अपने महाबली भाइयों का विनाश ही करवा दिया था। अब तो सचमुच कोई भी मत्स्य राज्य को निर्बल समझकर उन पर आक्रमण कर सकता है।

पांचाली उनकी चिंता से व्यग्र होती थी। उसे महारानी सुदेष्णा की स्थिति पर रह-रहकर तरस आता था। किंतु पापी कीचक जिस प्रकार उसे बलात् अपनी बनाने पर तुला था, उसे पांडवों की महारानी पांचाली सहन करती ही कैसे? वह अपने को जूठी होने देती? इस कल्पनामात्र से पांचाली की आत्मा कांप-कांप उठती। किंतु वह राजा विराट तथा महारानी सुदेष्णा के सद्व्यवहार को भी तो नहीं भूल पाती थी। ऐसे में यदि वे किसी संकट में पड़ जाते हैं तो क्या उसके महापराक्रमी पति उनकी सहायता कर सकेंगे। भीम पर तो पांचाली को पूरा विश्वास था, वह किसी भी प्रकार अपमान नहीं सह सकते, किंतु धर्मराज की प्रतिज्ञा भंग करने का दोष भी तो पांचाली अपने महापराक्रमी पति को नहीं लेने देना चाहती। तब फिर क्या करना होगा? उसने मन में निश्चय कर लिया कि वह शीघ्र ही इस विषय में महाबली भीम तथा सव्यसाची अर्जुन से बात करेगी। कुछ भी हो, उसको इतना तो विश्वास था कि यदि सचमुच मत्स्य राज्य पर किसी प्रकार की विपदा आ ही गई तो स्वयं धर्मराज भी चुप बैठे-बैठे कौतुक नहीं देखेंगे, फिर भी राजा विराट और महारानी सुदेष्णा की

स्थिति और दीनता से पांचाली, स्वयं राजभवन में ही रहने के कारण, जिस गहराई तक परिचित होती रहती थी, उतनी गंभीरता से उसके पांचों पति तो नहीं परिचित हैं। न वे उनकी पीड़ा ही पांचाली की भांति गहनता से अनुभव ही कर पाते होंगे।

वह अपनी ओर से पांडवों को इस आशंका से परिचित करा देने का अवसर खोज ही रही थी कि अचानक ही प्रहार हुआ। पश्चिम-उत्तर में स्थित राजा विराट के गोष्ठ से रक्षक गोपों का दल सहसा भागता हुआ राजधानी में आ पहुंचा और स्वयं राजा विराट के समक्ष जाकर दुहाई देता हुआ बोला, ''महाराज, त्रिगर्त देश की विशाल सेना हम गोपों तथा गोष्ठों की रक्षा के लिए नियुक्त सारे सैनिकों को परास्त करके गोष्ठों की श्रेष्ठ गौओं का अपहरण करके उन्हें अपने राज्य की ओर ले जा रही है। यदि उनकी शीघ्र ही रक्षा नहीं की गई तो त्रिगर्तराज आपके इस विशाल गोधन को अपहरण करके ले जाने में सफल हो जाएंगे।''

इस बीच गोष्ठों से आने वाले गोपों में से एक कुंडलधारी समर्थ गोप ने जाकर गोष्ठों के नए रक्षा-प्रमुख तंतिपाल को भी इस विपदा की सूचना दे दी थी। यह सुनते ही सहदेव क्रोध से दांत पीसते हुए राजसभा में आ गए थे। वह अर्थभरी दृष्टि से अपने ज्येष्ठ भ्राता कंक की ओर देख रहे थे। उनकी आज्ञा के बिना त्रिगर्तों के साथ युद्ध छेड़ा भी तो नहीं जा सकता था!

राजा विराट ने भी कंक की ओर देखकर कहा, ''हमको अपने गोधन की रक्षा तो करनी ही होगी! मैं जानता ही था कि कीचक की मृत्यु का समाचार पाते ही हमारे शत्रु तत्काल इस छिद्र से हमको असमर्थ मानकर हम पर अवश्य आघात करेंगे।''

कीचक की मृत्यु होने के बाद से अपने मित्र कंक पर राजा विराट की और भी श्रद्धा बढ़ गई थी। वे कंक से बड़ी आशाएं रखने लगे थे। अंत में राजा विराट ने अपने शूरवीर 'भाइयों को सेना सुसज्जित करने का आदेश दे दिया।

मत्स्य की सेनाएं सुसज्जित होने लगीं। राजा विराट के बलवान अनुजों-'शतानीक एवं मदिराक्ष तथा ज्येष्ठ राजपुत्र शंख ने भी कवच धारण कर लिए। स्वयं मत्स्यराज विराट ने अपना प्रसिद्ध अभेद्यकल्प नामक कवच धारण किया जो किसी भी शस्त्र से काटा नहीं जा सकता था। सेनापति सूर्यदत्त ने सूर्य के समान तेजस्वी सुवर्णमय कवच धारण कर लिया था। अपने-अपने रथ तैयार करके उन पर सभी वीर अपनी-अपनी ध्वजाएं भी फहराने लगे।

कंक के वेश में बैठे धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने कनिष्ठ भ्राता माद्रीनंदन सहदेव को उत्साहित देखा तो कुछ विचारकर तत्काल ही निर्णय कर लिया और राजा विराट से बोले, ''राजन्, मैंने भी एक श्रेष्ठ महर्षि से धनुर्वेद की

शिक्षा प्राप्त की है। इस समय मुझे उस विद्या के सदुपयोग का उत्तम अवसर प्रतीत होता है। मैं भी कवच एवं शस्त्र धारण करके आपके साथ गौओं की रक्षा करने के लिए चलूंगा। मैं राजा युधिष्ठिर के यहां था, तभी से आपके गोष्ठ के प्रमुख इन तांतिपाल को जानता हूं। ये स्वयं भी युद्ध में प्रवीण हैं। मेरी प्रार्थना है कि आप इनके साथ ही अपने सूपाध्यक्ष बल्लव तथा अश्वपाल ग्रंथिक के लिए भी रथों एवं शस्त्रों का प्रबंध करवा दीजिए और इन सबको अपने साथ ले चलिए। राजा युधिष्ठिर की सेवा में रहने वाले ये सभी उत्साही युवा अत्यंत वीर हैं। उनके प्रभाव से धर्म में भी इनकी रुचि रही है। आज भी गौओं की रक्षा के लिए चलने में ये सहज ही प्रसन्न होंगे। ये तीनों कभी युद्ध से मुंह मोड़ने वाले नहीं हैं।''

कंक की बात सुनकर राजा विराट ने अपने अनुज शातनीक को तत्काल इस संबंध में व्यवस्था करने का आदेश दिया।

जिस समय सूपाध्यक्ष बल्लव को राजा का आदेश लेकर अनुचर आया, उस समय पांचाली वहीं थी। वह इस समय आई तो इस बहाने से थी कि बल्लव को कहेगी कि महारानी की प्रसन्नता के लिए कोई उत्तम पदार्थ बनाकर प्रस्तुत करे। किंतु अवसर देखकर वह उन्हें महाराज विराट और सुदेष्णा की चिंता से ही अवगत करा रही थी। वह चाहती थी कि भीम स्वयं ही अवसर निकालकर कंक तथा अपने अन्य तीनों भाइयों से राजा विराट पर आशंकित विपदा के समय क्या करना होगा, इसकी चर्चा कर लें। किंतु यहां तो पहले ही राजा ने भीम को युद्ध करने की आज्ञा दे दी थी! भीम ने बड़ी चतुराई के साथ उस अनुचर से ही पूछ-पूछकर पता कर लिया कि स्वयं कंक के कहने पर ही राजा ने उनको युद्ध के लिए कहा है। वही नहीं, कंक ने ही तंतिपाल तथा अश्वरक्षक ग्रंथिक को भी युद्ध करने के लिए बुलवाने का परामर्श महाराज को दिया है।

भीम ने प्रसन्न दृष्टि से पांचाली की ओर देखकर हँसते हुए कहा, ''तुम्हारे पराक्रमी गंधर्व तो मानो तुम्हारे मन की बात सुनकर स्वयं ही सक्रिय हो गए हैं, सुशोभने! अब तो तुम संतुष्ट हो न?''

राजा का अनुचर जा चुका था। पांचाली ने आवेग में भरकर अपने महाबली पति का आलिंगन कर लिया और जल्दी से अलग होती हुई बोली, ''मेरे गंधर्व प्रियतम, लगता है, अब हमारे धर्मराज स्वयं ही इस वेष से मुक्ति पाने को आतुर हो उठे हैं। विधाता ने उनको ऐसी बुद्धि दी तो समझो, हमारी विपदा के दिनों का अंत आ ही गया है।''

भीम ने हँसते हुए कहा, ''ज्येष्ठ पांडव की सारी बुद्धि तो अपनी प्रियतमा के प्रति अनुरक्त रहती है। वह कब तक प्रतीक्षा करते रहें! अब तुम जाओ।

अपनी महारानी सुदेष्णा से कहना कि बल्लव जब त्रिगर्तों से गौओं की रक्षा करके आएगा तो उनको ऐसे उत्तम क्षीर का सुस्वादु व्यंजन चखाएगा कि वह जीवन-भर नहीं भूल पाएंगी। हां, तुमको अपने लिए कुछ चाहिए तो बोल दो!''

''विजय!'' पांचाली ने कहा, ''अपने गंधर्वों की विजय से अधिक पांचाली को और क्या चाहिए।''

भीम ने तत्काल सतर्क दृष्टि से इधर-उधर देखा फिर हँसते हुए बोले, ''अभी तो यह दीन बल्लव सुंदरी सैरंध्री की प्रसन्नता के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत रहता है, जब लोकविख्यात महारानी पांचाली की सेवा करने का फिर कभी अवसर मिलेगा तो विजय ही विजय से जी भर देगा!''

''विधाता की शुभ दृष्टि बनी रही तो ऐसा ही होगा। शुभ हो!''

अपनी विश्वमोहिनी मुसकान से भीम को तृप्त करके सैरंध्री ने उस समय विदा ली। भीम के लिए प्रिया की इस मुसकान से अधिक शुभ शकुन क्या हो सकता था! वह तुरंत ही अपनी ओर से तैयार होकर राजसभा की ओर चले।

वहां पहुंचते ही युधिष्ठिर ने कहा, ''आज अवसर आ गया है, वीर बल्ल्व! तुम सभी आज अपने शरणदाता राजा विराट के लिए सैरंध्री के गंधर्वों का-सा पराक्रम करके उनको निश्चिंत कर दो।''

कुछ ही देर में एक से एक दृढ़ कवचों तथा रथों पर आरूढ़ होकर चारों पराक्रमी पांडव उत्साह से हुंकारते हुए राजा विराट के रथ के पीछे-पीछे अपने रथ लेकर अभियान पर निकल पड़े।

उनके साथ ही राजा विराट की सुरक्षा के लिए साठ-साठ वर्ष के ऐरावत जैसे दीर्घकाय गजराजों का विशाल समूह पीछे-पीछे चल रहा था।

सेना त्रिगर्तों को रोकने के लिए यथासंभव तीव्र गति से बढ़ रही थी। सहसा अवसर पाकर भीमसेन ने सहदेव से कहा, ''तुम सबको इस वेष में देखकर फिर से जीवन का उत्साह जाग उठा है! बारह वर्ष बाद तुमको इस रूप में देख रहा हूं, किंतु...'' वह सावधानी से धीमे स्वर में बोले, ''तो भी आश्चर्य होता है कि इस अवसर पर अग्रज को अपने महाधनुर्धर बृहन्नला की याद नहीं आई! उसके प्रति अवहेलना तो हो नहीं सकती और अग्रज किसी कारण धनंजय से कुपित हों, यह तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। परम अनुगामी सव्यसाची से कौन कुपित हो सकता है? फिर....''

सहदेव ने मुसकराकर कहा, ''हमारे दूरदर्शी महाराज ने उचित ही किया है, अग्रज! राजा विराट के सभी शत्रु इस समय कीचक के निधन के कारण उत्साह में होंगे। ऐसे में उनकी राजधानी को कैसे असुरक्षित छोड़ा जा सकता है? राजा विराट स्वयं अनुभवी योद्धा हैं, किंतु उन्होंने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। फिर भी चक्रवर्ती धर्मराज ऐसी भूल कैसे कर सकते हैं! और उनकी

राजधानी के समान ही महत्त्वपूर्ण महारानी सुदेष्णा की वह विश्वमोहिनी सैरंध्री भी तो यहां अरक्षित ही रह जाती! उसे अग्रज इस विपदा में कैसे भूल जाते!'' फिर उन्होंने सावधान होकर कहा, ''अपने कंक तो महान नीतिकुशल हैं! सम्राट् युधिष्ठिर के निकट रहने वाला कोई भी राजपुरुष इतना असावधान कैसे हो सकता है!''

सहसा युधिष्ठिर ने मुड़कर सहदेव की ओर देखा और एक विचित्र-सी भाषा में कुछ कहा।

सहदेव ने अपनी ओर चकित दृष्टि से ताकते भीम और नकुल की ओर देखकर धीरे से कहा, ''महाबली गंधर्वों की जय हो...उनकी प्रतिज्ञा की अवधि नियमतः पूरी हो चुकी है, किंतु सावधान! उनको अभी अवसर की प्रतीक्षा करनी होगी। सहसा ही प्रकट होने का समय नहीं आया है, किंतु पराक्रम दिखाते समय कोई संकोच नहीं होना चाहिए।''

सुनते ही हर्ष से उमड़कर भीम ने सहसा छोटे भाई का आलिंगन कर लिया। और हुंकारकर तेजी से रथ हांक दिया।

त्रिगर्तराज सुशर्मा को कल्पना भी नहीं रही होगी कि मत्स्य की सेना कीचक के न रहने पर भी इतनी तत्परता के साथ उनसे युद्ध करने आ जाएगी। उन्होंने संभवतः यही समझा था कि अब राजा विराट तो शत्रुओं के भय से मुंह छिपाए राजभवन में पड़े होंगे। किंतु विराट की सेना प्रबल गति से पीछा करती हुई एकदम निकट आ गई और अंत में उसने सूर्य ढलते-ढलते त्रिगर्तों को पकड़ ही लिया और उत्साह से हुंकारती हुई उन पर टूट पड़ी।

गजसेना और रथसेना के सेनापति अपनी-अपनी सेनाओं को लेकर एक-दूसरे से टकरा गए। पदाति सेना पदातियों से जा भिड़ी। पलक झपकते भीषण रक्तपात होने लगा। धनुर्धरों ने एक से बढ़कर एक बाण का संधान करके भयंकर दृश्य उपस्थित कर दिया। आकाश बाणों से भर गया। जहां देखो, बाण ही बाण उड़ रहे थे। अंतरिक्ष मानो लाखों जुगुनुओं से जगमगा रहा हो। आगे-पीछे तथा चारों दिशाओं में बाण मारकर संहार करने वाले योद्धा जब आहत होकर गिरते तो उनके सुवर्णखचित विशाल धनुष किसी और के हाथ में पहुंच जाते और अगले ही पल उनसे छूटते बाण फिर से संहार करने लगते। कुछ ही देर बाद मर्यादाहीन युद्ध आरंभ हो गया। किसी को स्थान-काल की सुधि नहीं रह गई थी। बस, सामने आए शत्रु का संहार ही लक्ष्य रह गया था। कौन किस रथी का वध कर रहा है, अथवा कौन रथी पदाति सेना का संहार कर रहा है, इसकी चेतना नहीं रही।

ज्येष्ठ पांडव ने अपने सैनिकों के साथ श्येन-व्यूह की रचना कर ली।

उसकी चोंच के स्थान पर वह स्वयं रहे और नकुल तथा सहदेव श्येन के पंखों के स्थान पर अडिग होकर युद्ध करने लगे। भीमसेन पूंछ के स्थान पर नियुक्त थे। कुछ ही देर में युद्धकुशल पांडवों ने अपने पक्ष की रक्षा करते हुए त्रिगर्त के अनेक रथियों तथा सहस्रों सैनिकों का संहार कर डाला।

राजा विराट के दोनों भाई शतानीक सूर्यदत्त तथा विशालाक्ष मदिराक्ष भी घोर पराक्रम कर रहे थे। उन्होंने मिलकर त्रिगर्त की सेना को मथ डाला। सुशर्मा की रथसेना को घेरकर उन दोनों ने उसे आगे और पीछे दोनों ओर से मारना आरंभ कर दिया। स्वयं महारथी राजा विराट अपूर्व पराक्रम करते हुए त्रिगर्त की सेना का संहार कर रहे थे।

लेकिन त्रिगर्तराज सुशर्मा आज अवश्य कोई अद्‌भुत पराक्रम करने की ठान चुका था। उसने अपनी सेना तथा विराट की सेना को लांघकर सीधे राजा विराट के साथ द्वैरथ युद्ध करने के लिए उन पर आक्रमण कर दिया। दोनों ही शस्त्रों के धुरंधर ज्ञाता थे। वे एक-दूसरे पर तीक्ष्ण शस्त्रों से प्रहार करने लगे।

कुछ ही देर में सूर्यास्त हो गया। रणभूमि धूल से आच्छादित थी ही, अत: कुछ ही देर में गहन अंधकार छा गया। दूसरे को देख पाना ही कठिन हो गया। विवश होकर दोनों पक्षों के योद्धाओं ने युद्ध रोक दिया और सुरक्षित व्यूह बनाकर खड़े रह गए।

कुछ ही देर में चंद्रमा का उदय हुआ तो फिर से संग्राम छिड़ गया। सेनाएं एक-दूसरे से जूझ गईं और बलपूर्वक संहार करने लगीं।

उसी समय त्रिगर्तराज सुशर्मा ने अपने अनुज के साथ विराट पर प्रचंड आक्रमण कर दिया। उन दोनों पराक्रमी योद्धाओं ने बड़ी दक्षता से युद्ध किया और पहले तो राजा विराट की पार्श्वरक्षा करने वाले सैनिकों को मारकर उनको असुरक्षित कर दिया, फिर बड़े ही वेग से राजा विराट की रक्षा के लिए किसी को पहुंच पाने का अवसर दिए बिना उनके सारथी को मार डाला। साथ ही उनके रथ के दोनों घोड़ों को भी मार गिराया। राजा विराट रथहीन होकर नीचे कूद पड़े। उसी समय सुशर्मा ने श्येन की भांति झपट्टा मारकर राजा विराट को सहसा पकड़ लिया और उन्हें बरबस अपने रथ पर चढ़ाकर बड़ी तेज गति से चल पड़ा।

राजा विराट को बंदी होते दिखकर मत्स्य राज्य के सैनिकों में भगदड़ मच गई। उनको भयभीत होकर भागते देखकर युधिष्ठिर का ध्यान उधर गया। उन्होंने तत्काल भीमसेन से कहा, "महाबाहु, अनर्थ हो गया! हम सबको अपने यहां शरण देकर संकट काल में हमारा पालन करने वाले मत्स्यनरेश को सुशर्मा ने बंदी बना लिया। तुम तत्काल उनको छुड़ाकर लाओ, नहीं तो हम अधर्म के भागी होंगे। हमारे रहते महाराज विराट का बंदी होना हमारे लिए घोर कलंक

का कारण बन गया।''

भीमसेन ने तत्काल हुंकार भरकर भयानक युद्ध करना आरंभ कर दिया। वे मदोन्मत्त होकर निकट ही खड़ा वृक्ष उखाड़ने को लपके, तभी युधिष्ठिर ने उनको वर्जित कर दिया। बोले, ''तुम ऐसा मत करो। वृक्ष उखाड़ते ही तुम्हारे अतिमानुषी कर्म से तत्काल हमारा भेद खुल जाएगा। जो भी देखेगा, वह पहचान लेगा कि यह और कोई नहीं, अवश्य भीम ही हैं। अभी हम अपने को प्रकट नहीं कर सकते। अत: तुम सामान्य शस्त्रों की सहायता से ही राजा विराट का उद्धार करो। तुम इस समय सुंदरी सैरंध्री के गंधर्व का रूप भी तो नहीं धारण कर सकते!''

भीम ने तत्काल एक विशाल धनुष हाथ में लिया और सुशर्मा को ललकारते हुए उसकी ओर लपके।

सुशर्मा ने यमराज जैसे एक अतिकाय योद्धा को पीछे से ललकारते हुए आते देखा तो चकित रह गया। कीचक तो मारा गया था, फिर यह कौन-सा विशालकाय सेनापति आ गया विराट की सेना में! उसने अपने सैनिकों को उत्साहित करते हुए उसका मार्ग रोकने का आदेश दिया। और वह स्वयं भी अपने पराक्रमी अनुज के साथ भीम पर एक से एक तीक्ष्ण शस्त्रों से प्रहार करने लगा। किंतु भीमसेन की गति कौन रोकता! उन्होंने सुशर्मा को इस प्रकार राजा विराट को बांधकर ले जाते देखा तो मानो उन्हें अपने ही भ्राता को बांधने जैसा अपमान अनुभव हुआ। वह गरजते हुए सुशर्मा पर टूट पड़े। उसके सैनिकों तथा अनुज की आन न मानते हुए भीम ने अद्‌भुत पराक्रम दिखाया और उन सबका उल्लंघन करते हुए सीधे सुशर्मा की ओर बढ़ते रहे। उसी समय युधिष्ठिर भी भीम की सहायता करने के लिए नकुल तथा सहदेव सहित उसी ओर आ पहुंचे। उन तीनों ने त्रिगर्त की सेना में भयंकर हलचल मचा दी। सुशर्मा ने सहसा युधिष्ठिर को लक्ष्य करके उन्हें नौ बाण मारकर आहत कर दिया और उनके रथ के चारों घोड़ों को भी बींध डाला। यह देखते ही भीम क्रोध से क्षुब्ध होकर तत्काल सुशर्मा के रथ पर टूट पड़े। उन्होंने उसके घोड़ों को मार गिराया और साथ ही सारथी को बरबस खींचकर रथ से नीचे फेंक दिया।

उसी समय राजा विराट के अनुज मदिराक्ष भी आ पहुंचे। राजा विराट ने सुशर्मा को रथविहीन होते देखा तो अद्‌भुत साहस किया और स्वयं सुशर्मा की गदा उठाकर वह अचानक ही उसके रथ से कूद पड़े और उसी की गदा से उस पर प्रहार करने के लिए झपटे। अवसर पाते ही त्रिगर्तराज वहां से भाग निकला। पीछे से भीम ने उसको चुनौती देते हुए ललकारा, ''अरे, लौट आओ, त्रिगर्तराज! इस प्रकार अपने सैनिकों को शत्रु के वश में छोड़कर पलायन करते तुमको लज्जा नहीं आती! और तुम तो राजा विराट की गौएं लेने आए हो न?

इनको तो लेते जाओ!''

भागता हुआ अभिमानी सुशर्मा अचानक ही पलटकर भीम पर टूट पड़ा। भीम जरा भी विचलित हुए बिना सुशर्मा को पकड़ने के लिए उसकी ओर झपटे, तब सुशर्मा फिर से पलटकर भाग चला। भीम ने उसको जाने नहीं दिया, अपितु सिंह की भांति झपटकर उसको धर दबोचा और उठाकर धरती पर पटक दिया और क्रोधावेश में उसको रौंद-रौंदकर प्रबल आघात करने लगे। उनके भयानक प्रहारों से त्रस्त होकर सुशर्मा जोर-जोर से क्रंदन करने लगा। भीम ने उसके मस्तक पर लात से प्रहार किया तो सुशर्मा अचेत हो गया। त्रिगर्त की सेना अपने राजा को बंदी देखकर भाग निकली। भीम ने उनको परास्त करने के बाद सुशर्मा की अपार संपदा पर अधिकार कर लिया और राजा विराट की गौओं को पीछे की ओर लौटाकर इधर आने लगे। वह सुशर्मा का गला पकड़कर उसे घसीटते हुए राजा के सामने ला रहे थे। वह छूटने के लिए बार-बार छटपटा रहा था। तब भीम ने उसको रस्सी से बांधकर अपने रथ पर रख लिया। उसे लेकर भीम कंक के पास आए। वह मन ही मन पछता रहे थे कि सुशर्मा का वध नहीं कर सकते, क्योंकि उनको पता था, उनके करुणाकर भ्राता दया करके उसे भी छुड़ा देंगे! और सचमुच राजा सुशर्मा को इस अवस्था में देखते ही युधिष्ठिर ने कहा, ''बल्लव, अब बहुत हो गया। इस नराधम को जाने दो।''

भीम ने सुशर्मा को पहले यह स्वीकार करने के लिए विवश किया कि वह अपने को अब से राजा विराट का दास कहा करेगा। तभी उसे जीवनदान मिलेगा।

युधिष्ठिर ने कहा, ''पराक्रमी बल्लव! तुमने इसको बांधकर तो दिखा ही दिया! अब तो वह ऐसे ही राजा विराट का दास बन गया है। अब इसे मुक्त कर दो।''

भीम के बंधन से छूटते ही सुशर्मा मन ही मन अपने इस अपमान के लिए दुर्योधन को कोसता हुआ वहां से मुंह छिपाकर भाग चला। वास्तव में उसने तो दुर्योधन के कहने पर ही मत्स्य पर आक्रमण करके गोधन लूटा था, किंतु इस समय उसको मत्स्य देश की गौओं की विशाल संपदा के प्रति स्वयं अपनी लालसा याद नहीं रही। तो भी वह मन ही मन सोचता रहा कि आज ही जब कौरवों की विशाल सेना दूसरी ओर से आकर विराट की सारी संपदा लूट लेगी और मत्स्य पर भी अधिकार कर लेगी तो इनको सही दंड मिल जाएगा!

उसके जाने पर राजा विराट ने अभिभूत होकर कंक की वंदना की और अपना राज्य तथा सारी संपदा उनके अधीन करके उन्हें ही मत्स्य का वास्तविक

स्वामी बनने का आग्रह करते हुए बोले, ''आज मेरी रक्षा आपके पराक्रम से ही हो सकी! आपके कहने से ही मैंने बल्लव, तंतिपाल तथा ग्रंथिक जैसे बलशाली योद्धाओं को अपने साथ आने को कहा था। यदि आप लोग आज न होते तो मैं सुशर्मा का बंदी बनकर उसके कारावास में न जाने कितने दिन यातना सहता। और कौन जाने वह नराधम मुझे क्रोधवश मार ही डालता! आज आपके प्रताप से ही मुझे फिर अपने कुल-परिवार को देख पाने का सुयोग मिला। आप मेरे सबसे बड़े रक्षक हैं। मैं आपका दास बनकर रहूंगा। आज से मैं आप चारों का सत्कार करने के लिए विविध देशों के एक से एक उत्तम रत्न, शय्या, आसन तथा आनंद देने वाली वस्त्रालंकारों से विभूषित अनन्य सुंदरी कन्याएं आप लोगों की सेवा में अर्पित करता हूं। आपकी प्रसन्नता के लिए आपकी सेवा में श्रेष्ठ गजराज, सैंधव एवं गांधारी अश्व, अनेक रथ आदि वाहन तथा आपके अधीन अनेकशः जनपद भी करता हूं।''

राजा विराट के इस तात्कालिक उत्साह को देखकर युधिष्ठिर ने विवेक से काम लिया और गंभीर स्वर में बोले, ''हम तो इतने लंबे समय से आपके अन्न पर ही जीवनयापन करते रहे हैं, महाराज! हमने जो कुछ किया, वह कोई उपकार नहीं, यह तो हमारा और इन तीनों योद्धाओं का धर्म ही था। आप उस संकट से मुक्त हुए, इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात हमारे लिए और क्या होगी! अब हमारा यही अनुरोध है कि आप तुरंत दूतों को भेजकर अपनी राजधानी में अपनी विजय की घोषणा करने का आदेश दें। आप शीघ्रातिशीघ्र अपने नगर में प्रवेश करके पौर-जनपदों को तथा अपने कुल और अंत:पुर को दर्शन देकर धन्य करें।''

तब राजा विराट को मानो इतनी देर बाद पहली ही बार अपनी विजय की याद आई। उन्होंने हर्षित होकर तत्काल दूतों को राजधानी में जाने की आज्ञा दी और आदेश दिया कि हमारी विजय के उपलक्ष्य में स्वागत करने के लिए कुमारिकाएं शृंगार करके मंगलद्रव्यों सहित नगर के बाहर आ जाएं और साथ ही अनेक बाजों के साथ नृत्य करती श्रेष्ठ गणिकाएं भी अलंकारों से सजधजकर स्वागत के लिए सिंहद्वार पर तत्पर रहें।

सोलह

पांचाली को तो पूर्ण विश्वास था कि राजा विराट के साथ अपने तीन-तीन महापराक्रमी अनुजों सहित स्वयं महाराज युधिष्ठिर गए हैं तो विजय में कोई शंका हो ही नहीं सकती। वह निश्चिंत-सी होकर महारानी सुदेष्णा को आश्वासन दे रही थी, जो त्रिगर्तों के आक्रमण के साथ ही अत्यंत व्यग्र हो उठी थीं कि अब मत्स्यराज को बार-बार संकट में पड़ना होगा। वह युद्ध में गए अपने पुत्र

शंख, श्वेत और स्वयं महाराज के लिए तो चिंतित थीं ही।

पांचाली तो विजय के विषय में निश्चिंत थी, किंतु वह महारानी सुदेष्णा को कैसे आश्वासन दे?

अचानक ही उसे अपने और महारानी के बीच हुई वह वार्ता याद आई, जिसमें महारानी सुदेष्णा ने अपनी बड़ी-बड़ी सुंदर काली आंखों में आंसू भरकर किसी सामान्य दीन स्त्री की भांति उसकी ओर आग्रह के साथ देखते हुए कहा था, ''कल्याणी, हम तो तुम्हारे बलशाली गंधर्व पतियों के भय से तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कुछ करने का साहस कर ही नहीं सकते। तुमको जब तक इच्छा हो, यहां रहो, किंतु मेरे पति तथा पुत्रों का कल्याण करना। उन्हें कुछ न होने पाए। वे तो हर प्रकार से निर्दोष हैं! और स्वयं महाराज तो तुमसे उनके ही कोप से बचने के लिए इस विषय में भी बात करने को स्वयं नहीं आए।''

सुदेष्णा पर पांचाली को अपार करुणा जाग उठी थी। वह बोली, ''सुमध्यमा महारानी, मैंने तो अब तक तुमसे कहा नहीं कि गंधर्वों का उल्लेख होते ही तुमको मानसिक कष्ट होता होगा, किंतु तुम्हारे मन को शंका से ग्रस्त देखकर ही कहती हूं कि तुम त्रिगर्तों के आक्रमण की ओर से चिंता मत करो। देख लेना, राजा शीघ्र ही विजय प्राप्त करके आएंगे। त्रिगर्त तो क्या, अनेक शत्रु मिलकर भी अब तुम्हारा कोई अहित नहीं कर सकते।''

''तुम जितनी सुंदर हो, शुभे, उतनी ही मधुरभाषिणी भी हो!'' महारानी सुदेष्णा ने प्रसन्न होकर कहा, ''देवता तुम्हारी बात को सत्य करें।''

''यह सत्य ही है, देवी। तुम विश्वास करो। मैंने कहा नहीं, किंतु अब बताती हूं कि मेरे पांचों महाबली गंधर्व पति मुझ पर महाराज की अनुकंपा से बहुत प्रसन्न हैं और उन्होंने किसी भी संकट से महाराज तथा उनके पुत्रों और कुल के साथ-साथ इस राज्य की हर प्रकार से रक्षा करने का निश्चय कर लिया है। तुमको मैं शपथपूर्वक विश्वास दिलाती हूं कि उन महाबली गंधर्वों की कृपा से आगे तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा। इतना ही नहीं, वे पांचों गंधर्व भ्राता परम शक्तिशाली होने के साथ अत्यंत सज्जन हैं। किसी का उपकार वे जीवन-भर नहीं भूलते। आपका तथा महाराज का उपकार तो उनको कभी भूल ही नहीं सकता। और तुम यह भी सुन लो कि जब तक मैं यहां हूं, तभी तक नहीं, जब उनकी प्रतिज्ञा पूरी होने पर वे मुझे लेकर अपने लोक में चले जाएंगे, तब भी वे मत्स्य राज्य और राजा विराट के संकट में उनकी अवश्य रक्षा करेंगे। यह सत्य तुम पर कुछ ही दिनों में प्रत्यक्ष हो जाएगा। और मैं अपने पतियों से यह विनती भी करूंगी कि वे साक्षात प्रकट होकर आपको तथा राजा विराट को स्वयं आश्वासन दें, तुम्हारा कल्याण हो, शुभे। तुम चिंता मत करो।''

किसी प्रकार महारानी को आश्वस्त करके पांचाली ने उनको विश्राम

करने के लिए उनके शयनकक्ष तक पहुंचा दिया।

फिर वह अपने कक्ष में आई। कीचक के वध का कांड होने के बाद से भयवश महारानी ने अपने पति से परामर्श करके सैरंध्री के लिए विशेष सुंदर कक्ष तथा शयनाशन आदि की व्यवस्था करवा दी थी। अब तो वह पहले की तरह कभी उसे अपने केशों का शृंगार तक करने को नहीं कहती थीं। स्वयं पांचाली जब अपनी ओर से उनका शृंगार करने को जाती तो वह संकोचवश उसे रोकतीं। किंतु पांचाली जानती थी कि वह गंधर्वों के कोप के भय से ही अब उससे सेवाकर्म नहीं करवाती थीं। वह कभी अब एकांत में भी अंत:पुरिकाओं के साथ अथवा अत्यंत प्रिय एवं विश्वसनीय सखियों से भी सैरंध्री के विषय में कोई ऐसी-वैसी चर्चा नहीं करती थीं। पहले तो पांचाली स्वयं अपने कानों से सुन चुकी थी कि महारानी सोचा करती थीं—सैरंध्री चाहे कितनी ही पतिव्रता बनती हो, किंतु अब वह बल्लव के प्रति अवश्य आसक्ति अनुभव करती है।

उसका कारण तो पांचाली जानती ही है—राजा विराट में विचित्र राजभोगों के साथ और भी कितने ही व्यसन थे, जैसे आखेट तथा हिंस्र जंतुओं के साथ मनुष्यों का मल्लयुद्ध देखना। और बल्लव की मल्लविद्या से वह इतने प्रसन्न थे कि उनको जब-तब सिंह से भी लड़वाते रहते थे। यहीं नहीं, इन रोमांचकारी युद्धों को देखने के लिए वह अपनी रानियों, विशेषकर सुदेष्णा को भी आमंत्रित करते थे। फिर तो उन्होंने अंत:पुर में ही एक भव्य रंगशाला बनवा दी और जब मन होता, अंत:पुरिकाओं के मनोरंजन के लिए वहां भीम को सिंह अथवा किसी भयानक वृषभ या महिष से लड़ने को बुलवाते। उस समय भीम को खरोंच भी आ जाती तो पांचाली की आंखें भर आती थीं। उसे वह दिन याद आते, जब इंद्रप्रस्थ में उसके पति पांच-पांच इंद्रों के समान भव्य प्रासादों में रहते थे। उन्हीं महाबली भीम को राजा विराट की आज्ञा से अनुचरों की भांति इन सामान्य अंत:पुरिकाओं का मनोरंजन करने के लिए ऐसे भयानक कर्म करने पड़ रहे थे। इन अंत:पुरिकाओं में से कितनी ही सुंदरियों की अपेक्षा कहीं सुंदर तो स्वयं भीम की सेवा में नियुक्त सैकड़ों दासियां थीं। पांचाली की आंखें बरबस गीली हो जाती थीं, और इसे ही महारानी सुदेष्णा तथा उनकी सहचरियां गंधर्वों की प्रिया होने पर भी सैरंध्री का अपने पतियों से छिपाकर बल्लव के प्रति अनुराग मानती थीं और उसका उपहास करती थीं।

पांचाली को कौतूहल हो रहा था कि कल को अचानक ही जब पांचों गंधर्व प्रकट होकर सामने आ खड़े होंगे तो महारानी और उनकी ये अंत:पुरिकाएं क्या सोचेंगी! तब पांचाली हँसेगी और ये लज्जित-सी उसकी ओर देखती रह जाएंगी। यह सोचती-सोचती पांचाली कल्पना-लोक में पहुंच गई और अकेली ही खिलखिलाकर हँस पड़ी....

अगले ही पल सहसा किसी की चीख-सी सुनकर उसने आंखें उठाईं तो चकित देखती ही रह गई। उसके कक्ष के द्वार पर स्वयं महारानी सुदेष्णा खड़ी उसकी ओर देख रही थीं। उनका सुंदर मुखमंडल भय से विवर्ण हो गया था। सैरंध्री उठकर उनकी ओर बढ़ी तो वह कांपती हुई अचेत हो गईं। कोमलांगी पांचाली ने स्वयं किसी प्रकार रानी सुदेष्णा को उठाकर अपने पास ही सखी के लिए लगी शय्या पर डाल दिया और सुगंधित जल छिड़ककर उसको चेत में लाने का प्रयास करने लगी। आंखें खोलते ही सहसा सुदेष्णा कांपती-सी उठ बैठीं। बोली, ''तुम अकेली ही किससे हँस रही थीं?''

पांचाली को अब समझ में आया कि महारानी किस कारण अचेत हो गई होंगी। पलमात्र में संभलकर वह बोली, ''मैं तो आपके विषय में ही अपने गंधर्व पति से वार्ता कर रही थी। उन्होंने अचानक ही ऐसी बात कही कि मैं हँस पड़ी थी.... किंतु आप तो विश्राम कर रही थीं, फिर अचानक ही जग कैसे गईं? आपने मुझे ही बुला लिया होता...''

लेकिन महारानी सुदेष्णा को इस बात की सुध ही नहीं थी। वह कातर होकर बोलीं, ''क्या कहा था तुम्हारे गंधर्वराज ने?''

पांचाली को अवसर मिला। वह अपने चातुर्य से ही कभी विशाल इंद्रप्रस्थ जैसे साम्राज्य का पालन करती थी। उसको इतनी-सी बात संभालते देर नहीं लगी। बोली, ''उन्होंने शुभ संवाद दिया है, महारानी! कहा है कि महाराज विराट ने त्रिगर्तों को पराजित किया और अब शीघ्र ही अपनी गौओं को फिर से अपने गोष्ठों में पहुंचाकर आने ही वाले हैं।''

महारानी सुदेष्णा ने आतुरता के साथ सहसा उसकी बांह थाम ली और बोलीं, ''यदि यह सत्य है तो मैं तुमको कल ही भव्य अलंकारों से सज्जित करके तुम्हारे मनोनुकूल...'' वह अचानक ही अटक गई। पलभर सोचती रहीं फिर बोलीं, ''नहीं, नहीं, क्षमा करना...तुम स्वयं इतनी समर्थ हो कि.... हम तुम्हारे लिए कर ही क्या सकते हैं! बस, तुम अपने पतियों के साथ हम पर, हमारे राज्य पर ऐसे ही अनुग्रह बनाए रखना, शुभांगी!''

कुछ देर तक उन्हें सांत्वना देकर पांचाली फिर उनको विश्राम करने के लिए उनके शयनागार में पहुंचा आई। लौटते समय उसने सोचा, जाकर किसी बहाने बृहन्नला के वेश में सोए अपने महाधनुर्धर गंधर्व से ही बात करे। इन लोगों का भय और पीड़ा– इन दोनों को ही अब पांचाली सहन नहीं कर पाती। कीचक ने उसका इतना अपमान नहीं किया होता तो इन निरपराध महारानी को इतना दुःख क्यों झेलना पड़ता!

किंतु रात बहुत बीत चुकी थी और उसको यह शंका भी हो रही थी कि कहीं फिर से स्वप्न देखकर भयातुर महारानी सुदेष्णा फिर से उसकी ओर न आ

जाएं, इस कारण पांचाली ने उस समय अर्जुन के पास जाने का विचार छोड़ ही दिया। वह अपनी शय्या पर पड़ी-पड़ी रात कितनी ही देर तक चिंतन करती रही।

सत्रह

जिस समय राजा विराट त्रिगर्तों से युद्ध करने के लिए गए थे, उसी समय सहसा एक और विपदा आ गई—अचानक राज्य के सबसे बड़े गोष्ठ से आए गोपनायक ने सीधे राजभवन में प्रवेश किया। वह हाहाकार करता हुआ बार-बार घोषणा-सी कर रहा था, "हमारे जिस गोष्ठ के बल पर मत्स्यराज अपने महान पशुधन के लिए सर्वश्रेष्ठ माने जाने हैं, आज उसी पर हस्तिनापुर के कौरवों ने आक्रमण कर दिया है! हमारी हजारों उत्तम गौओं को बरबस छीनकर वे लिए जा रहे हैं, रक्षा करो...."

राजा विराट तो थे नहीं। और उस समय जो थोड़ी-सी सेना राजधानी की रक्षा के लिए वहां नियुक्त थी, उसका सेनापति बिना राजा की आज्ञा के पुर को असुरक्षित छोड़कर गोष्ठ की रक्षा करने के लिए जा नहीं सकता था।

इस समय वहां राजा विराट का कनिष्ठ पुत्र भूमिंजय उत्तरकुमार ही ऐसा था, जिसे ऐसे निर्णय लेने के अधिकार थे। भूमिंजय स्वयं कुशल योद्धा तो था किंतु उसमें कौरवों की विशाल सेना से अकेले युद्ध करने का पराक्रम है, यह शंका का विषय था। उस समय उत्तरकुमार अंतःपुर में बैठा था। हाहाकार सुनकर उसने गोपनायक को वहीं बुलवा लिया। गोपनायक ने बार-बार गोष्ठ की रक्षा करने का आग्रह किया। तब उत्तरकुमार उत्साहित होकर बोला, "तुम इतना विकल किस कारण होते हो? मैं तो हूं। आज कौरवों को मेरा पराक्रम देखने का अवसर मिलेगा तो वे तस्करों की भांति गौओं का अपहरण करना भूल जाएंगे। किंतु चिंता का कारण तो यह है कि पिछली बार जो युद्ध हुआ था, उसमें मेरा कुशल सारथी मारा गया था और सारथी के बिना मेरे जैसा महारथी भी कैसे युद्ध कर सकता है!"

तत्काल कुमार उत्तर के लिए योग्य सारथी की खोज होने लगी। अंतःपुर में उस समय स्वयं अर्जुन भी बृहन्नला के रूप में उपस्थित थे। कौरवों द्वारा राजा विराट की गायों का अपहरण ठीक उसी समय किया जा रहा है, जब दूसरी ओर से त्रिगर्तों द्वारा आक्रमण करके विराट को विपुल गोधन को लूट लिया गया है—यह बात अर्जुन को विशेष षड्यंत्र ही जान पड़ी। किंतु इस समय राजा विराट नहीं हैं, भीम, सहदेव आदि भी उनके साथ ही गए हैं, ऐसे में... अर्जुन ने सहसा ही मन में निश्चय कर लिया कि वे स्वयं आज वर्षों बाद कौरवों का दर्शन करेंगे!

उस समय भी उत्तरकुमार उत्साह के साथ कह रहा था, ''यदि अश्वों की हांकने की कला में निपुण कोई भी सारथी मिल जाता तो मैं अभी जाकर उन कौरवों को उनके इस दंभ के लिए दंडित करता! किंतु विवशता तो यही है...सारथी ही नहीं है। नहीं तो मैं अपने जगमगाते रथ पर बैठकर, अपनी स्वर्णमय ऊंची पताका फहराता हुआ सिंह की भांति उन कौरवों की सेना में प्रवेश कर जाता और उनके समस्त योद्धाओं को पराजित करके अपने गौओं की रक्षा कर लेता। उनके सभी सेनापति आज राजा विराट के इस बलवान पुत्र का पराक्रम देखते। उनके वयोवृद्ध योद्धा भीष्म, आचार्य द्रोण, आचार्य कृप, महाधनुर्धर कर्ण, जो सूर्यपुत्र के नाम से विख्यात हैं, तथा अश्वत्थामा, पांडवों को वनवास दिलाने वाले महाधूर्त शकुनि, दुर्योधन तथा उनके सभी अनुजों—दु:शासन, विविंशति, पराक्रमी धनुर्धर विकर्ण एवं चित्रसेन के साथ ही दुर्मुख, दु:शल आदि सभी योद्धाओं को पता लग जाता कि मत्स्य राज्य को छेड़ने का क्या फल मिलता है। मेरा गोष्ठ सूना करके गायों का अपहरण करने वाले कौरव आज मेरा पराक्रम देख ही लेते। मैं अपने शौर्य से उन सभी को निवीर्य कर देता। वे बार-बार यही कहते कि लगता है, साक्षात कुंतीपुत्र अर्जुन ही यहां आकर हमको अपने प्रखर सायकों से पीड़ित कर रहा है!''

उत्तरकुमार की बातें सुनकर अर्जुन मन ही मन प्रसन्न हुए और निकट ही चिंतामग्न खड़ी अपनी तन्वंगी प्रियतमा पांचाली से बोले, ''प्रिये, तुम किसी प्रकार उत्तरकुमार को बता दो कि यह बृहन्नला भी कुशल सारथी है। मैं उसको लेकर युद्धभूमि में स्वयं आज कौरवों का दर्शन करने को उत्सुक हूं।''

सुनते ही चिंता में खोई सुंदरी पांचाली का मुखमंडल सहसा कमल की भांति खिल उठा। उसकी चिंता का समाधान हो गया था। आज उसके वचन के अनुसार, स्वयं सव्यसाची अर्जुन युद्ध के लिए तत्पर हो रहे हैं तो फिर राजा विराट की और महारानी सुदेष्णा की सारी समस्याओं का समाधान हो ही गया। पांचाली को कौरवों के आक्रमण की सूचना से सचमुंच चिंता होने लगी थी। भीम यहां थे नहीं, महारथी युधिष्ठिर तथा नकुल और सहदेव भी उनके साथ ही चले गए थे। ऐसे में इस आकस्मिक संकट से रक्षा करने वाला कौन हो सकता है! अर्जुन तो बृहन्नला के वेश में होने के कारण युद्धभूमि में जा नहीं सकते थे। इसी कारण वह महारानी की चिंता-कातर आंखों से आंखें बचाती हुई अकेली खड़ी सोच रही थी कि अब वह सुदेष्णा को कौन-सा मुंह दिखा सकेगी! उसके महाबली गंधर्व अब की बार क्या सुदेष्णा की ओर से उपहास के पात्र नहीं हो जाएंगे! ऐसे तो कीचकों की दशा देखने के बाद महारानी खुलकर उसकी हँसी नहीं उड़ा पाएंगी, लेकिन पांचाली ने उनकी रक्षा का जो आश्वासन और गंधर्वों की कृपा का जो विश्वास दिला रखा है, उसका क्या

होगा? वह तो आज ही झूठी सिद्ध हो जाएगी।

अर्जुन ने मानो उसको उबार लिया। पति की ओर मोहक कटाक्ष करती पांचाली उत्साह से उत्तरकुमार के पास गई। अंत:पुर में बैठा वह अब भी बार-बार अपने को कुंतीनंदन अर्जुन के समान पराक्रमी होने की डींग मार रहा था। पांचाली से यह सहन नहीं हो रहा था। अंत में वह सामने आकर, लजाती हुई, मधुर कंठ से बोली, ''कल्याण हो, राजपुत्र! क्षमा करें, सारथी के कारण आपको इतना चिंतित देखकर मैंने यहां आने का दुस्साहस किया। आपकी अनुजा कुमारी उत्तरा को संगीत-नृत्य की शिक्षा देने वाला यह जो विशालकाय रूपवान व्यक्ति बृहन्नला आपके भवन में रहता है, वह सारथी के रूप में अत्यंत कुशल है! मैंने इसको महाराज युधिष्ठिर के यहां, उनकी महारानी देवी पांचाली की सेवा में रहते समय, स्वयं देखा है। और इसके विषय में अच्छी तरह जानती हूं। उस समय भी यह सव्यसाची अर्जुन के साथ ही थी, जब वे खांडववन का दहन कर रहे थे। यह अर्जुन का प्रिय सारथी था और कितनी ही बार युद्ध के अवसर पर उनका सारथ्य कर चुकी है। आप इसी बृहन्नला को अपना सारथी बनाकर कौरवों को परास्त कीजिए!''

स्वयं उत्तरकुमार बृहन्नला से सारथी बनने के लिए नहीं कहना चाहता था, अत: उसने सैरंध्री से ही अनुरोध किया कि वही कह दे। किंतु पांचाली ने कहा, ''आप अपनी अनुजा कुमारी उत्तरा से कहिए। उसके कहने पर बृहन्नला उसकी बात अवश्य मान लेगी। इतना मुझे विश्वास है कि यदि वह आपकी सारथी होगी तो आप निश्चय ही उन कौरवों को महापराक्रमी सव्यसाची अर्जुन की भांति ही पराजित करके, मान के साथ फिर से इस नगर में प्रवेश करेंगे!''

उत्तरा के कहने पर अर्जुन उत्तरकुमार के सारथी बनने को तैयार तो हो गए, किंतु अपने वेष के अनुरूप वह कुछ देर तक सबको हँसाते रहे। बोले, ''मैं तो नृत्य-संगीत जानता हूं, अश्वविद्या के विषय में मेरा क्या ज्ञान!''

किंतु उत्तरकुमार बोला, ''तुम छल मत करो। हमारी अंबा की सैरंध्री तुम्हें इंद्रप्रस्थ से ही अच्छी तरह जानती है। पराक्रमी अर्जुन ने भी तुम्हारे सारथ्य में ही अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की है। इस समय तो तुम मेरे अश्वों की वल्गा थामकर मुझे कौरवों की सेना के सामने ले चलो। फिर लौटकर चाहो तो जीवन-भर अपनी यही वृत्ति अपनाकर नाचते-गाते ही रहना।''

अंतत: अर्जुन ने किसी प्रकार कवच आदि धारण करके रथ की ध्वजा फहरा दी और उत्तरकुमार को रथ पर आरूढ़ करवाकर कौरव सेना की ओर चल पड़े।

उनके अभियान के समय उत्तरकुमार की आरती उतारकर विदा करने आई राजपुत्री उत्तरा तथा उसकी सखियों ने अर्जुन से हँसते-हँसते कहा,

''कौरवों को पराजित करके हमारी गुड़ियों के लिए उनके बहुमूल्य वस्त्रों को ले आना। मूल्यवान चीनांशुक, कौशेय तथा कार्पास के सूक्ष्म तंतुओं के बने वह बहुमूल्य वस्त्र हमारी गुड़ियों पर अद्‌भुत शोभा देंगे।''

बृहन्नला के रूप में अर्जुन उन नवयुवतियों को अपनी पुत्री के समान मानकर शिक्षा देते थे और उनको उतना ही नेह भी देकर प्रसन्न रखते थे, तभी तो जिन अर्जुन से स्वयं भूमिंजय उत्तरकुमार भी उनके व्यक्तित्व के कारण अपनी ओर से सारथी बनने के लिए कहते इतना संकोच कर रहा था कि सैरंध्री ने नहीं कहा तो उसे अपनी अनुजा उत्तरा का सहारा लेना पड़ा, उनसे ये सुमुखी कन्याएं इतनी सहज होकर अपनी गुड़ियों को सजाने के लिए योद्धाओं के वस्त्र छीनकर लाने को कह रही थीं।

अर्जुन ने समय के अनुरूप हँसी के लिए कहा, ''जब हमारे बलशाली राजपुत्र अपने पराक्रम से भीष्म आदि महान योद्धाओं को परास्त करके मूर्च्छित कर देंगे तो मैं तुम सबकी गुड़ियों के लिए उनके देश-देश के अनुपम वसनों को अवश्य छीन ले आऊंगा।

युवतियों की प्रसन्न हँसी और गोपों तथा प्रजा द्वारा जयजयकार के ऊंचे नाद के बीच अर्जुन ने वेग से उत्तर के रथ को हांक दिया। राजकन्याएं तथा उसकी सखियां हँसने लगीं। बृहन्नला के साथ रथ पर युद्ध यात्रा के लिए तत्पर महाबाहु भूमिंजय उत्तरकुमार को देखकर अलंकारों से सज्जित सौभाग्यवती युवतियों तथा श्रृंगारवती सुशोभना कुमारिकाओं ने खील और पुष्पों की वर्षा करके उनकी विजय की कामना प्रकट की और मंगलद्रव्यों से उनके मार्ग में शकुनों की रचना-सी करने लगीं। पुरोहित तथा उत्तम व्रती ब्राह्मणों ने महारथी उत्तर के रथ की दक्षिणावर्त परिक्रमा करके उनको विदाई दी।

अर्जुन ने जब अश्वों को थपथपाकर उनको चलने का संकेत किया तो चारों ओर से घेरकर खड़ी अंत:पुरिकाओं तथा पुर की अनेकशः बालाओं ने मंगलगीतों के साथ ही कहा, ''आज हमारे राजकुमार के साथ सारथी बनकर जाती बृहन्नला को वैसा ही मंगल प्राप्त हो, जैसा उसको अर्जुन के सारथ्य के समय खांडवदहन के अवसर पर प्राप्त हुआ था।''

राजधानी से बाहर आने पर उत्साह से भरे उत्तर ने आदेश दिया, ''बृहन्नले, तुम वेग से रथ हांककर उसी ओर चलो, जिधर कौरवों की सेना हमारे गोष्ठ के उत्तम पशुओं को घेरकर हांकती हुई जा रही हो।''

अर्जुन ने राजा विराट के रथों में जुतने वाले उत्तम जाति के अश्वों को साधकर हांका तो वे तीव्र गति से चलते पवन की भांति उड़ चले। कुछ ही देर बाद उन्हें चित्र-विचित्र धवजाओं से युक्त कौरव योद्धाओं के रथों के साथ ही कौरवों की विशाल वाहिनी दिखाई पड़ गई। अर्जुन को मन ही मन विस्मय-सा

हुआ। कौरव श्मशानभूमि के निकट ही उसी शमीवृक्ष के पास अपनी सेना को व्यूहबद्ध करके इस प्रकार खड़े थे मानो गौओं को ले जाने की उनको कोई जल्दी नहीं हो। वे तो जैसे राजा विराट की ओर से आने वाली सेना की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसका रहस्य सहसा समझ में नहीं आया। किंतु बुद्धिमान अर्जुन को तत्काल विश्वास-सा हो चला कि कौरवों को अवश्य कीचक के मरने की सूचना मिल चुकी होगी। और संभवतः उनकी अभिसंधि से ही त्रिगर्तराज सुशर्मा ने भी विराट पर आक्रमण किया होगा। तो एक साथ दोनों ओर से आकर घेर लेने का क्या यही तात्पर्य है कि कीचक की मृत्यु से वे मत्स्य देश को बिलकुल निर्बल मानकर उसकी विजय करने की इच्छा से ही आए हैं?

अर्जुन का विचार तो यह था कि राजा विराट का गोधन लोकप्रिय है। कौरवों ने इसी कारण उनकी गौएं छीनकर अपनी संपदा बढ़ाने की सोची होगी। किंतु अब तो लगता है कि महाबली भीम से पांचाली ने जो चिंता प्रकट की थी, वह सच ही थी। कीचक की मृत्यु से राजा विराट कायर तो नहीं हुए थे, क्योंकि वह स्वयं सुविख्यात योद्धा थे, फिर भी कीचक जैसे महाबली सेनापति के न रहने पर उनका शत्रुओं की ओर से आतंकित होना उचित ही था। और पांचाली ने बताया था कि महारानी सुदेष्णा मन ही मन अपने भ्राताओं के मारे जाने से तो पीड़ित थीं ही, उनको अपने पुत्रों तथा महाराज की कुशलता की चिंता भी लगी रहती है। तो यही बात होगी! तो यह दुरात्मा दुर्योधन छलपूर्वक महात्मा युधिष्ठिर के राज्य का अपहरण करके भी संतुष्ट नहीं हुआ... वह अब मत्स्य राज्य को भी अपने अधीन करना चाहता है।

अर्जुन क्रोध से धधकने लगे। इन नीच कौरवों को पृथ्वी पर अपना ही शासन देखने की इच्छा है। और नियति को भी क्या कहा जाए कि घोर अनाचारों के बाद भी दैव कौरवों का ही साथ देता है। निश्चित रूप से कौरवों को मत्स्य-विजय का ही लोभ है, नहीं तो उसके साथ पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण एवं पराक्रमी गुरु कृपाचार्य जैसे सेनानी क्यों आते? गौओं के अपहरण के लिए तो दुर्योधन के साथ वे कदापि इतनी दूर अभियान नहीं करते। गोष्ठों पर इनका आक्रमण तो राजा विराट के साथ लड़ने का बहाना मात्र है। वास्तविक उद्देश्य निश्चय ही कुछ और है! कहीं कीचक के वध के बाद कौरवों के चरों ने यहां पांडवों के होने का आभास तो नहीं दे दिया कि वह अवधि से पहले ही हमको पहचानकर फिर से वनवास के लिए विवश करने के उद्देश्य से यह सब कर रहे हों!

यह बात मन में आने पर अर्जुन को हँसी आ गई। यदि ऐसा है तो अब कौरवों को इसकी सीख देनी ही होगी। अर्जुन मन ही मन इस बात से बहुत उत्साहित थे कि सहदेव ने गणना करके अग्रज धर्मराज को पहले ही बता दिया

है कि हमने अपने अज्ञातवास की अवधि वास्तव में सफलतापूर्वक पूरी कर ली है। तब भी महाराज ने कुछ सोचकर अभी गुप्त वेष में ही रहने का आदेश दिया था। वह उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे—किसी ऐसे अवसर की, जब प्रकट होकर वह अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने के लिए बल-संग्रह भी कर सकें। सहसा प्रकट हो जाने से उन्हें अकेले पाकर कौरवों को उन पर आघात करने का लोभ हो सकता है। और महाराज अब यह नहीं चाहते कि कौरवों से छोटे-छोटे युद्ध करके किसी भी प्रकार से अपनी शक्ति तथा दिव्यास्त्रों का दुरुपयोग किया जाए। कुछ भी हो, धर्मराज जानते थे कि इतने दिनों तक राजसुख भोगने के बाद कौरवों को, विशेषकर कुटिल शकुनि के जाल में उलझे दुर्योधन को, राज्य वापस करने के लिए सहमत करना उतना सहज नहीं होगा। उसे विवश करने के लिए मात्र न्याय और धर्म तथा नैतिकता के उपदेश ही पर्याप्त नहीं होंगे। यदि ऐसा होता तो आज तक कितने ही महापुरुषों, महर्षियों तथा कुल के ही माननीय पुरुषों की बात मानकर दुर्योधन संधि कर चुका होता। ऐसे में उसको विवश करने के लिए पर्याप्त शक्ति भी हो तभी कुछ हो तो हो, अन्यथा दुर्योधन तो...

अकस्मात ही कुमार उत्तर उचककर रथ पर खड़ा हो गया। अर्जुन ने चौंककर देखा— उत्तर का मुखमंडल विवर्ण हो उठा था। वह न जाने क्या सोच रहा था। इतना व्यग्र किसलिए? उसने ऐसा कौन-सा भय का कारण देख लिया कि निस्तेज हो रहा है?

''सावधान, राजपुत्र! हमारे सामने अब कौरवों के महान् योद्धाओं की पंक्ति दिख रही है। अब आप तत्पर होकर युद्ध का संकल्प लीजिए। इन तस्करों को उनकी धृष्टता की शिक्षा देकर अपने गोधन को फिर अपने गोष्ठों में पहुंचा दीजिए।''

लेकिन कुमार उत्तर तो इस बीच कौरवों की विशाल वाहिनी और उसकी रक्षा करने वाले महान् योद्धाओं का प्रत्यक्ष दर्शन होने के बाद आतंकित हो उठा था। उसने भयभीत स्वर में कहा, ''बृहन्नले, तुम तत्काल अपना रथ राजधानी की ओर मोड़ लो। हम वहां अपने पुर के दुर्ग में सुरक्षित होकर, जब तक महाराज त्रिगर्तों को परास्त करके नहीं आ जाते, तब तक बचे तो रहेंगे! कौरव योद्धा तो मद से उन्मत्त होकर विशाल सेना सहित सन्नद्ध खड़े हैं! इन महाबलशाली धनुर्धरों का सामना मुझ जैसा एकाकी युवा कहां कर सकता है! मैं तो व्यर्थ ही गोपों द्वारा बार-बार उत्साहित करने पर आवेश में आकर चला आया। मेरे वश में इन महाबली योद्धाओं से युद्ध करना नहीं है। तुम शीघ्र ही वापस चलो, कहीं ये हमको यहां कवच आदि धारण करके आया देखकर यह न सोच लें कि हम तो युद्ध करने ही आए हैं, और हम पर टूट पड़ें...''

भूमिंजय उत्तर को व्यापे भय तथा उसकी भीरु बातों से अर्जुन को ठेस लगी। वह बोले, ''महाबाहु राजपुत्र, तुम अपने मन से भय निकालकर युद्ध करने के लिए डट जाओ। भूमिंजय के नाम से विख्यात योद्धा उत्तर के लिए यह कायरता शोभा नहीं देती। तुम इतना तो सोचो कि यदि रणभूमि से भयवश भागकर नगर में छिपोगे तो वहां पुर की स्त्रियां और पुरुष सभी एकत्र होकर तुम्हारी हँसी उड़ाएंगे। राजपुत्र, क्षत्रिय वीर का कायरता दिखाकर रणभूमि से भागना तो मृत्यु से भी कहीं अधिक पीड़ादायक होता है। इससे अच्छा तो यह है कि तुम साहस के साथ इन वीरों के साथ युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त करो।''

लेकिन कुमार उत्तर के मन पर उस समय कौरवों के महाबली भीष्म, कर्ण, आचार्य द्रोण तथा कृप और अश्वत्थामा के साथ ही सौ कौरव भ्राताओं का ऐसा भय बैठ गया था कि उसने अधीर होकर कहा, ''भले ही कोई हँसे अथवा रोए। मेरी गौएं बचें अथवा कोई भी उनको ले जाए, मैं तो एक पल को अब यहां नहीं रुक सकता। तुम नहीं चलते तो यह लो, मैं जाता हूं! ''कहता-कहता उत्तर सहसा रथ से कूद पड़ा और अपने धनुष-बाण आदि वहीं छोड़कर तेजी से पीछे की ओर भाग चला।

उसे भागते देखकर भरत कुल के महान् योद्धा अर्जुन को आघात-सा लगा। वह भी तुरंत रथ से कूद पड़े और उत्तर के पीछे-पीछे भागे। उस समय बृहन्नला वेश में होने के कारण उनके शरीर पर रंगीन शटिका थी जो दौड़ने से फहराने लगी थी और उनकी लंबी चोटी भी हवा में लहरा रही थी।

कौरवों की सेना में खड़े अनेक योद्धा यह कौतुक देखकर ठहाके लगाने लगे। साथ ही एक दीर्घकाय योद्धा जैसे तेजस्वी अंगों वाले पुरुष को उस विचित्र वेष में देखकर कितने ही दूरदर्शी कौरव योद्धा विचारमग्न होकर सोच रहे थे कि यह हो क्या रहा है! महारथी तो सहसा हमको देखते ही रथ से कूदकर भाग निकला, किंतु षंढ-सा दीखने वाला यह महाकाय पुरुष, जो सारथी बनकर रथ हांक रहा था, अब अपने भागते हुए महारथी को पकड़ने की चेष्टा कर रहा है।

कोई सौ पग दूर जाते-जाते अर्जुन ने झपटकर उत्तर को पकड़ लिया और उसका केश पकड़कर रथ की ओर लाने लगे। पकड़े जाने पर उत्तर आर्त होकर उनसे विनती करने लगा, ''बृहन्नले, तुम मेरी बात मानो, यदि जीवन रहे तो मनुष्य संसार में अनेक मंगल प्राप्त कर लेता है! तुम मुझे छोड़ दो, मैं तुमको सौ स्वर्ण मुद्राएं दूंगा... अत्यंत प्रकाशमान मणियां दूंगा... हेमदंड युक्त उत्तम अश्वों से खींचा जाने वाला एक रथ भी दूंगा.... इतना ही नहीं, तुमको

मैं दस विशालकाय गजराज भी दूंगा... बस, तुम मुझे इस भयंकर स्थान से जाने भर दो।''

अर्जुन ने हँसते हुए कहा, ''महाबाहु राजपुत्र! तुम जब अपनी गायों की रक्षा की प्रतिज्ञा करके आ रहे थे, तब तुम्हारी जो शोभा थी, वह इस कीर्ति का नाश करने वाली कायरता से हीन हो रही है। मैं तो अर्जुन जैसे अतिरथी योद्धा की सारथी रह चुकी हूं, जिनकी दो ही प्रतिज्ञाएं लोकविख्यात हैं—'अर्जुनस्य प्रतिज्ञा द्वे दैन्यं न च पलायनम्....' तुमने भी निश्चय ही सुना होगा कि सव्यसाची अर्जुन न तो कभी पलायन करते हैं और न तुम्हारी तरह शत्रु के सामने दीनता ही प्रकट करते हैं। उनके साथ रहने के कारण मेरा भी ऐसा ही निश्चय हो गया है। तुम यदि इस प्रकार भाग रहे हो तो मैं सोचती हूं कि मैं ही युद्ध करके अपने गोष्ठ की रक्षा क्यों न करूं! मैं तो युद्धभूमि से असफल होकर कभी वापस राजा विराट की पुरी में जीवित नहीं जा सकता। तुम निश्‍िंचत होकर बस, मेरे अश्वों को संभालो। मैंने स्वयं देखा है कि तुम इस कौशल में पारंगत हो। महाभाग, इस समय तुम पर कायरता छा गई है। तो फिर तुम बस, इतना करो कि मेरे स्थान पर आकर सारथी बन जाओ। मैं स्वयं ही इन कौरवों से युद्ध करूंगी और शपथपूर्वक कहती हूं कि अपनी गौओं को फिर से जीतकर अपने गोष्ठ में ले जाऊंगी। तुम अपने प्राण के लिए मत डरो। वीरों के लिए प्राण की अपेक्षा अपनी आन अधिक प्यारी होती है।''

उत्तर भागने को उतावला था, किंतु बृहन्नला ने उसको बरबस रथ पर बैठाकर अश्वों की वल्गा उसके हाथ में थमा दी और उसको तत्काल रथ को हांककर उसी शमीवृक्ष की ओर चलने को प्रेरित किया, जिस पर राजा विराट की पुरी में प्रवेश करने के पहले लगभग एक वर्ष पूर्व पांडवों ने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र छिपा दिए थे।

शमीवृक्ष के पास रुककर अर्जुन ने उत्तर को उस वृक्ष पर चढ़कर खोंडर रखे शस्त्रों को उतारकर नीचे लाने को कहा।

चकित-सा उत्तर वृक्ष पर चढ़कर एक बड़ा-सा बंधा हुआ गट्ठर खोखल के भीतर से निकाल लाया।

अर्जुन के कहने पर उसने ऊपर लगे वेष्टन को हटाया तो उसमें चार अद्‌भुत धनुषों के बीच रखा एक महाधनुष दीख पड़ा, जो ऊंचाई में ताल के समान था। उसने चकित होकर पूछा, ''ये विशाल शस्त्र किसके हैं जो चारों ओर प्रकाश फैला रहे हैं! और यह विलक्षण महाधनुष तो अविश्वसनीय-सा लगता है। क्या कोई मनुष्य इसको भी धारण करके युद्ध कर सकता है?''

अर्जुन ने हँसकर कहा, ''राजपुत्र, ये साधारण शस्त्र नहीं है, ये सभी लोकविख्यात पांडवों के शस्त्र हैं। यही वह प्रसिद्ध गांडीव है जिसे धारण करके

अर्जुन गंधर्वों, यक्षों, दानवों, राक्षसों के साथ ही देवताओं से भी युद्ध कर सकते हैं। महाबली अर्जुन के भुजदंडों का विक्षेप सहन करना इसी धनुष के वश का है। इसी कारण मैंने तुमसे ये शस्त्र उतारने को कहा, क्योंकि मैं स्वयं भी उन्हीं धनंजय का शिष्य हूं.... और तुम्हारे इन साधारण धनुषों को लेकर कौरवों की गजसेना को कदापि नष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये तो साधारण बाणों को ही सहन कर सकते हैं। इस महाधनुष गांडीव का चमत्कार आज मैं तुमको दिखाऊंगा।''

इसके साथ ही आश्चर्यचकित उत्तर को सभी पांडवों के और भी विस्मयकारी अनेक चमचमाते खंग, तोमर, असि आदि शस्त्र और सुवर्णजटित सैकड़ों नाराच भी देखने को मिले। भीम की गदा देखकर तो वह हक्का-बक्का रह गया। अर्जुन ने उसको संक्षेप में उन शस्त्रों के साथ ही पराक्रमी पांडवों के विक्रम का परिचय भी दिया।

कुमार उत्तर ने कुछ पीड़ा के साथ कहा, ''उन महाबाहु पांडवों का यश तो हमने भी सुना है। मेरे महारथी पिता को भी उन पांडवों से बहुत लगाव रहता है। दुरात्मा कौरवों ने शकुनि के षड्यंत्र से जिस प्रकार जुए में छलपूर्वक परास्त करके उनको वनवास में जाने को विवश किया, उससे हमारे महाराज तो बहुत ही क्षुब्ध थे.... क्या आप जानते हैं कि वे महाभाग पांडव अब कहां हैं? सुनता हूं कि वे अपने साथ अपनी लोकविख्यात कोमलांगी सुंदरी पत्नी पांचाली को भी लेकर सहसा ही एक दिन काम्यक वन से अदृश्य होकर न जाने कहां चले गए हैं। हमारे मत्स्य देश में भी कौरवों के अनेक चर आ-आकर पांडवों के विषय में खोज करते रहे हैं। दुर्योधन तो संभवतः अब भी पांडवों के भय से नहीं सो पाता। वह किसी प्रकार उनका विनाश करने के लिए ही उनको खोजता रहता है।''

अर्जुन ने पल-भर सोचकर कहा, ''महाबाहु राजपुत्र उत्तर, मैं स्वयं ही इस गांडीव को धारण करने वाला अर्जुन हूं! इस गांडीव को अर्जुन के अतिरिक्त और कोई धारण करके इसकी प्रत्यंचा तक नहीं चढ़ा सकता। तुम्हारी राजसभा के माननीय सदस्य कंक स्वयं पृथानंदन महाराज युधिष्ठिर हैं। तुम्हारा सूपकार बल्लव और कोई नहीं, स्वयं मध्यम पांडव महाबली भीमसेन ही हैं और गोष्ठपालक तंतिपाल माद्रीनंदन सहदेव हैं, तथा उनके युग्मक भाई माद्रीनंदन नकुल ही अश्वपाल ग्रंथिक के वेश में पूरे एक वर्ष से यहां जीवनयापन करते रहे हैं.... और तुम्हारी अंबा देवी सुदेष्णा की वह रूपवती सैरंध्री ही हमारी प्रिया पांचाली हैं जो स्वयं कभी राजाओं की एक से एक बढ़कर सुंदरी रानियों की सेवा प्राप्त करती थीं! वह पांचाली ही नियतिवश आज यहां सैरंध्री बनकर रहती हैं।''

उत्तर चमत्कृत था। वह अविश्वास-भरे स्वर में बोला, "मैं शंका में पड़ा हूं... यदि तुम महाधनुर्धर अर्जुन के लोकविख्यात दस नामों के विषय में मुझे बता दो तो तुम्हारी सारी बात पर मुझे विश्वास आ सकता है, महाभाग!"

अर्जुन ने हँसकर कहा, "इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, राजपुत्र! हमको ऐसे ही छिपकर जीवन बिताना पड़ा कि कहीं कोई हमें पहचान न ले, अन्यथा प्रतिज्ञा के अनुसार हमें फिर से बारह वर्ष वन में बिताने पड़ते। मैं तुम्हारे संतोष के लिए अपने दस नामों को बता रहा हूं, जिन्हें तुमने पहले से सुन रखा है। मेरे नाम हैं— अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु, कृष्ण, किरीटी, श्वेतवाहन, भत्सु, विजय, सव्यसाची और धनंजय!"

संशय में पड़े उत्तर को पूरी तरह विश्वास दिलाने के लिए अर्जुन को अपने नामों के पड़ने का कारण भी बताना पड़ा। राजसूय के समय अनेक राजाओं को जीतकर कर में अपार धन लेने के कारण ही उनको 'धनंजय' कहा जाता था। उनके रथ में सुवर्ण के वर्म से सुरक्षित श्वेत अश्व जोते जाते थे, अत: उनको 'श्वेतवाहन' कहा जाता था। वह अपने विशाल धनुष गांडीव की प्रत्यंचा दाहिने तथा बाएं दोनों हाथों से समान शक्ति के साथ खींचने में समर्थ थे, इस कारण उनको 'सव्यसाची' कहा जाता था। हिमालय के शिखर पर उनका जन्म उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था, अत: उनको 'फाल्गुन' भी कहा जाता था। इसी प्रकार युद्ध में सर्वत्र विजयी होने के कारण उनका नाम ही 'विजय' पड़ गया था। अपने सुशोभन किरीट के कारण उनको 'किरीटी' कहा जाता था। शत्रुओं का दमन करने वाला होने के कारण उन्हें 'जिष्णु' कहा जाता था। उनके शरीर का वर्ण श्याम और गौर कांति का अद्‌भुत मिला-जुला था, अत: उनके पिता पराक्रमी पांडु उनको स्नेहवश 'कृष्ण' कहा करते थे....

उत्तरकुमार को विश्वास हो गया कि बृहन्नला के वेश में वह महान योद्धा अर्जुन ही हैं तो अभिभूत होकर वह उनकी स्तुति-सी करने लगा।

अर्जुन ने हँसकर कहा, "महाबाहु विराटनंदन,अब तुम निश्िंचत हो जाओ। और मेरे ये सभी शस्त्र— गांडीव, खड्‌ग तथा अन्य सभी उपकरण रथ पर रख दो। मेरे ये अक्षय तूणीर भी रथ से बांध दो।"

उत्तर ने तत्काल उनकी आज्ञा का पालन किया। निषंगों को रथ की टेक से बांधते हुए वह उत्साह से बोला, "आपकी उपस्थिति में अब मेरा मोह नष्ट हो गया है। महाबाहु कुंतीनंदन, अब तो मैं युद्धभूमि में देवताओं के सामने जाते भी भय नहीं अनुभव करूंगा। मैंने आपके सभी शस्त्र तथा तूणीर आदि विधिपूर्वक रथ में रख दिए हैं। अब आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूं! वैसे मुझे गुरु से सारथ्यकर्म की शिक्षा भी विधिपूर्वक प्राप्त हुई है। मैं आपके रथ का उसी प्रकार सारथी बनकर आपका साथ दे सकता हूं, जिस प्रकार वासुदेव

कृष्ण कभी-कभी रथ और अश्वों को साधकर आपका सारथ्य करते रहते हैं।''

उत्तर वास्तव में निर्भीक होने के बाद अत्यंत कौशल के साथ अश्वों को साधकर, रथ को तत्पर करके रथी की प्रतीक्षा करने लगा। अर्जुन ने तब रथ पर आरूढ़ होने के पहले अपने नपुंसक वेश को त्याग दिया। अपने लंबे-लंबे केशों को पीछे करके उन्होंने एक श्वेत वस्त्र से उनको बांध दिया। हाथों से स्त्रियोचित शृंगार के वलय आदि सभी आभूषण उतारकर उन्होंने अपने अंगुलित्राण धारण कर लिए और अपने अभेद्य चमकीले कवच, शिरस्त्राण आदि को धारण करके वे श्रेष्ठ योद्धा के रूप में रथ पर आरूढ़ हो गए। फिर उन्होंने मन ही मन अपने दिव्यास्त्रों को स्मरण किया। अपने शस्त्रास्त्रों के साथ वर्षों बाद फिर से युद्ध के लिए रथ पर आरूढ़ होने के बाद अर्जुन का मन खिल उठा था। उन्होंने गांडीव की प्रत्यंचा चढ़ा ली और उससे भयंकर टंकार किया।

उसे सुनते ही कौरव योद्धा चकित होकर उनकी ओर देखने लगे—यह तो पृथ्वी को विदीर्ण करने वाले अर्जुन के गांडीव की टंकार है! कौरवों पर, विशेष रूप से दुर्योधन पर मानो बिजली-सी गिर पड़ी।

अठारह

अर्जुन का रथ वेग से कौरव सेना की ओर बढ़ रहा था। तब उन्होंने अपने देवदत्त शंख का नाद किया। कौरव सेना की छाती दहल उठी। उथल-पुथल-सी मच गई।

आचार्य द्रोण ने कहा, ''शंखनाद और धनुष की प्रचंड टंकार से स्पष्ट है—हमारी वाहिनी के समक्ष निर्भय आने वाला यह योद्धा किरीटी अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं है। निश्चय ही यह अर्जुन ही हैं। यह मात्र मेरा ही अनुमान नहीं है, हमारे सैनिकों को भी विश्वास हो गया है कि यह अर्जुन ही हैं, तभी तो सेना कैसी निस्तेज-सी हो गई है। सुयोधन! मुझे तो अनेक अपशकुनों का आभास हो रहा है। लगता है शीघ्र ही यहां भयानक रक्तपात होकर रहेगा। अस्तु, अब प्रमाद का समय नहीं है। तुम शीघ्र ही गोष्ठ से लाई गई गौओं को तो हस्तिनापुर की ओर ले जाने का आदेश दे दो और व्यूहरचना करके सावधानी के साथ युद्ध के लिए उद्यत हो जाओ!''

दुर्योधन ने दंभ के साथ कहा, ''हम तो पहले ही संशप्तकराज सुशर्मा से बात करके मत्स्य के गोष्ठों पर अधिकार करने के लिए आए ही हैं। और यह भी निश्चित ही था कि हमको मत्स्य देश के सैनिकों से युद्ध करना है। फिर उनकी ओर से अभी तक नपुंसक वेश में आने वाला यह योद्धा यदि अर्जुन ही हो तो भी क्या हुआ! किंतु मुझे विश्वास नहीं आता कि यह अर्जुन ही है। क्या हमसे कहीं भूल हो रही है अथवा ये पांडव ही प्रमादवश तेरहवें वर्ष की अवधि

को भूल गए हैं? कुछ भी हो, यदि यह अर्जुन है तो हमारे लिए हर्ष की बात ही है। ये तेरहवें वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा भूलकर पहले ही हमारे सामने प्रकट हो गए तो अब उनकी ओर से हमारी चिंता जाती रही। और वैसे भी यदि इस समय राजा विराट की ओर से स्वयं इंद्र ही आ जाएं तो मैं यह अपार गोधन छोड़कर जाने वाला नहीं हूं। कर्ण, तुम ऐसा करो कि शत्रु की प्रशंसा में लगे इन महापंडितों को पीछे करके गौओं को सेना के बीच खड़ी कर लो और ऐसा व्यूह रचो कि गोवंश को कोई किसी प्रकार हांककर फिर पीछे न ले जा सके।''

कर्ण ने अभिमान के साथ कहा, ''राजन्, मैं तो कब से इस दिन की प्रतीक्षा ही करता रहा हूं। यदि अर्जुन हमारे सामने युद्ध करने आ गया है तो फिर मैं आज ही युद्ध में उसका संहार करके आपके समस्त ऋणों से उऋण हो जाऊंगा।'' फिर महाधनुर्धर कर्ण ने व्यंग्य के साथ वयोवृद्ध आचार्य की ओर देखते हुए कहा, ''आप घोषणा कर दें कि यदि कोई युद्ध से दूर ही रहना चाहे तो वह अथवा सभी कौरव सैनिक गौओं को लेकर हस्तिनापुर के लिए इसी समय प्रस्थान कर दें। और आप इच्छा हो तो यहीं रहकर मेरा पराक्रम देखें। आज मैं द्वैरथ युद्ध में अकेला ही अर्जुन का संहार कर दूंगा।''

उसकी बातों से आचार्य कृप को क्रोध आ गया। उन्होंने कर्ण को फटकारते हुए कहा, ''सूतपुत्र कर्ण, यह तुम्हारा मिथ्या अभिमान ही कभी तुम्हारे लिए घोर संकट बन जाएगा। जिस अर्जुन ने अकेले ही दानवों आदि को परास्त करके विशाल खांडववन का दहन कर डाला था, अथवा काम्यक वन की गोष्ठ-यात्रा के समय जब तुम भी गंधर्वों के सामने परास्त होकर निवीर्य की भांति अपनी प्राणरक्षा के लिए भाग गए थे, उस समय उन्हीं गंधर्वों को अर्जुन ने परास्त करके हमारे राजा सुयोधन को उनके बंधन से मुक्त करवाया था—वह बात क्यों भूल जाते हो! किसी के लिए भी अर्जुन का अकेले सामना करना एक प्रकार से किसी क्रुद्ध महासर्प के मुंह में स्वयं ही अपना हाथ डालना है। इस समय तुम अभिमानवश अकेले ही जाकर अर्जुन से जूझने का दुस्साहस मत करो। आचार्य द्रोण, आर्य भीष्म, राजा दुर्योधन, अश्वत्थामा, तुम और मैं—हम छहों महारथी मिलकर अर्जुन से युद्ध करें तो संभवत: हम विराट की गौओं को लेकर कुशल से हस्तिनापुर जा सकें। ऐसा करो, व्यूह-रचना करके सेना को सुरक्षित करो और युद्ध के लिए तत्पर हो जाओ।''

आचार्य द्रोण के पराक्रमी पुत्र अश्वत्थामा को भी कर्ण की दंभ-भरी बात अच्छी नहीं लगी थी। कर्ण ने एक प्रकार से आचार्य द्रोण पर ही तो कायरता और भीरुता का आरोप लगाया था। अत: अश्वत्थामा ने भी उसकी भर्त्सना की। बोला, ''सूतपुत्र, यह सब तुम जैसे मित्रों का ही किया हुआ है। तुमने तथा

दुर्योधन ने तो शकुनि की धूर्तता का संबल लेकर वैसा ही कर्म किया, जैसे कोई मूढ़, धन की इच्छा से चंदन की लकड़ी काट डालता है। जुए से जीतकर मिले राज्य पर कौन-सा वीर क्षत्रिय संतुष्ट होगा! लेकिन तुम लोगों की दुर्बुद्धि से प्रभावित राजा दुर्योधन को इसी पर संतोष है। किंतु यह मत भूलो कि उस समय राजसभा में तुम लोगों ने उनकी पत्नी माननीया पांचाली का जो अपमान किया था, उसे पांडव अथवा अर्जुन तो कभी नहीं भूल सकते। उस दिन जिस प्रकार दु:शासन द्वारा राजस्वला, रक्त से सनी, एकवस्त्रा पांचाली को राजसभा में घसीटते हुए लाया गया था, कुंतीनंदन अर्जुन कभी उस अपमान को नहीं भूल सकते। उनके सामने तो तुम लोगों का पड़ना वैसा ही होगा जैसे दावानल की भयंकर ज्वालाओं को कोई सूखा ठूंठ मिल जाए। पल मात्र में वह भस्म हो जाएगा। गांडीव से छूटे, गीध के पंखों वाले सव्यसाची के प्रखर बाण तो पर्वत की शिलाओं को भी बेधने में समर्थ होते हैं! उसके समक्ष अपनी छाती बेधने की सोचकर जो मरना ही चाहते हों, वही आज पांडुनंदन के सामने जाएं; अथवा जिस धूर्त शकुनि के बल पर राजा दुर्योधन ने महात्मा पांडवों का राज्य बरबस अपने अधिकार में कर लिया था, अब युद्ध में भी अपने उसी कुटिल मातुल को बुलाकर अपनी रक्षा करने को कह दें। और जो भी चाहे, युद्ध करें, मैं तो अनाचार का साथी बनकर किसी भी तरह अर्जुन से युद्ध नहीं करूंगा। हां, यदि गोष्ठ की रक्षा के लिए स्वयं मत्स्यनरेश विराट और उनके सेनापति आते हैं तो मैं उनसे अवश्य युद्ध करूंगा।''

संकटकाल में अपने पक्ष में फूट पड़ते देखकर अनुभवी भीष्म को चिंता हुई। उन्होंने हस्तक्षेप करते हुए गंभीर स्वर में कहा, ''दुर्योधन, आचार्यपुत्र अश्वत्थामा अथवा आचार्य कृप ने जो कुछ कहा, वह उचित ही है। किंतु मेरे विचार से इस समय महान् कार्य उपस्थित है और कर्ण ने जो बात कही थी, वह मात्र अभिमानवश नहीं, वरन् अपने पक्ष का उत्साह बढ़ाने के उद्देश्य से ही कही थी। आचार्यपुत्र क्षमा करें, यह समय परस्पर विरोध का नहीं है...''

अश्वत्थामा ने कहा, ''किंतु किसी न्यायपूर्ण कार्य की निंदा करना तो उचित नहीं है, आर्य। मेरे पूज्य पिता आचार्य द्रोण ने जो कुछ कहा, वह मात्र पिछली बातों को याद करके ही तो कहा है। पांडवों पर जो अनाचार होते रहे, उन्हें कोई भी न्यायनिष्ठ, उदार, महात्मा पुरुष कैसे सहन कर सकता है? ऐसे में यदि उन्होंने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन के गुणों का वर्णन किया तो कोई पाप तो नहीं किया। शत्रु के गुणों को भी ग्रहण करने योग्य कहा जाता है!''

दुर्योधन स्वयं इस विवाद से चिंतित हो गया था। पितामह के हस्तक्षेप से बात संभली तो उसने तुरंत आचार्य द्रोण से क्षमा मांगी। कर्ण, भीष्म आदि ने भी कृपाचार्य का संबल लेकर क्षमा याचना की तो द्रोण ने कहा, ''शांतनुनंदन

भीष्म की बात ही मुझे उचित लगती है। अब हमको ऐसा व्यूह बनाकर युद्ध करना होगा कि अर्जुन किसी भी प्रकार राजा दुर्योधन के निकट न पहुंचने पाएं। इसमें जरा भी प्रसाद नहीं होना चाहिए। वनवास तथा अज्ञातवास की अवधि पूर्ण हुए बिना तो अर्जुन का प्रकट होना असंभव ही है, तो भी यदि वे आए हैं और यहां से विराट के गोष्ठ की गौओं को वापस नहीं ले जा सके तो वे हममें से किसी को भी क्षमा नहीं करेंगे... अतः सावधान!''

आचार्य द्रोण ने फिर कहा, ''महात्मा भीष्म ही इसका निर्णय कर सकते हैं कि पांडवों के तेरह वर्षों की अवधि पूरी हो चुकी है अथवा पांडवों से प्रमाद हुआ जो अर्जुन मात्र कोपवश सहसा हमारे समक्ष प्रकट हो गए हैं!''

भीष्म ने कुछ देर सोचकर कहा, ''समय के अनेक छोटे-छोटे काल-विभाग हैं—कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, मास, पक्ष, नक्षत्र, ग्रह, ऋतु और संवत्सर! ये सब परस्पर जुड़कर काल का चक्र बनाते हैं। यदि विधिवत् गणना की जाए तो पांडवों की प्रतिज्ञा की अवधि तेरह वर्ष तो आज से कई मास पहले ही पूरे हो गई है। अब तो उनको वनवास तथा अज्ञातवास करते पूरे तेरह वर्ष, पांच मास और बारह दिन बीत चुके हैं। हम चंद्रमा को आधार मानकर अपनी कालगणना करते हैं। तिथियों तथा पक्ष, मास आदि में समय की जो घटबढ़ होती ही रहती है, उसके अनुसार हर पांचवें वर्ष लगभग दो मास बढ़ जाते हैं। ये मास अधिमास कहे जाते हैं...''

भीष्म की बात से व्यग्र दुर्योधन उनकी ओर हताश-सा देखता रह गया था।

भीष्म ने तुरंत ही कहा, ''और कुछ भी हो, देवी कुंती के पुत्रों के संबंध में मैं इतना निश्चय के साथ कह सकता हूं कि वे लोभी नहीं हैं और राज्य के लोभ से भी ऐसा कोई अनुचित कार्य नहीं कर सकते। ऐसा ही करना होता तो वे इतने पराक्रमी हैं कि जब उन पर अनाचार हो रहा था, उसी समय अपने राज्य को वापस ले लेते और पांचाली के अपमान के लिए भी उसी समय समुचित निराकरण कर लेते, किंतु कुंतीनंदन धर्मराज युधिष्ठिर और उनके भाई कभी क्षत्रियव्रत से नहीं विचलित होते। वे असत्य का आश्रय लेकर अधर्म नहीं कर सकते।''

पल-भर रुककर उन्होंने चेतावनी-सी दी, ''किंतु सावधान! पांडव ऐसे पराक्रमी हैं कि समय आने पर अपना प्राप्तव्य प्राप्त करके ही रहेंगे, भले ही उस पर इंद्र का ही अधिकार हो। मैं तो अब भी यही कहूंगा, राजन्, कि तुम 'अपना वैर-विरोध छोड़कर अब भी पांडवों से संधि कर लो।''

दुर्योधन को यह बात क्यों अच्छी लगती! वह वितृष्णा-सी प्रकट करके

कर्ण की ओर देखने लगा। उसी समय अर्जुन के धनुष का भयंकर टंकार फिर गूंज उठा।

भीष्म ने श्मशान के शमीवृक्ष की ओर से इसी ओर बढ़ते रथ की ओर देखकर कहा, ''दुर्योधन युद्ध में तो एक न एक पक्ष की जय होती है और एक पक्ष की पराजय। और जब अर्जुन किसी युद्ध में भाग ले रहे हों तो परायय की संभावना ही प्रखर होती है। वह देखो, गांडीव का टंकार करते अर्जुन अब आ पहुंचे हैं। तुम तत्काल निर्णय कर लो। मेरा मत तो यही है कि तुम अब भी पांडवों से युद्ध ठाने बिना उनका राज्य उनको सौंपकर संधि कर लो, अथवा समय के अनुसार कार्य करो। यदि संधि नहीं चाहते तो युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ!''

दुर्योधन ने कठोरतापूर्वक कहा, ''पितामह, अब मैं किसी भी मूल्य पर पांडवों को इंद्रप्रस्थ का राज्य तो वापस करूंगा नहीं, अत: युद्ध के लिए जो करणीय हो, उसका ही निर्णय करके शीघ्र उपाय करें।''

भीष्म ने फिर विवाद नहीं किया। पल-भर सोचकर बोले, ''तो फिर, कुरुनंदन, मेरा विचार तो यह है कि तुम सेना का एक चौथाई भाग लेकर उसके साथ सुरक्षित हस्तिनापुर की ओर चल दो। दूसरी चौथाई सेना तुम्हारे पीछे-पीछे गौओं को लेकर राजधानी की ओर चल पड़े। आधी सेना हमारे साथ रहेगी। फिर कोई भी आ जाए, हम उससे युद्ध करेंगे।''

दुर्योधन ने पितामह की युक्ति को मानकर वैसा ही किया।

उनके चले जाने के बाद आर्य भीष्म ने व्यूहरचना की। उनकी संरचना के अनुसार आचार्य द्रोण को बीच में रखकर युद्ध करने का निश्चय किया गया। फिर वे बोले, ''अब व्यूह के वाम भाग की रक्षा बलशाली अश्वत्थामा करें तथा दक्षिणभाग की रक्षा आचार्य कृप करें। अपने अकाट्य कवच से सुसज्जित धनुर्धर कर्ण सेना को साथ लेकर आगे रहें। पृष्ठभाग की रक्षा के लिए मैं स्वयं रहूंगा।''

अर्जुन ने सहसा एक बार फिर गांडीव से प्रचंड टंकार करके एक साथ चार बाणों का संधान किया और व्यूह के मध्य में स्थित अपने गुरु द्रोणाचार्य की ओर लक्ष्य करके छोड़ दिया। उत्तर चकित होकर देखता रह गया। अर्जुन के दो बाण तो जाकर द्रोण के चरणों के निकट गिरे और दो बाण उनके कानों के पास से उनको जरा भी क्षति पहुंचाए बिना सनसनाते हुए निकल गए।

अर्जुन ने कुमार उत्तर को विस्मित देखकर संक्षेप में केवल इतना ही कहा, ''यह मैंने सदा की भांति अपने गुरुश्रेष्ठ को प्रणाम करने के लिए किया है। और कान के पास से गए दोनों बाणों से मैंने उनसे युद्ध की आज्ञा मांगी है। लेकिन अब तुम यथाशीघ्र रथ को कौशलपूर्वक इस प्रकार हांको कि हम

शीघ्र वहां पहुंच जाएं, जहां दुर्योधन है। वह तो कहीं दिखाई नहीं देता। निश्चय ही पितामह ने उसको सुरक्षित कहीं छिपा दिया है अथवा वह युद्धभूमि को छोड़कर चला गया है। इन रथियों-महारथियों से युद्ध करना ही व्यर्थ है। पहले तुम दुर्योधन को ही खोजकर रथ उसके सामने ले चलो, क्योंकि इस अपराध का मूल कारण तो कुटिल दुर्योधन ही है। उस अत्याचारी के कारण व्यर्थ ही निर्दोष सैनिकों का वध करना अनाचार होगा।''

अर्जुन का आदेश पाकर उत्तर ने बड़े कौशल से महारथियों की ओर बढ़ते अश्वों को यत्नपूर्वक रोककर, उनसे बचते हुए उस ओर बढ़ चला जिधर से दुर्योधन के जाने की संभावना थी।

उत्तर ने कुछ ही पलों में रथ को सेना के साथ जाते दुर्योधन के निकट पहुंचा दिया। अर्जुन ने फिर से शंखनाद किया और हुंकारकर अपने महागांडीव से प्रखर बाणों की झड़ी-सी लगा दी। दुर्योधन की रक्षा के लिए जाती सेना में हाहाकार मच गया तो भी उनमें से कोई भागा नहीं। वे अपने स्थानों पर टिके अपने राजा की रक्षा के लिए युद्ध करते हुए अर्जुन के बाणों से धराशायी होने लगे। अर्जुन के शंखनाद तथा धनुष की टंकार और युद्ध में जो भीषण कोलाहल मचा उससे घबराकर गौएं अरक्षित होने के बाद अचानक ही मुड़कर अपने गोष्ठ की ओर भागने लगीं।

एक प्रकार से अर्जुन ने आते ही गोष्ठ को जीत लिया! उन्होंने गौओं को और वेग से गोष्ठ की ओर भागने के लिए विवश-सा कर दिया, फिर उत्तर से बोले, ''राजपुत्र, तुम यही प्रयत्न करो कि हम तत्काल दुर्योधन के पास पहुंच जाएं.... किंतु जरा रुक जाओ, दुर्योधन के बल से शक्तिशाली होकर यह सूतपुत्र कर्ण हमसे जूझने को व्यग्र हो रहा है। पहले तुम मुझे इसके सामने ही ले चलो!''

अर्जुन को दुर्योधन का पीछा करते देखकर कौरवों को चिंता हो गई। वे भी तत्काल अपने रथ लेकर उसी ओर लपके। अर्जुन पर चारों ओर से कौरव महारथी बाणों की वर्षा करने लगे। चित्रसेन, संग्रामजित, शत्रुसह तथा जय आदि कौरव भ्राताओं के साथ और भी कई रथी अर्जुन को रोकने के लिए उन पर विपाठ नामक तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए उन्हें सामने से अवरुद्ध की चेष्टा करने लगे। अर्जुन ने क्रोध के साथ उन पर अपने भयंकर नाराचों की वर्षा कर दी। देखते ही देखते उस घनघोर संग्राम में कितने ही आहत हो गए और कितने ही भाग निकले। श्रेष्ठ योद्धा विकर्ण ने भी अपना कर्तव्य निभाने के लिए अर्जुन के सामने आकर विपाठ बाण बरसाना आरंभ कर दिया, किंतु अर्जुन ने कुछ ही पलों में उसका धनुष काटकर उसके रथ को भी तोड़ डाला। विकर्ण अपनी जान लेकर भाग निकला।

कुछ ही देर में अपने सामने आकर युद्ध करते कई वीरों को अर्जुन ने धराशायी कर दिया। राजा शत्रुंतप मारा गया। फिर कर्ण का अनुज सूतपुत्र संग्रामजित आकर उनसे युद्ध करने लगा। अर्जुन ने उसको पहले रथहीन कर दिया और आहत कर डाला, फिर भी संग्रामजित डटा रहा तो अर्जुन ने उसका सिर काट दिया। उसका वध होते देखकर कर्ण क्रोध से धधक उठा और उसने एक साथ बारह बाणों से अर्जुन को पीड़ित करके उनके अश्वों को भी आहत कर डाला। अर्जुन तब उस पर कुपित गरुड की भांति टूट पड़े। बड़ी देर तक उन दोनों महाधनुर्धरों का युद्ध होता रहा। अंततः अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को इस तरह बींध डाला कि कर्ण को विवश होकर उनके सामने से हट जाना पड़ा। सारथी कर्ण का रथ लेकर युद्ध से भाग निकला। उसके हटते ही मानो कौरव सेना एकदम अरक्षित-सी हो गई। अर्जुन के बाण रक्त पीने वाले क्रूर आकाशचारी पक्षियों की भांति समूह के समूह आकर कौरव सेना का रक्तपान करते रहे। अर्जुन के बाण जिस प्रकार शत्रुओं के शरीरों को छेदकर पार हो जाते थे, उसी प्रकार कुशल सारथी उत्तर द्वारा संचालित उनका रथ भी शत्रुओं की भीड़ को चीरता हुआ अर्जुन ही इच्छा के अनुसार यहां-वहां शत्रुओं को यातना देता हुआ नाच-सा रहा था।

सहसा सामने आचार्य द्रोण को देखकर अर्जुन ने उत्तर को सावधान किया, ''ये हम सब वीरों के परम आदरणीय हैं! तुम पहले रथ द्वारा इनकी प्रदक्षिणा करो। उस समय यदि आचार्य स्वयं हम पर प्रहार करेंगे, तभी मैं उनका उत्तर दूंगा। इससे आचार्य हम पर रुष्ट होकर प्रलयंकर क्रोध नहीं करेंगे।''

द्रोण ने तो उस समय प्रहार नहीं किया। हां, आचार्य कृप से भयंकर संग्राम हुआ। अर्जुन ने उनको युद्ध में तृप्त कर दिया और अंत में उनको भी रथहीन कर दिया। उनको संकट में देखकर कौरव सेना के मान्य सेनापतियों ने कृपाचार्य को यत्नपूर्वक अर्जुन के सामने से दूर हटा दिया।

द्रोणाचार्य ने अंत में अर्जुन पर प्रहार करके मानो अपने सबसे योग्य धनुर्धर शिष्य को युद्ध के लिए आमंत्रित कर दिया। उनका ही आदेश था कि यदि कभी तुमको मुझसे ही युद्ध करना पड़े तो निर्भय युद्ध करना। अर्जुन ने उनको एक बार फिर प्रणाम करके वीरकर्म आरंभ कर दिया। युद्ध बड़ी देर तक होता रहा। अंत में अर्जुन ने कुपित होकर आचार्य के रथ को अपने बाणों की घटा से पूरी तरह ढक-सा दिया। पिता को संकट में देखकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा सहसा झपटकर अर्जुन पर टूट पड़ा। अर्जुन ने उसे आया देखकर उत्तर को संकेत किया और उत्तर ने रथ उसी ओर घुमाकर मानो आचार्य द्रोण को वहां से सुरक्षित निकल जाने का अवसर दे दिया।

अश्वत्थामा स्वयं महाबली महारथी था। किंतु कुछ ही देर के युद्ध के बाद अश्वत्थामा के निषंगों में बाण नहीं रह गए। तभी कर्ण ने अश्वत्थामा की सहायता के लिए दोबारा आकर अर्जुन को बाणों के प्रहार से पीड़ित करना आरंभ कर दिया। अर्जुन ने तब संकट में पड़े अश्वत्थामा को छोड़कर फिर से कर्ण का सामना किया। अतिरथी कर्ण ने इस बार भी अपने पराक्रम से बड़ी देर तक अर्जुन को रोके रखा, किंतु अर्जुन का प्रताप असहनीय था। अंत में उन्होंने फिर कर्ण को रथहीन करके एक अत्यंत तीक्ष्ण धारवाले बाण से उसके वक्ष पर आघात किया, जिससे कर्ण चेतना खोकर मूर्च्छित हो गया। अर्जुन तथा उत्तर दोनों ही सिंहनाद करने लगे। तब कर्ण किसी प्रकार संभला लेकिन फिर से जूझने का उपक्रम न करके वह उत्तर दिशा की ओर भाग निकला।

इसके बाद अर्जुन ने युद्ध करने को आए दु:शासन, विकर्ण तथा विविंशति और दु:सह को भी आहत करके उनको भाग जाने दिया। तब अर्जुन पर एक साथ अनेक महारथियों ने आक्रमण कर दिया, किंतु अर्जुन ने धैर्यपूर्वक उनको भी परास्त कर दिया।

सबसे अंत में स्वयं पितामह भीष्म से भी अर्जुन का युद्ध हुआ। उस समय अर्जुन का गांडीव निरंतर दाहिने-बाएं बाण चलाते रहने के कारण अलातचक्र की भांति नाचता-सा लग रहा था। भीष्म और अर्जुन का युद्ध देखते सभी योद्धा उन दोनों महापराक्रमी धनुर्धरों का विलक्षण कौशल देखकर उनकी सराहना करने लगे। ''दोनों ही योद्धा पराक्रम में उग्र हैं और युद्ध में दुर्जेय!''

अर्जुन कब निषंग से बाण निकालते और कब गांडीव पर चढ़ाकर उसे प्रक्षिप्त करते, यह दिखाई ही नहीं पड़ता था।

पितामह भीष्म को अद्‌भुत युद्ध करते देखकर अर्जुन ने उनका विशाल धनुष ही काट दिया। वह जब दूसरा धनुष उठाकर शरसंधान करने लगे तो अर्जुन ने उसे भी काट दिया और उसी समय विजय के लिए कटिबद्ध अर्जुन ने अत्यंत पीड़ादायी दस तीक्ष्ण बाण भीष्म के वक्षस्थल को लक्ष्य करके मारे तो भीष्म जैसे पराक्रमी भी पीड़ा से विकल होकर कुछ देर तक रथ के कूबर का सहारा लेकर अचेत-से बैठे रह गए। उनके कुशल सारथी ने सोचा, इसी समय के लिए सारथी को शिक्षा दी जाती है कि ऐसे में रथी की रक्षा स्वयं सारथी को ही करनी चाहिए। अपना धर्म निश्चित करके वह गंगापुत्र भीष्म को तुरंत अर्जुन के सामने से हटाकर युद्धभूमि से बाहर चला गया।

और अंत में अर्जुन ने दुर्योधन को दोबारा घेर ही लिया। उस समय दुर्योधन एक साथ अनेक तीखे बाणों से वेधकर अर्जुन पर विजय पाने की चेष्टा करने लगा। उनका युद्ध हो ही रहा था कि रणदुर्मद विकर्ण फिर एक विशाल गज़राज पर सवार होकर अपने अग्रज की सहायता के लिए वहां आ पहुंचा।

उसने हूलकर गजराज को सीधे अर्जुन के रथ की ओर बढ़ा दिया। उसका लक्ष्य संभवतः गजराज द्वारा अर्जुन सहित उनके रथ को ही नष्ट करना था। किंतु अर्जुन ने अपने गांडीव को कान तक खींचकर एक भयंकर बाण उस ओर चला दिया जो गजराज के गंडस्थल को फाड़ता हुआ उसके सिर में पैठ गया। और अगले ही पल गजराज चिंघाड़ मारकर निष्प्राण नीचे गिर पड़ा। इतने विशालकाय गजराज को एक ही बाण से मारने वाले अर्जुन के भय से भयभीत विकर्ण तत्काल भागकर अपने भाई विविंशति के रथ पर बैठ गया। अर्जुन ने उसी समय एक उतने ही तीक्ष्ण बाण से दुर्योधन की छाती भी भेद दी।

गजराज और कुरुराज की यह दशा देखकर कौरव महारथियों के मन से अर्जुन का फिर सामना करने का उत्साह जाता रहा। अब किसी में उनसे जूझने का साहस नहीं रह गया था। अर्जुन ने रहे-सहे योद्धाओं को अपने विलक्षण सम्मोहनास्त्र से अचेत कर दिया और देवदत्त शंख बजाकर मानो विजयघोष कर दिया।

फिर उन्होंने उत्तरकुमार से कहा, ''महाबाहु, अब तुम अपनी अनुजा की इच्छा के अनुसार इन मूर्च्छित कौरव महारथियों के सुंदर वस्त्र ले लो, किंतु तुम महात्मा भीष्म की ओर मत जाना। वे महापराक्रमी सम्मोहन अस्त्र के निवारण की विधि से भिज्ञ हैं। हां, तुम जाकर निर्भय अन्य योद्धाओं के वस्त्र ले सकते हो। देखो, आचार्य द्रोण तथा कृप के श्वेत वस्त्र कितने सूक्ष्म तथा मूल्यवान हैं! महारथी कर्ण के शरीर पर के पीताभ वस्त्र तो लिक्षण ही हैं। साथ ही वीर अश्वत्थामा और दुर्योधन के शरीर पर शोभित नीले वस्त्र भी बड़ी ही विचित्र आभा से देदीप्यमान होते रहते हैं। तुम इच्छानुसार इनकें वस्त्रों का संग्रह कर सकते हो।''

उनके वस्त्रों को लेकर कौतुक से हँसता हुआ उत्तरकुमार जब रथ लेकर युद्धभूमि के मध्यभाग से बाहर चला तब सहसा सम्मोहन से मुक्त भीष्म ने फिर बाणों का संधान करके अर्जुन को आहत किया। उत्तर में अर्जुन ने तुरंत भीष्म का उत्तर दिया और उनके अश्वों को आहत करने के साथ ही उनको भी तीक्ष्ण बाणों से फिर हतप्रभ कर दिया, फिर उनको वहीं छोड़कर वह मध्यभाग से निकल कर घेरे के बाहर जा पहुंचे।

कुछ ही देर में कौरव सेना के सभी महारथी तथा शेष बची सेना वहां से प्रस्थान करने को तैयार होने लगी।

यह देखकर अर्जुन प्रसन्न हुए। वह फिर से लौटकर रणभूमि में चले गए। उन्होंने पितामह भीष्म तथा द्रोणाचार्य के सामने पहुंचकर आदर से मस्तक झुकाकर उनको प्रणाम किया और कुछ देर तक उनसे बात भी करते रहे। उन्होंने अश्वत्थामा, कुरुकुल के श्रेष्ठ पुरुषों—वाह्लीक एवं सोमदत्त आदि को

भी अपने ही ढंग से प्रणाम किया।

किंतु अमर्ष में आकर उन्होंने दुर्योधन को एक बाण मारकर उसके बहुमूल्य रत्नजटित मुकुट को भी काटकर गिरा दिया। दुर्योधन निस्तेज-सा देखता रह गया।

जब कौरव सेना निष्फल होकर लौट गई, तब अर्जुन ने उत्तर से कहा, ''अब शत्रु पराजित होकर चले गए और हमारी गौएं भी सुरक्षित अपने गोष्ठ में पहुंच गई हैं। अत: अब तुम निर्भय प्रसन्न मन से पुरी की ओर चलो।''

मार्ग में कितने ही कौरव सैनिक भयभीत-से, वीरवेष त्यागकर, भूखे-प्यासे उनके सामने आए। वे लोग युद्ध के समय भागकर वन में छिप गए थे। उन्होंने अर्जुन से अभय की विनती की और अपनी दीनता से परिचित कराते हुए उनसे रक्षा करने की प्रार्थना करने लगे। अर्जुन ने उनको अभयदान दिया।

नगर के समीप पहुंचने पर अर्जुन ने कहा, ''महाबाहु उत्तर, तुम वहां चलकर महाराज विराट से सहसा ही पांडवों की वीरता का बखान मत करने लगना। यह सब जो हुआ है, इसको तुम अपना ही कृत्य बताना। कह देना कि तुमने ही शत्रुओं को पराजित करके गायों की रक्षा की है। नहीं तो अचानक पांडवों के विषय में सुनकर महाराज कहीं आघात न संभाल पाएं तो कठिनाई होगी।''

उत्तर ने कहा, ''महाबाहु, आपने जो पराक्रम किया है, वह करने की मुझमें शक्ति कहां? तो भी मैं वचन देता हूं कि आप जब तक आज्ञा नहीं देंगे, तब तक मैं पूज्य पिता से इस विषय में कुछ नहीं कहूंगा।''

अर्जुन ने यह पराक्रम करने के बाद फिर उत्तर को उसी श्मशान के शमीवृक्ष के पास चलने को कहा। वहां उत्तर ने फिर से वृक्ष पर चढ़कर उनके सभी शस्त्र पहले की तरह ही सुरक्षित खोखल में रख दिए। फिर अर्जुन ने पहले की ही भांति अपना बृहन्नला वाला वेष धारण कर लिया और उत्तर के सारथी बनकर नगर की ओर चले।

अर्जुन बीच में ही रुक गए। बोले, ''राजपुत्र, हम दोनों तो अब कुछ देर बाद अपने अश्वों को नहला-धुलाकर उनकी थकान को दूर होने के बाद अपराह्न वेला में नगर में प्रवेश करेंगे, तब तक इन गोपों को जाकर नगर में अपनी विजय की सूचना देने को कह दो!''

उत्तर ने अर्जुन के आदेशानुसार गोपों को राजधानी में जाकर अपनी विजय की घोषणा करने की आज्ञा देकर वहां से भेज दिया।

उन्नीस

राजा विराट जब अपने पराक्रमी योद्धा अनुजों तथा, कंक, बल्लव, ग्रंथिक तथा

गोष्ठपाल तंतिपाल के साथ अपनी राजधानी में पहुंचे तो वहां पहले ही आए दूतों से त्रिगर्तों पर महाराज की विजय का समाचार पाकर एकत्र प्रजा तथा अनेक श्रेष्ठियों ने महाराज की परिक्रमा करके उनकी विजय के लिए जयजयकार किया।

कुछ देर बाद राजा विराट उन लोगों से विदा लेकर अपने अंतःपुर में पहुंचे तो उनको वहां व्याप्त आकुलता से कुछ विचित्र-सा अनुभव हुआ। महारानी सुदेष्णा प्रकट रूप से तो विजय प्राप्त करके लोटे महाराज का स्वागत कर रही थीं, किंतु उनका मन उदास था। महाराज ने आश्चर्य से उनकी उदासी के विषय में पूछा तो वह मात्र 'भूमिंजय...' कहकर सहसा चुप हो गईं।

महाराज का कौतूहल अन्य अंतःपुरिकाओं ने शांत किया। उन्होंने इस ओर से कौरवों के आक्रमण कर देने की सूचना दी और बताया कि कौरव सेना सहित आकर हमारे उत्तरी गोष्ठ की श्रेष्ठ गौओं को लूट ले गए थे। यह सूचना पाकर राजपुत्र उत्तर को ही उनसे युद्ध करने के लिए जाना पड़ा।

राजपुत्री उत्तरा ने आकर अपने पिता को पूरी सूचनाएं दीं। वह बोली, ''कौरवों के छह-छह महारथी योद्धा गोष्ठ का गोधन लूटकर ले जाने के लिए आए हैं। यह सुनकर हमारे बलवान भ्राता ने वीरतापूर्वक जाकर कौरवों को पराजित करने का संकल्प किया। उनका कोई सारथी नहीं था, तब सैरंध्री ने बताया कि हमको नृत्य-संगीत की शिक्षा देने वाली बृहन्नला कभी शूरवीर पांडवों की सेवा में थी, तब उसने कितनी ही बार युद्धों में सव्यसाची अर्जुन का सारथ्य किया था। उसी को सारथी बनाकर अग्रज कौरवों से युद्ध करने गए हैं....''

राजा विराट का माथा ठनका। मात्र बृहन्नला के साथ एक रथ लेकर कुमार उत्तर छह-छह कौरव महारथियों से रक्षित सेना से युद्ध करने गए हैं, यह सुनते ही विराट संतप्त होकर अपने मंत्रियों से बोले, ''आक्रमण करने वाले कौरव हों अथवा कोई और, जब उनको पता लगेगा कि हम पर आक्रमण करने वाले त्रिगर्तों की कैसी दुर्दशा हुई तो कदापि यहां नहीं रुकेंगे। अतः हमारे साथ गई सेना में से जो सैनिक आहत नहीं हुए हैं, उनको संगठित करके सेनापतियों से कहो कि तुरंत कुमार उत्तर की सहायता के लिए प्रस्थान करें। हम भी कुछ ही देर बाद अपने योद्धाओं के साथ उधर ही आएंगे।''

विराट ने अपनी चतुरंगिणी सेना को जाने का आदेश देने के बाद अत्यंत संतप्त होकर अपने मित्र कंक से कहा, ''अनर्थ हो गया! मात्र बृहन्नला जैसे नपुंसक को सारथी के रूप में लेकर उत्तर ने कौरव महारथियों से टकराने का दुस्साहस ही तो किया है! मुझे तो लगता है कि वह आज जीवित नहीं लौटेगा....''

राजा विराट को पुत्र के लिए चिंतित देखकर कंक ने हँसते हुए कहा, "महाराज, आप इतनी चिंता न करें। यदि कुमार का सारथी बनकर बृहन्नला उनके साथ है तो कुमार उत्तर आज कौरव तो दूर, असुर, सिद्ध अथवा महाबली यक्षों पर भी विजय प्राप्त करके ही लौटेंगे। आप तो निश्चिंत होकर उन वीर राजपुत्र के विजयी होकर आने पर उनकी अगवानी का प्रबंध करें।"

उनकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि अचानक ही नगर में आए गोपों से राजपुत्र उत्तर की विजय तथा गोष्ठ की गौओं को फिर से जीतकर सुरक्षित ले आने की सूचना पाकर मंत्रियों ने उत्साहपूर्वक महाराज को यह शुभ संवाद सुनाया।

कौरवों को परास्त करके आने वाले पुत्र की विजय का समाचार पाते ही राजा विराट आवेग से भर उठे। उन्होंने अपने आभूषणों को पुरस्कार में देकर दूतों को संतुष्ट किया। फिर उन्होंने अनेकशः सुशोभना कन्याओं के साथ स्वयं अपनी पुत्री कुमारी उत्तरा को भी श्रृंगार से सज्जित होकर, अपने विजेता भ्राता भूमिंजय की अगवानी करने का आदेश दिया। उन्होंने सारी राजधानी को उत्तर की विजय के पर्व पर सुसज्जित करने को कहा। नगर के सभी चौराहों पर चारण इस विजय की गाथाएं गा-गाकर सुनाने लगे। राजधानी के सभी राजमार्गों को रंग-बिरंगी पताकाओं तथा वंदनवारों से सजाया जाने लगा। इसके अतिरिक्त, महाराज की प्रसन्नता के लिए राजभवन से राजकुल के सभी कुमार तथा योद्धाओं के साथ-साथ उत्तम श्रृंगार से सुशोभित वारांगनाएं भी मधुर गीतों तथा नृत्य से मन को मोहित करती हुई विजेता उत्तर कुमार की अगवानी के लिए नगर के द्वार की ओर गईं।

इतना ही नहीं, एक से एक बढ़कर सुंदर सौभाग्यवती नागरिकाएं भी महाराज के साथ ही मंगलद्रव्य लिए उत्तर कुमार की अगवानी के लिए चलीं। उस समय मत्स्य की राजधानी की शोभा देखकर ऐसा लगता था मानो स्वयं देवराज का स्वागत करने के लिए सुंदरी देवबालाओं के साथ देवताओं के समूह के समूह अमरावती में ससमारोह जा रहे हों।

अपने सभासदों तथा मंत्रियों के साथ स्वयं महाराज विराट के सभी पुत्र कुमार उत्तर का स्वागत करने के लिए नगर के बाहर की ओर चले। उनके साथ बहुमूल्य वस्त्रों तथा अलंकारों से सुशोभित राजकुल तथा नगर की अनेक रूपवती रमणियां भी जा रही थीं। उन तरुणियों तथा रमणियों के साथ पुरवासियों ने भी हाथों में मंगलसूचक द्रव्य ले रखे थे तथा उमंग से भेरी, तूर्य, पटह, पणव, शंख आदि की ध्वनि होती चल रही थी।

अपनी सेना, वस्त्रालंकारों से विभूषित शुभदर्शिनी कन्याओं तथा देवताओं

को भी विमोहित कर लेने में समर्थ उत्तम रमणियों को अगवानी के लिए भेजकर राजा विराट प्रसन्नता के अतिरेक में बोले, ''ओ सैरंध्री, तू क्या राजपुत्र भूमिंजय की अगवानी करने के लिए नहीं गई.... अस्तु कोई बात नहीं, तू जाकर पासे ले आ!'' फिर कंक से बोले, ''आओ कंक! इस सुखद अवसर पर हम पासे खेलेंगे।''

युधिष्ठिर ने आज पहली बार उनको इस निकृष्ट क्रीड़ा से रोका। बोले, ''आज का पर्व तो वास्तव में अपार हर्ष का है, राजन्। किंतु इसको द्यूतक्रीडा जैसी निकृष्ट क्रीड़ा से कलुषित नहीं करना चाहिए। विद्वानों का कहना है कि जब धूर्त जुआरी उल्लास से भरा हो तो उस समय उससे जुआ नहीं खेलना चाहिए। फिर भी मुझे तो आपकी प्रसन्नता के लिए आपकी इच्छा के अनुसार ही करना होगा। यदि आपकी यही इच्छा हो तो फिर खेलें!''

कंक ने खेल आरंभ करने के पहले फिर सावधान करने के लिए कहा, ''आपने पांडवों के विषय में तो सुना ही होगा, महाराज! राजा युधिष्ठिर अपने सारे राज्य तथा अपने सहित अपने भाइयों तक को जुए में हार गए थे! और इसी कारण उनको अपनी लोकविख्यात पत्नी पांचाली का घोर अपमान तक सहना पड़ा था। और फिर उनको बारह वर्ष तक वनवास की दारुण पीड़ा सहनी पड़ी और अंत में अज्ञातवास का वर्ष न जाने किन स्थिति में गुजारना पड़ा है! जुए में आसक्त महान् तथा विद्वान व्यक्ति भी विवेक भूलकर अनर्थ कर बैठते हैं। आपको मैं केवल इसी कारण इस क्रीड़ा के मोहजाल से बचने के लिए कहता हूं, किंतु आपकी आज्ञा हो तो मुझे आपत्ति करने का कोई अधिकार नहीं, आपकी रुचि के अनुकूल करना ही मेरा धर्म है... अतः खेलेंगे ही।''

राजा विराट को अपनी प्रसन्नता के अवसर पर कंक की बातें जरा भी अच्छी नहीं लग रही थीं। वह बोले, ''गोधन, सुवर्ण तथा स्त्रियां—जिनको भी सुरक्षित रखकर आनंद की अनुभूति होती हो, हमको द्यूतक्रीडा की तुलना में ये सब भी तुच्छ तथा निरर्थक लगते हैं!''

उन्होंने जुआ खेलना आरंभ कर दिया।

खेलते-खेलते मत्स्यराज ने उत्साह के साथ कहा, ''देखा कंक, आज मेरे पुत्र ने उन पराक्रमी कौरव महारथियों पर अद्‌भुत विजय प्राप्त करके कितना यश कमाया!''

कंक ने निश्चिंत मन से कहा, ''वह तो है ही महाराज, मैं तो पहले ही कहता था, जिसका सारथी बृहन्नला हो, वह तो देवताओं पर भी सहज ही विजय पा सकता है।''

उनकी बात सुनते ही मत्स्यराज को क्रोध आ गया। वह सारा सम्मान

तथा कंक की ओर से अपने ऊपर हुए सारे उपकार भी भूल बैठे। संभवत: पुत्र की विजय का आवेग उनके विवेक को भी उन्मत्त कर चुका था। एकाएक कुपित होकर बोलें, ''अरें, मूर्ख. ब्राह्मण, तू तो मेरे पुत्र की जगह एक नपुंसक को ही सारा मान दे रहा है। तू यह नहीं सोचता कि इससे मेरा अपमान हो रहा है! अस्तु, तुझे मैं मित्र मानता हूं, अत: क्षमा करता हूं...किंतु फिर कभी ऐसा दुस्साहस नहीं करना। मेरे पराक्रमी पुत्र ने तो आज भीष्म, द्रोण आदि महापराक्रमी योद्धाओं को पराजित करके अद्‌भुत कीर्ति प्राप्त की है....''

कंक ने मानो उनकी बात सुनी ही नहीं। सहसा कहा, ''जहां, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, राजा दुर्योधन तथा महापराक्रमी कर्ण जैसे योद्धा हों, वहां युद्ध में बृहन्नला जैसे वीर के अतिरिक्त और कोई टिक ही कहां सकता है! बृहन्नला के रहते कुमार भूमिंजय उत्तर ने अवश्य उनको पराजित कर दिया होगा।''

राजा विराट ने बिफरकर कहा, ''अरे, मूढ़ कंक! तू तो मेरी बात का उल्लंघन करके अपनी ही बात पर अड़ा है और मेरे बार-बार कहने पर भी अपनी जिह्वा पर नियंत्रण नहीं रखता! सच ही है, यदि राजा न हो तो कोई धर्ममय आचरण कर ही नहीं सकता।'' उन्होंने राजा के रूप में दंड देने के लिए पासे ही उठाकर सहसा कंक के मस्तक पर दे मारे। बोले, ''फिर ऐसी धृष्टता मत करना!''

पासे का प्रहार कठिन था। कंक की नाक से रक्त की धारा फूट निकली। युधिष्ठिर ने तत्काल उसे अपनी हथेलियों में ही रोका और पास ही खड़ी सैरंध्री की ओर देखा। पांचाली तत्काल उनका आशय समझ गई। उसने बढ़कर पास ही रखा स्वर्ण का जलपात्र उठाया और धर्मराज का रक्त उसमें ही रोप लिया।

तभी द्वाररक्षक ने आकर सूचना दी कि विजेता राजपुत्र और बृहन्नला महाराज का दर्शन पाने को उत्सुक, प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राजा विराट ने कहा, ''ठीक है, दोनों को आने दो!'' फिर धीमे से सेवक को आदेश दिया, ''राजपुत्र ही आएं.... बृहन्नला को मत आने देना।''

किंतु जब वह चला तो कंक ने भी धीरे से सेवक से कहा, ''तुम केवल राजपुत्र को ही ले आओ। बृहन्नला को यहां लाने की आवश्यकता नहीं है...'' वह जानते थे कि उनका रक्त बहता देखते ही अर्जुन समूचे मत्स्य को ध्वस्त कर देंगे।

राजपुत्र उत्तर ने आकर महाराज को प्रणाम किया। साथ ही उसने अत्यंत आदर के साथ कंक के चरणों में भी प्रणाम किया।

तभी उत्तर की दृष्टि कंक की नाक से बहते रक्त पर पड़ी। सैरंध्री

अत्यंत विषण्ण मन से उनकी सेवा में रत थी। राजपुत्र उत्तर ने चौंककर कहा, ''इन महाभाग को क्या हो गया? इनकी नाक से रक्त कैसे बह रहा है?''

राजा विराट ने कहा कि स्वयं उन्होंने कंक को दंड दिया है। बोले, ''मैं जब भी तुम्हारे शौर्य की बड़ाई करता हूं, यह कुटिल उस नपुंसक बृहन्नला की बात करने लगता है। बार-बार कहने पर भी नहीं मानता था। राजा के शासन के बिना कोई भी अधर्म पर उतारू हो जाता है। मैंने इसको अपना मित्र माना तो यह मेरा ही अपमान करने लगा!''

उत्तर का चेहरा अचानक ही काला-सा पड़ गया, किंतु अपने को नियंत्रित करके उसने ब्राह्मण का बहाना लेकर कहा, ''आप तो धर्मज्ञ हैं, महाराज, एक तो आपके मित्र, फिर कुलीन, धर्मवान ब्राह्मण का रक्त आपके हाथ से बहना, घोर अनर्थ है... आप इनसे क्षमा मांगिए नहीं तो इनके कोप से हमारा सारा राज्य भी भस्म हो सकता है।''

कंक की नाक से बहता रक्त और महारानी सुदेष्णा की सुंदरी सैरंध्री के मुखमंडल पर भी इस कांड से उभरी, विषाद की गहरी रेखाएं देखकर विराट को भी मन ही मन पश्चात्ताप हो रहा था। अपने विजेता पुत्र के कहने पर उन्होंने कंक से क्षमा मांगकर उनको प्रसन्न करना चाहा।

कंक ने कहा, ''महाराज, इसकी आवश्यकता नहीं। मैंने तो बहुत पहले ही क्षमा का व्रत ले लिया था, अत: आपके अपराध को मैं मन में लाया ही नहीं। आप निश्‍चिंत रहें।''

राजा विराट तो संतुष्ट हो गए, किंतु उत्तर की चिंता मानो और गहरी हो गई थी। उसकी दृष्टि उस समय सैरंध्री की ओर लगी थी, जो कंक के इस प्रकार कहने पर मानो दु:खी होकर दूसरी ओर देखने लगी थी। उसकी अन्यमनस्कता से प्रकट था कि वह इसे भूल नहीं पाएगी और इस विषय में गांडीवधारी अर्जुन से अवश्य कहेगी। वह चिंतित होकर सोचता रह गया।

विराट ने उत्सुकता प्रकट की। बोले, ''हमको तो तुम्हारा अद्‌भुत पराक्रम चकित किए रहा, पुत्र! मुझे विस्तार से बताओ कि तुमने महापराक्रमी भीष्म, आचार्य द्रोण और कृप जैसे प्रचंड योद्धाओं तथा कर्ण, दुर्योधन और अश्वत्थामा आदि पर कैसे विजय प्राप्त की? कुरुकुल के उस महादंभी और अनीति में रत राजा दुर्योधन को तुमने पराजित करके मेरा हर्ष चौगुना कर दिया। मुझे एक-एक करके सब कुछ बताओ।''

उत्तर ने एक बार कंक की ओर देखा, फिर पांचाली की ओर। वह सुंदरी स्वयं भी अपने कमल के समान खिले नेत्रों से उसकी ही ओर देख रही थी। मन ही मन उसे प्रणाम करके उत्तर ने कहा, ''यह जो भी पराक्रम हुआ, महाराज, वह मेरा नहीं है....''

पांचाली ने चौंककर उसकी ओर देखा, फिर मानो वह पलक झपकते समझ गई कि अब रहस्य रहस्य नहीं रहा। लेकिन वह कुछ कहे बिना एकटक उत्तर की ओर देखती रही।

राजा विराट ने चकित होकर कहा, ''तुम कहते क्या हो? युद्ध में तुम्हारे सिवा और कौन गया था? किसने यह पराक्रम किया है?'' उनके स्वर में क्षोभ था।

कुमार उत्तर ने कहा, ''वह तो एक देवपुत्र का मुझ पर उपकार था, महाराज! उस देवकुमार ने ही समस्त कौरवों को पराजित करके हमारे गोष्ठ की रक्षा की है।''

अचानक ही उत्तर ने अनुभव किया कि उसकी चतुराई पर सहसा पांचाली सैरंध्री के अधरों पर धीमी-सी ऐसी मुसकान उभर आई जो एक सीमा तक अदृश्य-सी थी, इतनी कि उत्तर को लगा, उसे भ्रम हुआ है। किंतु तब भी सैरंध्री की मोहक आंखों में कुछ ऐसा था जो मानो उत्तर को प्रोत्साहित कर रहा था। जो भी हो, उत्तर ने अपने पिता को अपने ही ढंग से पूरी कहानी बता दी। वह बोला, ''महाराज, मैं तो छह-छह महारथियों से संरक्षित कौरवों की विशाल वाहिनी को देखते ही भयातुर होकर नगर में भाग आने को था, किंतु उन देवपुत्र ने अचानक मुझे पकड़ लिया... फिर मुझे अपना ही सारथी बनाकर उन्होंने ऐसा प्रचंड पराक्रम किया कि कौरवों में से एक भी योद्धा उन देवपुत्र के सामने नहीं टिक सका। सभी या तो पलायन कर गए अथवा आहत-मूर्च्छित होकर पड़ रहे। आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार उनको वशीभूत कर लेने पर भी उन उदारमना देवपुत्र ने किसी कौरव महारथी का वध नहीं किया। उन्होंने उनसे अपनी सारी गायों को छीन लिया और उनको पलायन कर जाने को विवश कर दिया!''

राजा विराट चकित-चमत्कृत-से बोले, ''तो तुम उन देवपुत्र से एक बार मुझे दर्शन देने की प्रार्थना करके उनको यहां ले आओ, पुत्र! मैं उन उपकारी महात्मा को देखना चाहता हूं।''

उत्तर ने मुसकराते हुए कंक की ओर देखा फिर निकट ही खड़ी, हँसती आंखों से उसी को निहारती सैरंध्री की ओर। वह प्रसन्न होकर बोला, ''मैंने तो उसी समय आग्रह किया था, पूज्य, किंतु वह किसी कारण अभी आने को तत्पर नहीं हुए। हां, उन्होंने यह आश्वासन अवश्य दिया है कि वह एक-दो दिन के बाद स्वयं ही आकर आपको प्रत्यक्ष दर्शन देंगे।''

बीस

कुछ ही देर बाद राजभवन के अंतरंग कक्ष में कुमार उत्तर के साथ सभी पांडवों

की गोष्ठी हुई। उस समय महाभागा पांचाली भी उपस्थित थीं। उन्होंने अपनी ओर से अब प्रकट रूप में कुमार उत्तर की प्रशंसा करके हँसते हुए कहा, ''मैं तो उसी समय समझ गई थी कि कुमार उत्तर पर हमारे बृहन्नला की छाया पड़ चुकी है। अपने देवपुत्र को अब महाराज के सामने ले जाने की तैयारी करो, वत्स!''

उत्तर धन्य हो गया। बोला, ''देवी, मुझ जैसा भाग्यशाली कौन होगा कि मुझे गांडीवधारी कुंतीनंदन का सारथी बनकर उनके साथ युद्धभूमि में विचरने का अवसर मिला। और यह आपकी उदारता से ही संभव हुआ। उस समय यदि देवी ने आकर बृहन्नला को अपना सारथी बनाने को न कहा होता तो कौन जाने उन कौरवों की इच्छा ही पूरी हो जाती। हमारा तो सारा का सारा गोष्ठ ही लुट गया था। और महाराज वहां त्रिगर्तों के साथ युद्ध में रत थे!''

अर्जुन ने हँसकर कहा, ''राजपुत्र! वे दोनों ही शत्रु वास्तव में तुम्हारे गोधन को लूटने का बहाना करके हमको खोजने आए थे।'' फिर उन्होंने महाराज युधिष्ठिर से कहा, ''आते समय युद्ध बंद होने पर पितामह तथा आचार्य से मेरी जो बात हुई, उससे तो पता चलता है कि हमने अब तक तेरह वर्ष से पांच मास और बारह दिन की अवधि अधिक बिता दी है। अब तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि हम एक दिन के लिए भी छिपकर रहें। सच बात तो यह है कि पितामह भीष्म ने बताया—यह गणना चंद्रमा की गति के अनुसार है। हां, उन्होंने इस विषय में सौर वर्ष को मानने वालों से भी पूछा था। उस गणना से भी उस निश्चित अवधि को पार करके कुछ और दिन अज्ञातवास कर लेने के बाद ही हम प्रकट हुए हैं। अत: अब हम पर प्रतिज्ञा भंग करने का दोष तो नहीं लग सकता। आगे तात जो भी निर्णय करें।''

सैरंध्री की काली आंखों में अपार कुतूहल था। वह एकटक धर्मराज की ओर देख रही थी। उसकी दृष्टि को पकड़कर धर्मराज हँसे। बोले, ''अब मेरे पास विलंब करने का बहाना नहीं रहा, देवी, तुम निश्चिंत रहो!'' उनकी बात सुनकर सभी हँसे।

पांचाली ने कहा, ''मैं अपनी पीड़ा के लिए नहीं कहती, किंतु अपने पांचों गंधर्वों को अब एक पल भी अधिक समय तक पीड़ा सहते नहीं देख पाऊंगी मैं। वैसे तो जो आर्यपुत्र कहेंगे, वही हमारा धर्म है।''

''बस, अब एक दिन का विलंब करना भी हमारी कायरता ही मानी जाएगी। हम किसी के भय से नहीं, अपने धर्म और अपनी प्रतिज्ञा के कारण विवश थे। अब तो हम अपना अधिकार लेने को तत्पर हैं। फिर तो चाहे स्वयं इंद्र ही बाधा डालें, हमको कोई अपने अधिकार से एक पल भी अधिक वंचित नहीं रख सकता।'' धर्मराज ने कहा, ''अब आयुष्मान् सहदेव से वार्ता करके

निर्णय करो कि हमारे लिए किस मुहूर्त में, किस प्रकार प्रकट होना उचित होगा।''

बड़ी देर तक चर्चा होती रही। अंत में महाबलशाली पांडवों के प्रकट होने की जो युक्ति निश्चित हुई, वह उत्तर को बड़ी ही नाटकीय लग रही थी। वह हर्ष से उत्फुल्लित होकर रात बीतने की प्रतीक्षा करने लगा।

उसी रात सहसा एक और घटना स्वयं राजभवन में महारानी सुदेष्णा के अंत:पुर में हुई। एकाएक महारानी सुदेष्णा सैरंध्री के कक्ष में आईं और उसके चरण छूकर आंसू-भरे अपने विशाल नेत्रों से उसकी ओर ताकने लगीं।

पांचाली चकित-सी होकर उठ खड़ी हुई। बोली, ''यह क्या महारानी, आप ऐसा किस कारण करती हैं? हम तो अब बहुत ही शीघ्र आपको अपने भार से मुक्त कर देंगे।''

महारानी सुदेष्णा ने अश्रुपूरित आंखों से आभार जताते हुए कहा, ''मैंने कोपवश तथा शोक और भयवश तुमको कितनी ही बार कई कठोर वचन कहे थे, देवी! नहीं जानती कि तुम सचमुच देवी हो, यक्षिणी हो कि गंधर्वी हो, किंतु मैं इतना अवश्य जानती हूं कि तुम तो जो भी हो, हमारी पूज्या हो। और चाहे कोई कुछ भी कहता रहे, किंतु मैं तो जानती हूं कि कल युद्धभूमि में जिस देवपुत्र ने सहसा प्रकट होकर हमारे वत्स उत्तर की रक्षा की और उसे कौरवों पर विजय दिलाने की अद्‌भुत कीर्ति से रंजित किया, वह और कोई नहीं, निश्चय ही तुम्हारा कोई गंधर्व प्रियतम ही रहा होगा। तुमने अपना वचन पूरा किया। तुमको जब तक इच्छा हो, हमारे राज्य और राजभवन को अपना ही मानो। हम तो तुम्हारे उपकार से उऋण ही नहीं हो सकते। जब तक तुम हो, हमारा कल्याण ही करोगी। मुझे अनजान में कहे गए मेरे अपशब्दों के लिए क्षमा कर दो।''

पूरे वर्ष-भर के बाद आज पांचाली ने सहसा विहँसकर कहा, ''महारानी, तुम्हारा अनुमान वास्तव में सत्य ही है। वह महाबाहु देवपुत्र वास्तव में मेरा परम प्रिय गंधर्व पति ही था। और एक बात बताती हूं, तुम मन में कोई व्यथा मत लाना। तुम और तुम्हारी सखियां बार-बार जिस बल्लव को मेरा गुप्त प्रेमी अथवा मुझ पर अपने पतियों से छिपाकर उससे प्रेम करने का आरोप लगाकर हँसती थीं, वह भी वास्तव में मेरे महाप्रतापी मध्यम पति ही हैं। वे किसी कारण तुम्हारे राज्य में छद्मवेष में रहते थे। ऐसे ही और कई रहस्य अब तो तुम पर उजागर हो ही जाएंगे। मैं कोई देवी-यक्षिणी-किन्नरी-राक्षसी अथवा अप्सरा-गंधर्वी नहीं, मानवी ही हूं और मेरे पति भी पराक्रमी मानव ही हैं। वे अपने धर्म पर अडिग रहते हैं और अपने बल-प्रताप के कारण कितनी ही बार ऐसे

अतिमानुषी पराक्रम कर बैठते हैं कि सहज ही किसी को विश्वास नहीं होता। मैं तो तुम्हारे संरक्षण में बहुत सुख से रही। कौन जाने कहीं और होती तो मुझे अपने रूप के कारण और भी कितने ही दु:ख झेलने पड़ते। यहां तो तुमने बहुत दिनों तक अपने वचन की रक्षा की और मुझे वह सब करने को विवश नहीं किया जो मैं कर नहीं सकती थी। तुमसे मेरा मन अत्यंत प्रसन्न है। तुम निश्चिंत होकर आज की रात काटो। फिर तो मैंने कहा था न कि हमारे प्रतापी गंधर्व यहां से जाने के पहले आप सब से मिलेंगे और सदा आप लोगों का हित करके आपके द्वारा हुए उपकारों के लिए कृतज्ञ रहेंगे।''

संभवत: उस समय भी महारानी सुदेष्णा को उसकी बातों पर विश्वास नहीं आ रहा था। उन्होंने बस, सैरंध्री को अनेक बहुमूल्य, उत्तम वस्त्राभूषण आदि देकर कहा, ''यह मेरे उत्तर ने अपनी ओर से देवी को तुच्छ उपहार देने को कहा है। बस, इतनी ही प्रार्थना करूंगी कि देवी इसे स्वीकार करके हम पर अनुकंपा बनाए रहें।''

पांचाली ने देखा, उत्तर ने उपहार में अत्यंत मूल्यवान वस्त्र एवं अलंकार चुनकर भेजे हैं। वह तो इस विषय में अवगत है न कि वह वास्तव में कौन है। उसके अनुरूप ही बहुमूल्य अलंकार थे। हँसकर पांचाली ने उपहार स्वीकार कर लिया और उत्तर को आशीर्वाद दिया, ''तुम्हारा पुत्र अत्यंत शालीन और सुसंस्कृत है, महारानी! उसे उसके देवपुत्र सदा-सदा अपनी छाया देकर यशस्वी बनाएं।''

महारानी सुदेष्णा को इतना आभास तो हो ही गया था कि यह सर्वांगसुंदरी सैरंध्री कोई सामान्य स्त्री नहीं है। और गंधर्वों के विषय में सैरंध्री ने जो आश्वासन दिया था, उसका प्रमाण भी मिल गया था। अब तो महारानी सुदक्षिणा को पूरा ही विश्वास हो गया क्योंकि स्वयं महाराज और उनके साथ गए उनके भाइयों से सुदेष्णा को यह सूचना मिल चुकी थी कि जिस समय त्रिगर्तराज सुशर्मा महाराज विराट को बंदी बनाकर ले जा रहा था, उस समय बल्लव ने अद्भुत पराक्रम दिखाकर उनको मुक्त ही नहीं कराया, वरन स्वयं सुशर्मा को महाराज का दास बनाकर तब उसे छोड़ा था। वह बल्लव भी सैरंध्री का पति ही है! सुदेष्णा को विचित्र-सी अनुभूति हो रही थी— महाराज कितनी ही बार रानियों के मनोरंजन के लिए बल्लव को पिंजरे में बंद करके सिंह आदि हिंस्र जीवों से लड़ाते थे, उस समय अपने पति की दशा देख-देखकर इस अद्भुत सुंदरी के मन पर क्या बीतती होगी! बार-बार उसके सुंदर नेत्रों में क्यों आंसू भर आते होंगे, यह अब महारानी को प्रतीत हो रहा था। वह मन ही मन लज्जित थीं कि सैरंध्री के उत्तम चरित्र की अवहेलना करके वह भी उसको कुलटा समझने लगी थीं। उनको विश्वास-सा हो गया था कि सैरंध्री अपने को

पतिव्रता तो कहती थी, किंतु वह मन ही मन बल्लव के पौरुष और पराक्रम पर रीझकर आपा खो बैठी थी। और अब पता लगा कि वह बल्लव भी उसका एक पति ही है! लेकिन ये लोग इस प्रकार छिपकर क्यों रहते हैं? इतने पराक्रमी होने पर भी इनको किसका भय है? कीचक जैसे बलशाली का और फिर उतने ही बलशाली सौ-सौ उपकीचकों का वध करने वाले वीरों को आखिर भय था तो किससे?

और इस अप्सरा जैसी रमणी के पांच-पांच पति कैसे हैं! इन गंधर्वों में क्या ऐसी कोई परंपरा है? अप्सराओं में तो किसी पुरुष का बंधन नहीं, किंतु वे इस प्रकार तो अपने को पतिव्रता न कहती ही हैं, न होती ही हैं। वे तो सर्वभोग्या मानी जाती हैं। और यह तो अपने को वास्तव में मानवी ही बता रही है! तो फिर मानवों में ऐसी परंपरा कहां है? बस, लोक में एक ही स्त्री ऐसी है जिसके पांच पति हैं, वह है पांचालनरेश द्रुपद की पुत्री! कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारे राज्य में छिपकर रहने वाले ये वीर स्वयं पांडव ही हों.... और यह सैरंध्री.... तो क्या वह लोकविख्यात सुंदरी पांचाली द्रौपदी ही है?

यह बात मन में आते ही सुदेष्णा के शरीर में सनसनी-सी होने लगी। कहीं वह अनजाने में स्वयं सम्राज्ञी द्रौपदी से सैरंध्री की भांति सेवा तो नहीं कराती रहीं!

सुदेष्णा चौंककर उठ बैठीं। मन हुआ, उसी समय जाकर सैरंध्री से बात करें, लेकिन अपने को संभाला। उत्तर कहता था कि कल ही वह देवपुत्र प्रत्यक्ष आएंगे... तो कल क्या इस राज्य में किसी भयंकर रहस्य का उद्‌घाटन होगा!

इक्कीस

उस दिन राजा विराट राजसभा में पहुंचे तो उनको एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई पड़ा—सभा में उस समय कंक और राजा विराट के शेष सभी अनुचर—बल्लव, बृहन्नला, ग्रंथिक तथा तंतिपाल राजोचित वेशभूषा धारण करके राजाओं के लिए रखे आसनों पर बैठे थे। यह देखते ही क्षुब्ध राजा विराट को उनके सारे उपकार भूल गए। आवेश में उन्होंने वक्र दृष्टि से कंक को देखकर कहा, "यह क्या है, कंक! तुमको तो मैंने अपनी सभा में पासे फेंकने वाले का पद देकर रखा था, फिर तुम आज राजाओं जैसा वेष बनाकर ये अलंकार-आभूषण धारण करके किसकी आज्ञा से राजाओं के निमित्त रखे आसनों पर विराजमान हो?"

युधिष्ठिर के पहले ही अर्जुन ने मुसकराते हुए कहा, "महाराज, ये तो देवराज इंद्र के भी आधे आसन पर बैठने के योग्य हैं, आपके अथवा सामान्य राजाओं के आसन की तो बात ही क्या! ये वास्तव में आपकी राजसभा में

जुआ खेलने वाले कंक ब्राह्मण नहीं हैं, ये स्वयं कुरुकुल के चक्रवर्ती सम्राट् महायशस्वी राजा युधिष्ठिर हैं! आपको तो ज्ञात ही होगा कि उनकी धर्मप्रियता, सत्यनिष्ठा, न्याय तथा उदारता लोकविख्यात है। उनके गौरव के विषय में भी आपने सुना ही होगा। यही वह पांडुनंदन युधिष्ठिर हैं, जिनके राजसभा में कभी सैकड़ों राजा तथा समस्त कौरव भी किंकरों की भांति आकर उनकी चरणपूजा करते थे। ये जब कुरुदेश में चलते थे तो हजारों गजराज तथा रथ इनके पीछे-पीछे चला करते थे। आठ सौ सूत-मागध इनका कीर्तिगान करते रहते थे। इन्होंने अपने पराक्रम से पृथ्वी के समस्त भूपालों को वैश्यों की भांति वश में करके उनसे कर लिया था और राजसूय के समय उनसे पादवंदना के साथ ही मूर्धाभिषेक करवाया था। ये अपनी प्रजा का पुत्रों की भांति पालन करते थे। इनके दिए गए धन से अठासी सहस्र स्नातकों का पालन होता था। लोभ-मद-मोह और क्रोध से परे इन इंद्रियजयी महाराज में ऐसा कौन-सा अभाव अथवा दोष है कि ये राजसिंहासन पर बैठने योग्य नहीं हैं?''

अर्जुन के ओजस्वी कंठ और युधिष्ठिर के तेजस्वी स्वरूप को देखकर स्तब्ध राजा विराट सहसा आसन छोड़कर खड़े हो गए थे। वह चकित दृष्टि से उनकी ओर देखते ही रह गए।

उसी समय भूमिंजय उत्तरकुमार ने कहा, ''तात, हम वास्तव में आज इन महाभाग पांडवों का प्रत्यक्ष दर्शन करके धन्य हो गए। हमारा सौभाग्य है कि ये पांचों महाबली पांडव नियति की चंचलता से विवश होकर आपके अधीन मत्स्य देश में पूरे एक वर्ष से अज्ञातवास करते रहे हैं। आपने महाराज युधिष्ठिर को तो अब पहचान ही लिया होगा। अब इनको देखिए—बल्लव के नाम से आपके सूपाध्यक्ष ये महाबली मल्लराज वास्तव में स्वयं मध्यम पांडव भीमसेन हैं। इन्होंने ही हमारे अनाचारी मातुल कीचक का उनके अपराध के कारण वध कर दिया था और फिर सैरंध्री को भी जीवित ही भस्म करने के इच्छुक उपकीचकों का भी संहार कर दिया था। इन महाबाहु के प्रताप से ही तो आप स्वयं त्रिगर्तराज के बंधन से मुक्त होकर, उनको पराजित करके, फिर अपने राज्य को पा सके हैं। और श्याम वर्ण के यह यूथपति गजराज के समान विशालकाय महाधनुर्धर स्वयं अर्जुन ही हैं जिन्होंने कल युद्ध में कौरवों को पराजित करके उनको हस्तिनापुर भाग जाने को विवश कर दिया। यही वह देवपुत्र हैं, जिनकी कृपा से कौरवों से हमारे गोष्ठ की रक्षा हो सकी थी। मुझे सारथी बनाकर इन्होंने छहों कौरव महारथियों को परास्त कर दिया था। महाराज युधिष्ठिर के पास बैठे रूपवान तथा बल और विक्रम के लिए विख्यात वे दोनों योद्धा माद्री देवी के युग्मक पुत्र आर्य नकुल एवं सहदेव हैं, जो अंबा माद्री की अपेक्षा देवी कुंती के परमप्रिय पुत्र हैं। यही दोनों वीर आपके राज्य में ग्रंथिक

तथा तंतिपाल के रूप में रहकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते रहे हैं....'' उत्तर ने अटककर सैरंध्री की ओर देखा।

''महाराज, अब इन साक्षात् लक्ष्मी के समान तेजस्विनी, उत्तम अंगों से अपूर्व छटा बिखराती, शोभासंपन्न परम रूपवती देवी को देखिए। यही राजा द्रुपद के यज्ञ से जन्म लेने वाली यशस्विनी देवी पांचाली द्रौपदी हैं, जिनकी कीर्ति सारे लोकों में छाई रहती है!''

पांडवों तथा पांचाली का परिचय पाकर विराट कुछ देर तक तो अवाक् ही ताकते रहे, फिर अपने को बरबस वश में करके बोले, ''हम वास्तव में भाग्यशाली हैं कि महात्मा पांडवों ने अपने निवास के लिए हमारे राज्य को चुना था। तो भी मैं यह सोचकर व्यग्र हूं कि अनजाने ही इन महानुभावों के प्रति हमसे न जाने कितने अपराध होते रहे हैं....''

उन्होंने पांडवों से तथा पांचाली से विशेष रूप से क्षमा मांगी।

उन माननीय अतिथियों के उपयुक्त उत्तम आवास में उनके विश्राम की व्यवस्था कर दी गई।

राजसभा उस दिन इतनी ही देर तक रही।

फिर अपने भवन में जाकर अपने पुत्रों तथा महारानी सुदेष्णा को यह सुखद संवाद सुनाने के बाद राजा विराट ने कहा, ''अपने अपराधों को क्षमा कराने के लिए तथा अपनी कीर्ति और शक्ति का विस्तार करने के लिए क्या यह उचित नहीं होगा कि हम अपनी पुत्री कुमारी उत्तरा का पाणिग्रहण संस्कार स्वयं सव्यसाची अर्जुन से कर दें?''

उनका प्रस्ताव सभी को अच्छा लगा। पूरी तरह विचार-विमर्श करने के बाद राजा विराट अपने पुत्रों, मंत्रियों तथा अनेक गण्यमान्य सभासदों एवं राज्य के माननीय श्रेष्ठियों के साथ उत्तर को आगे करके महाराज युधिष्ठिर से मिलने गए।

उनकी विधिवत् अभ्यर्थना करने के बाद उन्होंने अर्जुन से अपनी पुत्री उत्तरा को पत्नी के रूप में ग्रहण करने की विनती की, किंतु अर्जुन ने तुरंत ही कहा, ''नहीं महाराज, मेरा अपनी पुत्रीवत् शिष्या से विवाह करना अपवाद होगा! मैं दोनों कुलों की मर्यादा पर किसी प्रकार का कलंक नहीं लगने देना चाहता। हां, मैं उत्तरा को अपने पुत्र के लिए अवश्य स्वीकार करता हूं। मेरी पत्नी सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु हर प्रकार से आपकी पुत्री के योग्य है। वह वासुदेव कृष्ण का परम प्रिय भागिनेय है और उन्होंने स्वयं ही उसे शस्त्र एवं शास्त्रों की शिक्षा दी है। हमें इस संबंध से बड़ी प्रसन्नता होगी। भरत तथा मत्स्य राजवंशों के बीच यह संबंध दोनों के ही गौरव के अनुरूप है!''

राजा विराट को तो इसमें आपत्ति हो ही नहीं सकती थी।

यही निश्चित रहा।

दोनों पक्षों की सहमति हो जाने पर भव्य समारोह के साथ विवाह की तैयारी की जाने लगी।

फिर तो महाराज युधिष्ठिर ने अपनी ओर से सभी संबंधियों तथा सुहृदों को इस विवाह के अवसर पर अपने सुयोग्य दूतों द्वारा निमंत्रण भेजा।

पांडवों की प्रतिज्ञा के तेरह वर्ष पूरे हो चुके थे और उनके प्रकट होने पर ऐसा लगा मानो पहले की भांति ही एक बार फिर पांडवों का पुनर्जन्म-सा हुआ हो। वारणावत से अदृश्य होने के बाद उनके विषय में सब यही तो सोचते थे कि दुर्योधन के षड्यंत्र से उनकी मृत्यु ही हो गई। ऐसे भी तेरह वर्षों की यह अवधि उससे कम दुःखदायी नहीं थी। लेकिन इस बार फिर पांडवों का उदय हो रहा था—लगभग उसी संदर्भ में। तब अर्जुन ने लक्ष्यबेध करके महासुंदरी पांचाली को जीतकर उससे विवाह किया था.... और इस बार स्वयं अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का विवाह हो रहा था मत्स्यराज विराट की कन्या से।

मत्स्य देश की राजकन्या उत्तरा के साथ विधिपूर्वक अभिमन्यु का विवाह-संस्कार संपन्न होने के बाद पांडव पक्ष के सभी राजा तथा उनके परिजन आनंद मनाने लगे। उस समय राजा विराट की राजधानी की शोभा देवताओं से भरी, इंद्रलोक की राजधानी अमरावती की-सी हो रही थी। वहां पांडवों तथा वासुदेव कृष्ण की ओर से आमंत्रित समस्त यादव कुल तथा पांचालों-सृंजयों के महान् योद्धाओं के साथ ही अन्य अनेक राज्यों से आए हुए अतिथि एकत्र हुए थे। वह रात आमोद-प्रमोद में ही बीती।

पांडवों ने वेष बदलकर पूरे एक वर्ष तक राजा विराट के यहां रहते हुए उनकी सेवा में दिन व्यतीत किए थे।

यह जानकर राजा विराट प्रसन्न तो थे, किंतु महाराज युधिष्ठिर जैसे लोकविख्यात सम्राट् से उन्होंने कंक के रूप में वर्ष-भर पासा फेंकने वाले द्यूतकला में निपुण सामान्य सभासद् की भांति अपनी सेवा करवाई थी और उनके भीम, अर्जुन तथा माद्रीनंदन जैसे अश्विनीकुमारों के समान सुंदर तथा महारथी भ्राताओं से इतने समय तक अनुचर की भांति काम करवाया था; फिर जब भीम जैसे पराक्रमी ने त्रिगर्तों के हाथ से उनको मुक्त करवाया था, तब भी उनका उचित आदर-मान नहीं किया था। यह सब राजा विराट के मन में कसक रहा था। अब उनको अवसर मिल गया था। अर्जुन के समान ही बलशाली तथा सुदर्शन उनके पुत्र अभिमन्यु को अपना जामाता बनाकर वह प्रसन्न थे और इस बात से और भी उत्साहित थे कि बारह वर्ष के वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास में बिताने के बाद अब न्यायपूर्वक पांडव अपने राज्य के

अधिकारी हो गए थे। और इस विषय में उनकी ओर से राजाओं को एकत्र करके समुचित बलसंग्रह का सुयोग भी राजा विराट को ही मिल रहा था। उनको विश्वास था कि कल को पांडव फिर अपने राजपद को प्राप्त करके पहले की ही भांति अपने पराक्रम से सारे भरतखंड में अपनी विजय का डंका बजा देंगे। उनके साथ स्वयं वासुदेव कृष्ण हैं और बलशाली यादवसंघ की अपार शक्ति है। ऐसे में उनको राज्य पाने से कोई रोक नहीं सकता। इस महान् कार्य की सफलता में स्वयं राजा विराट को भाग लेने का अवसर तो अपने-आपमें सुयोग ही कहा जाएगा। इसी कारण राजा विराट अपनी शक्ति-भर अतिथियों का स्वागत-सत्कार करने में लगे थे।

पांडवों की महारानी पांचाली द्रौपदी के प्रति अपने साले कीचक द्वारा अपराध करने पर भी उन्होंने कीचक को कोई दंड नहीं दिया था। ऊपर से जब कीचक की रहस्यमय ढंग से मृत्यु हो गई थी तो भयवश उन्होंने महारानी द्रौपदी को तत्काल अपने राज्य से निकल जाने का आदेश भी दे दिया था। वह तो रानी सुदेष्णा ने अपनी बुद्धि से, महाबली गंधर्वों के भय से, द्रौपदी के साथ अपमानजनक व्यवहार नहीं किया और उनको अपनी इच्छा के अनुसार जब तक मन चाहे, वहां निवास करने की अनुमति दे दी थी। राजा विराट यह सोचकर संकट में पड़ जाते हैं कि यदि सुदेष्णा ने भी कीचक के वध से दुःखी होने के कारण कहीं महारानी द्रौपदी को तत्काल ही राजभवन से निकाल दिया होता तो आज उन पर क्या बीतती। कौन जाने ऐसे में भीम के कोप से वह स्वयं जीवित भी होते कि नहीं....!

राजा विराट के वे अपराध तो मानो किसी को याद ही नहीं रह गए थे। महाराज युधिष्ठिर उनकी सुव्यवस्था से अत्यंत प्रसन्न थे। यहां तक कि स्वयं कृष्ण ने राजा विराट के आतिथ्य की सराहना की थी। हलधर बलदेव ने तो जी-भर वारुणी का सेवन कर-करके हर्ष से राजा विराट को धन्यवाद दिया था और यह इच्छा व्यक्त की थी कि उनका मन होता है कि अपने भागिनेय अभिमन्यु की इस समृद्ध ससुराल में ही बस जाएं।

राजा विराट ने उनकी प्रसन्नता को अपना भाग्य कहकर अनुरोध किया था, ''आर्य जब तक चाहें, हमारा आतिथ्य ग्रहण करके हमें धन्य करें। यह तो हमारे लिए गौरव की ही बात होगी कि अतिरथी बलदेव को हम पराक्रम से तो नहीं, वारुणी देवी की मदभरी कृपा से अवश्य जीत पाए।''

राजा विराट की चतुराई पर सभी हँस पड़े थे। बलभद्र ने तो उनको हृदय से लगाकर कहा था, ''हम तो बिना पराक्रम के ही आपके अधीन हुए, राजन्। हमारा अभिमन्यु ही हमको पराजित करने के लिए बहुत है... और हम जानते हैं कि सव्यसाची अर्जुन से शिक्षा पाने के बाद राजदुहिता उत्तरा हमारे पराक्रमी

भागिनेय को अवश्य जीत लेगी। अपने पुत्र के लिए ही हारने का उपाय कर दिया है सव्यसाची ने!''

उत्तर में स्वयं उत्तरा ने आकर उनके चरण छू लिए थे। बोली, ''आर्य का आशीष सिर-माथे, किंतु हम तो आर्य के भागिनेय से हारकर ही सुखी होंगे, जीतकर नहीं। हमने अपनी अंबापदीय महारानी पांचाली से ऐसी ही शिक्षा पाई है।''

बलदेव ने अट्टहास करके उसे आशीर्वाद देते हुए कहा, ''जब हमारी भगिनी पांचाली भी तुमको सीख दे चुकी है तो पुत्री, मेरा यही आशीष है कि साध्वी द्रौपदी की शिक्षा को ग्रहण करके ही तुम सारे विश्व को जीत लोगी। देखता हूं कि बेचारे अभिमन्यु के साथ इस वारुणीप्रेमी बलदेव के अतिरिक्त कोई नहीं है। उसके माता तथा पिता दोनों ही अपने पुत्र के विरुद्ध अपनी वधूटी की ओर ही हैं, तो मैं ही क्यों अलग रहकर अपना मान कम कराऊं? तू मेरे आशीष से अभिमन्यु-विजय करेगी, पुत्री!''

उत्तरा लज्जा के कारण खुलकर इस आशीष पर हँस तो नहीं सकी, लेकिन उसका रोम-रोम हँस रहा था।

अंत में अर्जुन ने महाबली बलदेव को प्रणाम करके कहा, ''जब ऐसे महाबलशाली मातुल का आशीर्वाद हो तो हम जैसे सामान्य पुरुषों का क्या बल?''

युधिष्ठिर सहित सब हँस दिए।

तब पांचाली ने आकर बलदेव को प्रणाम किया। बोली, ''अभिमन्यु के साथ तो वासुदेव कृष्ण और बलदेव जैसे महापराक्रमी मातुल थे, सो मैं अपनी वधूटी के लिए डरती थी! अब तुमने आशीष देकर उसको अजेय बना दिया, भैया! अब यदि अभिमन्यु हारता है तो भी उसका यश ही होगा। मातुलों की ओर से तो वह ऐसे ही अजेय है।''

कृष्ण ने हँसते-हँसते निकट ही खड़े अर्जुन को आलिंगन में भरकर कहा, ''हमारे महापराक्रमी भ्राता का अनादर करती हो, पांचाली! जो काल को भी पराजित कर सकने में समर्थ है, ऐसे सव्यसाची का पुत्र तो ऐसे ही अजेय है। हम तो आशीर्वाद देकर ऐसे ही यशस्वी हो गए!''

अर्जुन ने आंखें भरकर कहा, ''तुम तो हमारे सब कुछ हो, जनार्दन! जो भी है, सारा यश तो तुम दोनों भ्राताओं का ही है। हम तो निमित्त मात्र हैं।''

बलदेव ने उनको आशीर्वाद देकर हँसते हुए कहा, ''जब तुमको धर्मराज की ओर से अनुमति मिले तो आकर मेरे साथ एक चषक वारुणी का स्वाद लेना। तब तुमको लगेगा कि वास्तव में तो विश्वविजेता तुम्हीं हो, धनंजय! हम तो तुम्हारे मामा के बेटे हैं... बस, इसलिए तुम्हारे पक्षधर हैं....''

सभी राजा हँसने लगे। महाबली बलदेव की ओर से वरुणी का आमंत्रण मिलने का अर्थ था कि वास्तव में अर्जुन महाभाग्यशाली हैं, जो हलधर बलदेव उनको अपने साथ बैठाकर वारुणी का चषक देने योग्य मानते हैं।

अंत में धर्मराज युधिष्ठिर ने ज्येष्ठ होने के नाते कृष्ण बलदेव-सहित सभी को आशीर्वाद देकर विश्राम की अनुमति दी।

बाईस

अगले दिन ही विशाल राजसभा निश्चित थी। इस सभा में पांडवों के विषय में निर्णय लिया जाना था कि उनको दुर्योधन से अपना राज्य पाने के लिए क्या युक्ति अपनानी चाहिए।

मत्स्यराज की वह राजसभा समृद्धि का प्रतीक-सी लग रही थी। सभा के वातायन, गवाक्ष आदि मणियों तथा प्रवाल आदि मूल्यवान रत्नों से बने थे। रत्नों के ही जगमग करते वंदनवार टंगे थे। राजसभा की दीवारों तथा फर्श पर भी रत्नों से ही सुरम्य चित्रकारी की गई थी। कहीं हंसमिथुन की शोभा थी तो कहीं उन्मद नृत्य में थिरकती अप्सराओं की मनोरम प्रतिमाएं जीवंत-सी प्रतीत होती थीं। उस विशाल राजसभा में राजाओं के योग्य मणिजटित सिंहासन लगे थे। चारों ओर सुगंधित पुष्पों की मालाएं टंगी थीं, जिससे सारा परिवेश सुरभित हो रहा था।

प्रभातवेला में दैनिकचर्या से निवृत्त होकर राजागण उत्कंठावश जल्दी ही राजसभा में आने लगे थे। सबसे आगे स्वयं राजा विराट तथा पांचालराज द्रुपद ने आसन ग्रहण किया। वास्तव में वे दोनों ही वयोवृद्ध सम्माननीय योद्धा भी थे, तथा उनका यश लोकविख्यात था। उनके बाद यादवों के महान नेता यशस्वी वसुदेव के साथ उनके महारथी पुत्रों बलदेव तथा कृष्ण ने भी आकर आसन ग्रहण किया। बलदेव आकर पांचालराज द्रुपद के निकट ही बैठे। उनके साथ ही वृष्णिकुल के महापराक्रमी शिनि यादव के पौत्र अतिरथी योद्धा युयुधान सात्यकि बैठे थे। परम सम्माननीय राजा विराट के निकट युधिष्ठिर के साथ स्वयं कृष्ण ने अभिनंदन करने के उपरांत आदरपूर्वक प्रस्तुत किया गया आसन ग्रहण किया। पंचाल के प्रतापी धृष्टद्युम्न, शिखंडी आदि राजपुत्र भी वहां आए थे। उनके साथ ही शेष चारों पांडव– भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव बैठे। देवकीनंदन कृष्ण के युद्धकुशल वीर पुत्र प्रद्युम्न तथा सांब के साथ ही अन्य बहुत से पांचाल तथा यादव योद्धा बैठे थे। और उनके साथ ही सुभद्रानंदन अभिमन्यु तथा द्रौपदी के पांचों पुत्र भी विराजमान थे। सौंदर्य, कांति तथा बल-पराक्रम में पांचाली के पांचों पुत्र पांचों पांडवों के प्रतिरूप ही जान पड़ते थे।

बहुमूल्य वस्त्रों तथा रत्नजटित आभूषणों से राजसभा जगमगा रही थी।

अनेक राज्यों के अतिरथी तथा महारथी राजाओं एवं राजपुत्रों के बीच आरंभ में रुचि के अनुकूल तथा समय के अनुरूप अभ्यर्थना, कुशल-संवाद के उपरांत विविध विषयों पर चर्चा होने लगी थी। किंतु कुछ देर बाद ही सभा में होती अभिवादनों तथा कुशल-प्रश्नों की गुंजार बंद हो गई। अब सबके मन में उस विषय में जानने-सुनने की उत्कंठा जाग उठी थी, जिसके लिए इस सभा का आयोजन किया गया था। लगभग सभी की आंखें वासुदेव कृष्ण की ओर लगी थीं। वास्तव में पांडवों के हित लिए के कृष्ण ने ही इस सभा को संगठित करने की प्रेरणा दी थी। लोगों को स्वभावत: कृष्ण से ही प्रसंग आरंभ करने की आशा थी।

अंतत: कृष्ण ने ही सबसे पहले पांडवों के विषय में बात आरंभ की। उन्होंने गुरु-गंभीर स्वर में समस्त राजाओं को संबोधित करते हुए कहा, ''आप सभी पिछली घटनाओं से तो परिचित हो ही गए होंगे...जब महाराज युधिष्ठिर ने अपने भ्राताओं के साथ पराक्रमपूर्वक दिग्विजय करके राजसूय किया तो उनका ऐश्वर्य धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन से सहा नहीं गया और उसने अपने मातुल शकुनि की सहायता से पांडवों को छलपूर्वक जुए में हारा घोषित करके उनके समृद्ध राज्य का अपहरण कर लिया। उस समय नारियों में रत्न तथा परम माननीया पांचालदुहिता महारानी द्रौपदी का अपमान भी किया गया था। वह सब पांडवों ने मात्र इस कारण सहन कर लिया कि वे महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा से विवश थे। उन्होंने अब बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा को सफलतापूर्वक व्यतीत कर लिया है।

''आप सभी राजा पांडवों के बल-विक्रम से भी परिचित हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि वे चाहें तो विश्व में कोई उनको पराजित कर नहीं सकता। वे सहज ही हस्तिनापुर को भी जीतकर उसे अपने राज्य इंद्रप्रस्थ में मिला सकते थे, किंतु वीर पांडवों ने धर्मज्ञ राजा युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा से बंधकर तेरह वर्ष घोर विपदा सही तथा मात्र धर्म और वचन की रक्षा के लिए, समर्थ होते हुए भी छद्मवेश में अनुचर बनकर सेवा करते हुए एक वर्ष काटा है। ऐसी अवस्था में अब तो धर्म के अनुसार उनको उनका राज्य वापस मिल ही जाना चाहिए। किंतु मुझे इसमें संदेह है। क्योंकि पांडव जब बालक ही थे और एक प्रकार से अपने पिता के ही राज्य में आश्रितों की भांति अपनी माता देवी कुंती के साथ हस्तिनापुर में रहते थे, उस समय भी धृतराष्ट्र के कुटिल पुत्रों ने अपनी ओर से बार-बार पांडवों की हत्या करने का षड्यंत्र किया था। दैवयोग से और अपने परम हितैषियों के उद्योग से, वे जीवित रहे। फिर उनको खांडवप्रस्थ के घोर वनप्रांत का राज्य देकर बहला दिया गया। तो भी वे चुपचाप गुरुजनों का विरोध किए बिना वहां जा बसे। फिर अपने पराक्रम से उन्होंने अपने राज्य को

संपन्न किया और विजय करके राजसूय तक किया। लेकिन दुर्दैववश वे शकुनि के कपटजाल में फंसकर फिर वनवासी हो गए। यह सब मैं केवल इस कारण कह रहा हूं कि आप सबको धृतराष्ट्र के पुत्रों तथा उनके कुटिल मित्रों के विषय में पूरी जानकारी मिल जाए।

''वह राज्य युधिष्ठिर ने दुर्योधन अथवा उसके पिता से छलपूर्वक नहीं प्राप्त किया था, वरन अपने पराक्रम से खड़ा किया था। वह राज्य तो दुर्योधन ने ही छल से पाया है। उसने पांडवों की राजलक्ष्मी का अपहरण किया है। उसका उस राज्य पर किसी भी न्याय से अधिकार नहीं है। अब हम चाहते हैं, और धर्म भी यही कहता है, कि पांडवों को उनका राज्य फिर से मिल जाए। लेकिन दुर्योधन इस बीच जिस प्रकार से वन में भी पांडवों को समाप्त करने के षड्यंत्र करता रहता था, उससे यही लगता है कि वह सहज ही पांडवों की बात नहीं मानेगा। ऐसे समय में हमको यही सोचना है कि ऐसा क्या उपाय किया जाए, जिससे दुर्योधन का कोई अहित न हो और पांडवों को उनका राज्य मिल जाए।

''तो भी मैं हर किसी को इस विषय में सावधान कर देना चाहता हूं कि एक ओर तो पांडव अपने धर्म पर अडिग रहकर हर विपदा झेलते रहे और दूसरी ओर, धृतराष्ट्र के पुत्र उनको हर प्रकार से हानि पहुंचाने का ही प्रयास करते रहे हैं। इस कारण सभी संबंधियों तथा हितचिंतकों का कर्तव्य है कि वे उचित रूप से कौरवों को समझाएं, जिससे ऐसा समय न आए कि कौरवों और पांडवों के बीच विनाशकारी युद्ध छिड़ जाए। युद्ध किसी के हित में नहीं होता। और रक्तपात होने लगेगा तो उसकी कोई सीमा नहीं। पांडवों को यदि फिर से छलने की चेष्टा की गई तो वे निश्चय ही अपना अधिकार पाने के लिए युद्ध का सामना भी करेंगे। यह सोचना उचित नहीं कि पांडवों का पक्ष दुर्बल है और वे हस्तिनापुर की सेनाओं से कैसे जीत पाएंगे! आखिर न्याय के लिए पांडवों की ओर से उनके भी सुहृद-मित्र तो आएंगे ही। यद्यदि युद्ध की बात करना अभी उचित नहीं, क्योंकि अब तक यह निश्चित नहीं कि दुर्योधन इस विषय में क्या करना चाहता है।

''अतः मेरा यही विचार है कि पहले तो पांडवों की ओर से दुर्योधन का मत जानने के लिए राजा धृतराष्ट्र की सभा में एक दूत जाए, जो पांडवों की ओर से विनयपूर्वक अधिकार मांगे। निश्चय ही इस काम के लिए कोई कुलीन, विद्वान् तथा सुसंस्कृत सतर्क पुरुष ही दूत बनाकर भेजा जाना चाहिए, जो समय के अनुसार उचित-अनुचित का निर्णय कर सके और व्यक्तिगत मान-अपमान से ऊपर रहकर, किसी कटु बात पर भी अपने रोष को वश में रखकर, अपने तर्कों से उनको पांडवों का राज्य वापस देने की बात समझा सके। इसी में

पांडवों, कौरवों तथा हम सभी सुहृदों-मित्रों का भी हित है!''

राजसभा एकाग्र होकर कृष्ण के तर्कसंगत वचन सुनती रही और उस पर गहराई से विचार भी करती रही।

कृष्ण के मौन होकर बैठ जाने पर बलदेव ने कृष्ण के सुसंगत भाषण तथा दूत भेजने के प्रस्ताव की सराहना की और अपनी ओर से बोले, ''मेरे अनुज देवकीनंदन कृष्ण ने जो धर्मसम्मत बात कही है, वह युधिष्ठिर तथा दुर्योधन दोनों के हित में है। मेरा भी यही विचार है कि उन्होंने जो दूत भेजने की बात कही है, वास्तव में वही उचित तथा करणीय है। दुर्योधन आदि को क्रोध दिलाए बिना ही किसी प्रकार पांडवों का हित साध लिया जाए, यही उचित है। वास्तव में उन लोगों ने सर्वथा अन्याय ही किया हो, यह कहना भी ठीक नहीं है। जो भी हुआ है, उसमें स्वयं युधिष्ठिर का अपराध भी कम नहीं है। ये भी जुए में पूरी तरह से आसक्त हो गए थे, उसी का फल इनको अपने सभी बंधु-बांधवों के साथ भुगतना पड़ा है। इन्हें स्वयं द्यूतविद्या का उतना ज्ञान नहीं है, यह जानते हुए भी यह जुए का निमंत्रण पाकर उसमें प्रवृत्त हुए। फिर गांधारराज सुबलपुत्र शकुनि द्यूतविद्या का आचार्य है, यह जानते हुए भी उन्होंने शकुनि से जुआ खेलना स्वीकार कर लिया। वहां तो दुर्योधन, कर्ण आदि और भी बहुत से लोग थे, उनमें से किसी को नहीं ललकारकर इन्होंने स्वयं शकुनि से खेलना निश्चित किया। ऐसे में तो इनका हारना निश्चित ही था। इसमें शकुनि का क्या दोष? अथवा दुर्योधन का क्या अपराध? अब तो उचित यही है कि हमारी ओर से कोई अत्यंत योग्य विद्वान् तथा वार्ताकुशल व्यक्ति दूत बनकर जाए जो वहां पांडवों का कार्य सिद्ध करने के लिए कुरुवंश के भीष्म, महानुभाव राजा धृतराष्ट्र आदि के साथ ही आचार्य द्रोण, कृप, अश्वत्थामा तथा कर्ण आदि बलशाली योद्धाओं के साथ-साथ धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन के साथ ही सभी विद्वान, कर्मठ, वेदज्ञ, धर्मनिष्ठ तथा लोकविख्यात वीर कौरवों को भी आमंत्रित करे। जब इन सबके साथ ही राजसभा में हस्तिनापुर के कुशल अमात्य तथा सेनापति एवं जनपदों एवं पुर के वयोवृद्ध जन आकर एकत्र हों, तब सबके समक्ष अत्यंत विनम्रता के साथ पांडवों की ओर से निवेदन करे। ऐसे में दूत को सावधान रहना होगा कि वह किसी ऐसी बात अथवा तर्क का उपयोग करने से बचे जिससे दुर्योधन आदि उत्तेजित हों, अथवा वे कुपित होकर पांडवों के प्रति और भी द्वेषी हो जाएं। इससे कार्य में बाधा ही आएगी। हम को तो किसी प्रकार ऐसा उपाय करना होगा कि शांति के साथ पांडवों को उनका राज्य मिल जाए। युद्ध की तो कल्पना ही अन्यथा है। ऐसा उपाय करो कि अपना कार्य बिना युद्ध जैसी विभीषिका को आमंत्रित किए ही सिद्ध हो जाए। युद्ध से यह कार्य बनने का नहीं। इस अवसर पर तो दुर्योधन को शांतिपूर्वक

संधि करने के लिए आवाहन करके ही युधिष्ठिर का राज मिल सकता है। युद्ध सर्वथा विनाशकारी होता है और उसमें किसी का हित नहीं। युद्ध अनीति एवं अनाचार का साधन है, शांति का नहीं। अतः ऐसा ही प्रयास करना होगा कि धृतराष्ट्र के पुत्रों को बिना उत्तेजित किए अपना काम सिद्ध हो सके।''

''हलधर... रोहिणीनंदन बलभद्र! मुझे अचरज होता है कि इस भरी सभा में इतने लोग चुप बैठे आपकी ऐसी बात सुनकर सहन कर रहे हैं। यह तो इस सभा में उपस्थित महानुभावों का ही अपमान हो रहा है।'' सहसा सात्यकि ने आवेश के साथ कहा, ''आप तो अनाचार करने वाले दुष्टों को बलवान और स्वयं धर्म पर आरूढ़, दृढ़प्रतिज्ञ महाराज युधिष्ठिर को कायर कह रहे हैं। उनकी आलोचना करके आप उलटे उनको ही अपराधी बता रहे हैं! ऐसी अनर्ग़ल बात कहने वाले को भला इस सभा में बोलने का अधिकार कैसे मिल गया? यदि महाराज युधिष्ठिर ने अपने निवास पर, इंद्रप्रस्थ में अपने भाइयों के साथ यह जुआ खेला होता और धृतराष्ट्र के पुत्रों ने वहां इनको पराजित किया होता तो मैं उनकी विजय को धर्मसंगत मान लेता। लेकिन वास्तव में हुआ तो यह है कि उन कुटिल कौरवों ने क्षत्रियधर्म पर अडिग रहने वाले राजा युधिष्ठिर को जुए के लिए आमंत्रित करके हस्तिनापुर बुलवाया और छल से, शकुनि की सहायता से उनको परास्त किया। भला इसमें राजा युधिष्ठिर का क्या अपराध? वह तो अपने धर्म पर अटल होने के कारण जुए में प्रवृत्त हुए, क्योंकि नियमानुसार क्षत्रिय-धर्म यही है। जुए के प्रति आसक्ति होने के कारण वे स्वयं तो हस्तिनापुर नहीं गए थे। यह सब दुर्योधन और शकुनि का षड्यंत्र था और अपने इस छल में वे सफल भी रहे। पहली बार जुए के बाद उन दुष्टों ने नारियों में श्रेष्ठ, कुरुकुल की कुलवधू को उस लज्जाजनक अवस्था में जिस प्रकार भरी सभा में केश पकड़कर घसीटते हुए लाकर निर्वसन करने की चेष्टा की, वह भी संभवतः हलधर बलदेव को दुर्योधन आदि का न्यायसंगत कार्य लगता है! हम तो भीम तथा अर्जुन जैसे पराक्रमी पांडवों की धर्मनिष्ठा इस बात में मानते हैं कि समर्थ होते हुए भी उन्होंने उस अनाचार को देखने वालों के साथ ही उन दुष्टों का विनाश नहीं कर डाला...। यह भी सभी जानते हैं कि उसके बाद भी मात्र अपने अग्रज की आज्ञा से ये लोग तेरह वर्ष तक दारुण कष्ट भुगतने पर भी चुप ही रहे।

''मुझे आश्चर्य होता है कि हलंधर बलदेव जैसे महाबली को आज ऐसा क्या हो गया है कि वह महाराज युधिष्ठिर को अपराधी कहकर, अब भी उन अनाचारियों के सामने भिक्षा की भांति अपना अधिकार मांगने का परामर्श दे रहे हैं। सुनता हूं कि वनवास और अज्ञातवास पूरा करने के बाद जब पांडव प्रकट हुए तो दुर्योधन कहने लगा है कि हमने तो इनको अज्ञातवास पूरा होने के पहले

ही पहचान लिया है....अतः उसकी तो यही कामना है कि पांडव अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार एक बार फिर जाकर तेरह वर्ष का वनवास भुगतें....''

राजसभा में विरोध और क्षोभ से भरी गुंजार-सी हुई।

उत्साहित होकर युयुधान सात्यकि ने अत्यंत उत्तेजित स्वर में कहा, ''और जिन न्याय के रखवाले कुरुकुल के महान् वीरों की बात कहकर हलधर हमको न्याय की आशा दिलाना चाहते हैं, यहां उपस्थित सभी राजाओं और योद्धाओं ने सुना होगा कि वे सभी वीर कुलपुरुष उस समय भी सभा में उपस्थित थे, जब पांडव तो जुए में हारकर पराजित दास की भांति चुप बैठे थे और रजस्वला होने के कारण रक्त से सनी, मात्र एक वस्त्र धारण किए देवी पांचाली को दु:शासन केश पकड़कर घसीटते हुए सभा में ले आया था। वह न्याय की गुहार लगाती रही, लेकिन उस घोर क्षोभ-जनक घटना के साक्षी इन महावीरों ने पांचाली की रक्षा के लिए एक शब्द तक नहीं कहा था...और वे उस समय भी चुप ही रहे जब दोबारा छल से युधिष्ठिर को हराकर उनका सर्वस्व अपहरण करके उनको वन में भेजा रहा था। उन लोगों से न्याय की आशा? इतना ही नहीं, अब पांडवों ने जब अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अज्ञातवास का समय पूरा कर लिया है तो भी उन महानुभावों ने अपनी ओर से आज तक यह नहीं किया कि उस कुटिल दुर्योधन को पांडवों का राज वापस देने को कहते। उन्होंने तो चुप्पी साध रखी है...और ऐसे लोगों के सामने हलधर की इच्छा है कि पांडव अपने अधिकार की याचना करें और गिड़गिड़ाकर भीख की तरह अपना राज्य मांगे। तो भी क्या वह इतना न्यायी है कि इनका राज्य दे देगा और उनको अपने वक्षस्थल पर बैठा लेगा? यह सब सपना है।''

राजसभा में किसी ने भी सात्यकि का विरोध नहीं किया।

वह फिर आक्रोश के साथ कहने लगे, ''अब तो चाहे कुछ भी उपाय कर लो, लेकिन मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूं कि पांडवों को राज्य पाने के लिए एक ही युक्ति करनी होगी—युद्ध! अतः पांडुनंदन युधिष्ठिर के मन में जो अभिलाषा है, उसकी सिद्धि के लिए हम सभी को तत्पर हो जाना चाहिए। किसी को यदि यह शंका हो कि पांडव तो निर्बल हैं तो यह उसके मन की कायरता है। मैं कहता हूं, मुझ युयुधान सात्यकि ने यदि कुपित होकर युद्ध में प्रहार किया तो उन कुटिल कौरवों में से कोई भी उसको सहन करके जीवित नहीं रह पाएगा! यदि कुरुराज धृतराष्ट्र न्यायपूर्वक पांडवों को उनका अधिकार सौंप दें तो अच्छा ही है। महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ पृथ्वी का पालन करें! लेकिन यदि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने आपत्ति की और आकर पांडुनंदन युधिष्ठिर के चरणों में मस्तक नहीं झुकाया तो यह निश्चित ही है कि अपने अमात्यों, सेनापतियों तथा समस्त प्रकृतियों के साथ उनको यमलोक जाने की तैयारी करनी होगी।

पांडव निर्बल नहीं हैं। मात्र संख्या ही प्रमाण नहीं होती। पांडवों के साथ धर्म तो है ही, लेकिन योद्धाओं का भी उनके पक्ष में अभाव नहीं है। मैं पूछता हूं—कौरवों में ऐसा कौन है जिसे जीवन की इच्छा हो, फिर भी वह युद्धभूमि में गांडीवधारी अर्जुन, चक्रधर वासुदेव कृष्ण, दुर्धर्ष गदाधारी भीम, मुझ जैसे अमर्ष में भरे धनुर्धर तथा स्वयं यमराज तथा महाकाल के समान अमित बलशाली माद्रीनंदन नकुल तथा सहदेव और महाकाल को भी अपने बल-विक्रम से हतप्रभ कर देने वाले वयोवृद्ध योद्धा मत्स्यराज विराट तथा पांचाल के महायशस्वी राजा द्रुपद एवं उनके महापराक्रमी धनुर्धर पुत्र धृष्टद्युम्न के समक्ष खड़ा रहेगा? देवी पांचाली के पुत्र पांचों पांडवों के समान ही धीर-गंभीर हैं। ये पांचों द्रौपदीनंदन तथा अपने पिता के समान ही महाधनुर्धर सुभद्रानंदन अभिमन्यु के अतिरिक्त वासुदेव कृष्ण के महाबली पुत्रों—प्रद्युम्न और सांब का सामना रणभूमि में कौन कर सकता है? यादवों में श्रेष्ठ योद्धा गद का सामना कौन करेगा? मैं प्रतिज्ञा के साथ कह सकता हूं कि हम सभी अभियान करके उन नीच धृतराष्ट्र-पुत्रों को उनके समस्त मित्रों तथा परिजनों के साथ मारकर पांडवों का राज्य प्राप्त करेंगे। दुर्योधन जिस एकमात्र योद्धा की मित्रता और धनुर्विद्या के बल पर अपने को अजेय मानता है, उस सूतपुत्र कर्ण को, और जिस गांधारराज शकुनि की कपटमाया के बल पर अपने को समस्त लोकों का विजेता मानकर गर्व से भरा माननीय जनों का अपमान करता रहता है, उन सबका वध करके हम सम्राट् युधिष्ठिर का एक बार फिर चक्रवर्ती नरेश के रूप में मूर्धाभिषेक करेंगे...''

युयुधान सात्यकि का ओजभरा वक्तव्य सुनकर राजसभा में मानो वीररस का साम्राज्य व्याप गया। वास्तव में जिस प्रकार राजसभा में पांचाली को निर्वसना करने की चेष्टा की गई थी और फिर जिस प्रकार छल-कपट से पांडवों को राज्य से निर्वासित किया गया था तथा उनको जो-जो कष्ट भुगतने पड़े थे, वह सब सुन चुकने के बाद अब किसी को भी बलदेव द्वारा व्यक्त किए गए शांति के विचार नहीं भा रहे थे। सात्यकि के शब्दों ने मानो उन सबकी भावनाओं को अभिव्यक्ति दे दी थी।

उनका वक्तव्य समाप्त होते ही विख्यात वयोवृद्ध योद्धा पांचालराज द्रुपद ने उच्च स्वर में उनकी सराहना की, ''साधु वीर! महाबाहु, तुमने जो कहा, वही उचित है। मुझे भी रोहिणीनंदन बलदेव का वचन इस संदर्भ में उचित नहीं लगा था। इसमें कोई संदेह नहीं कि दुष्ट दुर्योधन कभी विनम्र वचनों तथा मधुर व्यवहार से पांडवों को उनका राज्य नहीं देगा। और धृतराष्ट्र स्वयं अब तक पुत्रों के मोह से ग्रस्त होकर उनको कभी किसी अनाचार से विरत नहीं कर पाए। अब तो प्रजा में यही विश्वास व्याप्त है कि दुर्योधन के हठ से परास्त

होकर पांडवों को मारने के षड्यंत्रों में भी धृतराष्ट्र अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधन की इच्छा के आगे झुकते रहे। इस समय भी वह उसी का पक्ष लेंगे। और कुरुकुल के महान योद्धा—राजा शांतनु के अग्रज बाह्लीक तथा उनके विख्यात योद्धा पुत्र सोमदत्त तथा भूरिश्रवा, शल आदि के साथ ही आर्य भीष्म तथा आचार्यों में से द्रोण एवं कृपाचार्य भी दुर्योधन का अन्न खाने के कारण उसी दुर्बुद्धि की ओर रहते हैं। वे दीनतावश उसके अत्याचार सहते हैं, और कभी अन्याय के विरुद्ध उसको वर्जित नहीं करते। करने पर भी वह जब किसी की नहीं सुनता तो चुप ही रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में यह आशा करना तो दुराशा ही है कि दुर्योधन किसी के मधुर व्यवहार से रीझकर राज्य वापस कर देगा। अंत तक तो वही करना होगा युयुधान जो सात्यकि ने कहा है। उस जैसे पापात्मा और मूढ़ को तो मधुर वचनों से ऐसा ही लगेगा कि हम सभी उससे भयभीत हैं और हम भिक्षा मांगकर पांडवों के लिए राज्य दिलवाना चाहते हैं। ऐसे प्रयास की तो वह हँसी ही उड़ाएगा।''

पल-भर रुककर मानो सभा की मनोभावना का अनुमान लगाने के बाद द्रुपद ने कहा, ''तो भी मैं इसका समर्थन करता हूं कि जैसा वासुदेव कृष्ण ने कहा है, अपनी ओर से न्यायसंगत प्रयास तो होना ही चाहिए और किसी भी स्थिति का सामना करने के लिए हमको पूरी तैयारी करने का समय भी तो चाहिए ही! अत: पहले एक सुयोग्य दूत भेजकर हमको उनके न्याय का रहस्य लोक के समक्ष खोलना उचित ही रहेगा। ऐसे में हमको युद्ध आरंभ करने के लिए कोई दोषी भी नहीं कह सकेगा। सो दूत तो अवश्य ही भेजा जाए, किंतु मेरा विचार यही है कि आने वाले समय के लिए आज से ही प्रयत्न आरंभ कर देना चाहिए। हमें अपने मित्र राजाओं के पास शीघ्रगामी चरों को भेजकर उनसे आग्रह करना चाहिए कि हमारा साथ देने के लिए वह अभी से बलसंग्रह करें। सबसे पहले तो हमको अपने उन मित्रों तथा संबंधियों के पास दूत भेज देने होंगे जो हमारे परम हितैषी हैं—जैसे माद्रीनंदन नकुल-सहदेव के महाप्रतापी मातुल मद्रराज शल्य। उनके साथ ही चेदिराज धृष्टकेतु एवं अपने निकट संबंधी केकयराज के समस्त राजपुत्रों के पास हमारे दूत तत्काल चले जाएं। इनके अतिरिक्त भी अनेक क्षत्रिय कुलों को अपनी ओर से आमंत्रण भेजना होगा। करूषराज दंतवक्त्र, विदर्भ से विलग होकर भोजकट में अपना राज्य स्थापित करने वाले रुक्मी, कांबोज नरेश तथा ऋषिक एवं पंचनद के राजाओं, पराक्रमी शाल्वपुत्र, कोसलराज बृहद्बल, मगधराज सहदेव तथा उनके पुत्रों, पुत्रसहित महाबली राजा समुद्रसेन तथा युद्धदुर्मद कलिंगराज आदि समस्त योद्धाओं को अपनी ओर से आमंत्रित करना होगा। इन सबके पास रणनिमंत्रण भेजकर हमको अपना बलसंग्रह का कार्य तो अभी से आरंभ कर देना होगा।''

पांचालराज ने रुककर वयोवृद्ध मत्स्यराज विराट को संबोधित करते हुए कहा, ''इस संबंध में अनुभवी मत्स्यनरेश से परामर्श करके उचित प्रयत्न करना होगा।'' फिर उनसे ही बोले, ''मत्स्यराज, मेरे राजपुरोहित विद्वान् ब्राह्मण गौतम धवलकीर्ति को राजधर्म तथा राजकुल की परंपराओं का अपार ज्ञान तो है ही, वह अर्थनीति में भी पारंगत हैं। मेरे विचार से, यदि आप उचित समझें, तो आर्य धवलकीर्ति को ही दौत्यकर्म करने के लिए आग्रहपूर्वक हस्तिनापुर भेजा जाए। यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उन्हें वहां आर्यश्रेष्ठ भीष्म से, राजा धृतराष्ट्र से तथा महारथी द्रोणाचार्य से क्या कहना होगा। यह सब एकमत होकर आर्य धवलकीर्ति को समझा दिया जाए तो मुझे विश्वास है कि वे अवश्य पांडवों का हितसाधन कर सकेंगे। युद्ध के बिना ही यदि समस्या सुलझ जाए तो उत्तम है। हमारा कार्य हो जाए—प्रयोजन तो यही है।''

पांचालराज की युक्तियुक्त बात से सभी संतुष्ट थे।

कुछ देर बाद कृष्ण ने कहा, ''पांचालराज ने जो कहा है, वह उनके अनुरूप ही है। हम सभी उनके विचार से सहमत हैं। अब हम जिस कार्य से यहां आए थे, वह कार्य सकुशल संपन्न हो गया है। हम राजा विराट के आतिथ्य से बहुत ही प्रसन्न हैं। अब हमको आज्ञा हो तो द्वारका के लिए प्रस्थान करें। आपने अपने अनुभव से जिन महानुभाव को दूतकर्म के लिए चुना है, वह सर्वथा योग्य हैं और पांडवों का हित करने में समर्थ हैं। हम यही कामना करते हैं कि उनको सफलता मिले और आसन्न युद्ध टल जाए, क्योंकि कौरव और पांडव दोनों ही हमारे संबंधी हैं और दोनों से ही हमें आदर-सत्कार मिलता है। हम तो यही चाहते हैं कि उस कुल का संहार टल जाए। ऐसे तो दैव प्रबल है। उसकी इच्छा जो होगी वही होगा। आप और मत्स्यराज समान रूप से ज्येष्ठ तथा कुशल अर्थनीतिज्ञ हैं। हम तो इस क्षेत्र में आप दोनों के शिष्य-तुल्य ही हैं। आप दोनों जो भी निश्चय करके उचित संदेश हस्तिनापुर भेजेंगे, हम उससे हर प्रकार से सहमत होंगे। एक बार फिर मेरी शुभकामना यही है कि दुर्बुद्धि दुर्योधन को बुद्धि मिले और वह पांडवों से संधि करके सौहार्द बना ले। अन्यथा यह तो निश्चय ही है कि फिर क्या होगा! यदि दुर्योधन कुटिलतावश आपके संदेश की अवहेलना करे तो आप अपनी ओर से समस्त राजाओं को रण-निमंत्रण भेजने के बाद, सबसे अंत में ही हमको आमंत्रित करें। पापात्मा दुर्योधन को तो अकेले अर्जुन ही अनाचार का दंड देने में समर्थ हैं...कुरुकुल का विनाश न हो तो उत्तम है...''

इसके बाद यादव बल को लेकर कृष्ण तथा बलदेव ने द्वारका के लिए विदा ली।

मत्स्यराज विराट ने पूरी अभ्यर्थना के साथ यादवों को विदा किया। फिर

पांडवों तथा वहां स्थित राजाओं के साथ पांचालराज तथा राजा विराट सब मित्रों अमात्यों से विचार-विमर्श करके, आगामी स्थितियों के अनुकूल तैयारी करने लगे।

कृष्ण जब अपने यादव योद्धाओं के साथ मत्स्यराज विराट तथा अभिमन्यु के विवाह के अवसर पर आए समस्त राजाओं आदि से स्नेहपूर्वक विदा लेकर द्वारका चले गए, तब पांचालराज द्रुपद ने अपने संबंधियों तथा मित्र राजाओं के साथ विचार-विमर्श करने के बाद अपने वेदनिष्ठ तथा अर्थशास्त्र एवं नीति के पारंगत पुरोहित आर्य धवलकीर्ति गौतम से कहा, ''आप तो यजन-याजन तथा अर्थ एवं नीति में स्वयं ही कुशल हैं और राजधर्म को भी मूल रूप से जानते हैं, हम आपको क्या उपदेश दे सकते हैं! बस, हम इतना ही कहेंगे कि आप हस्तिनापुर जाकर इन श्रेष्ठकुल के पांडवों की हर प्रकार से सहायता ही करेंगे।''

आर्य धवलकीर्ति ने फिर भी पूछा, ''आप विशेष रूप से कुरुकुल के श्रेष्ठ पुरुषों को जो संवाद देना चाहते हों, उसका संकेत कीजिए। मैं अपने वश-भर पांडवों का हित करने के लिए जो भी हो सकेगा, अवश्य करूंगा।''

''हमारा किसी को कोई विशेष संवाद नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूं कि विदुर जैसे श्रेष्ठ विचारवान अनुज एवं महामंत्री के निरंतर समझाने पर भी राजा धृतराष्ट्र मन से अपने पुत्र दुर्योधन का ही अनुसरण करते हैं। धृतराष्ट्र की अनुमति से ही शकुनि ने धर्मात्मा युधिष्ठिर को छल से जुए में परास्त करके उनकी राजलक्ष्मी का अपहरण करके अपने भागिनेय गांधारीपुत्र दुर्योधन का हित किया है। उन लोगों ने युधिष्ठिर को जान-बूझकर जुआ खेलने को आमंत्रित किया और शकुनि से ही उनको खेलने को विवश किया, जबकि उनको पता था कि युधिष्ठिर द्यूतविद्या में शकुनि के समक्ष कुछ भी नहीं जानते। मुझको तो पूरा विश्वास है कि वे मांगने पर उनका राज्य कभी नहीं लौटाएंगे। तो भी आपके प्रयास से पांडवों का हित ही होगा।

''आप कुरुओं की राजसभा में श्रेष्ठजनों की उपस्थिति में जब धर्मयुक्त तर्क देंगे तो स्वयं राजा धृतराष्ट्र पर तो न जाने क्या प्रभाव हो, कुछ होगा कि नहीं, यह तो आपको स्वयं ही देखने में आएगा। तो भी उनके सुयोग्य सभासदों के बीच परस्पर कुछ मतभेद तो उत्पन्न हो ही जाएगा। विद्वान् विदुर भी निश्चय ही आपकी युक्तिसंगत वाणी का समर्थन करेंगे। ऐसे में कुरुकुल के वयोवृद्ध जनों तथा द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि सभा के माननीय पुरुषों के बीच अवश्य मतभेद हो जाएगा। उनके मंत्रियों में जब इस प्रकार भेद हो जाएगा तो निश्चय ही इसका प्रभाव उनके सेनापतियों तथा श्रेष्ठ योद्धाओं पर भी पड़ेगा। संभव है

कि इस कारण दुर्योधन का सारा संगठन ही बिखर जाए। तब उनको नए सिरे से अपनी सेना तथा सेनापतियों को सुसंगठित करना पड़ेगा। यह भी तो हमारे हित में ही होगा। इस बीच जो अवकाश मिलेगा, उसमें पांडवों को अपना बलसंग्रह करने का पर्याप्त अवसर मिल जाएगा। उन्हें पर्याप्त द्रव्य जुटाने का समय भी मिल जाएगा। इस बीच जब तक आप स्वयं वहां रहकर विलंब करते रहेंगे, तब तक तो वे उलझे ही रहेंगे और उनको अपनी सेना आदि को संगठित करने का पूरा अवसर नहीं मिलेगा– आपके वहां जाने का सबसे बड़ा प्रयोजन तो यही है। फिर हो सकता है कि आप अपनी विद्वत्ता एवं नीतियुक्त वचनों से राजा धृतराष्ट्र के मन पर समुचित प्रभाव डालकर उनकी आत्मा को जगाने में सफल हो जाएं। वह भी हितकर ही होगा। शांति से सब कुछ हो जाए तो हम सबका हित है। युद्ध से होने वाला विकट नरसंहार टल जाएगा। आप तो नीति तथा अर्थनीति के विशारद हैं। आप अपनी ओर से कुरुकुल के वृद्ध पुरुषों के समक्ष उनके कुल के पूर्वपुरुषों द्वारा कुल के उत्तम आचरण तथा धर्मपालन के उच्च आदर्शों का उल्लेख करके उन्हें नैतिकता के प्रति जाग्रत करेंगे और इस बीच दुर्योधन तथा शकुनि के कारण पांडवों द्वारा झेले गए घोर क्लेश का विवरण विस्तार से देंगे तो उनके मन पर निश्चय ही गहरा प्रभाव पड़ेगा। इस प्रयत्न से आप उनका मन दुर्योधन की ओर से विमुख कर देंगे, जो हर दशा में पांडवों के लिए कल्याणकारी होगा। रही बात यह कि आपसे रुष्ट होकर कोई आपका अहित कर सके, ऐसा तो आपको कोई भय है नहीं, क्योंकि आप एक तो स्वयं योग्य तथा विद्वान् वयोवृद्ध ब्राह्मण हैं, फिर दूतकर्म के लिए नियुक्त होकर वहां जा रहे हैं। दूत तो आर्य-परंपरा के अनुसार सर्वथा अपने नियोक्ता का मुख होता है, इसी कारण उसको सर्वथा निर्दोष माना जाता है तथा घोर वचनों के कारण भी उसको किसी प्रकार की पीड़ा नहीं दी जा सकती। वह अवध्य माना गया है। अतः आर्य, आप तो अपनी हर चेष्टा से पांडवों का हित ही करेंगे। यही सोचकर अपना महान् कार्य संपन्न करने के लिए आप आज ही 'जय' नामक मंगलमुहूर्त में हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान करें।''

आर्य धवलकीर्ति स्वयं ही अर्थ एवं नीति के कोविद थे, फिर अनुभवी पांचालराज द्वारा समयानुकूल नीति से अनुशासित होने के बाद वे पांडवों का हित करने के लिए अपने अनेक शिष्यों के साथ पांचालराज द्वारा प्रदत्त वाहनों पर कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर की ओर चल पड़े।

तेईस

पांचालराज द्रुपद ने जो विचार किया था, वह उचित होने पर भी सत्य से परे

ही था! मनसा-वाचा-कर्मणा पांडवों का राज्य हरण कर लेने के बाद अब दुर्योधन किसी भी मूल्य पर वह समृद्ध राज्य फिर पांडवों को देने को तैयार नहीं था और उसकी रक्षा करने के लिए हर प्रकार से तत्पर रहता था। विराटनगर में क्या हो रहा है, इसकी पूरी-पूरी जानकारी वह अपने गूढ़पुरुषों के माध्यम से निरंतर प्राप्त करता ही रहता था। उसको तो पांडवों के वनवास के बारह वर्षों में भी उन्होंने कहां क्या किया और अब कहां निवास करते हैं, इसकी पूरी जानकारी रहती ही थी। फिर राजा विराट के साथ उनके वैवाहिक संबंध होने की तथा उस अवसर पर पांडवों की ओर से अनेकशः मित्र तथा संबंधी राजाओं को आमंत्रित करने की भी जानकारी उसे मिल ही चुकी थी। जब विशेष रूप से आयोजित सभा के बाद वासुदेव कृष्ण, बलदेव, सात्यकि आदि अतिरथी यादव योद्धाओं ने अपनी सेना के साथ विराटनगर से प्रस्थान किया, इसकी भी सूचना उसे समय पर ही मिल गई। उसको पता था कि पांडवों की ओर से बलसंग्रह के लिए उपाय किए जा रहे हैं। उनकी ओर से रणनिमंत्रण देने के लिए अनेक दूत विभिन्न राज्यों की ओर जा रहे हैं—यह भी दुर्योधन के कुशल चर उसको बताते ही रहते थे।

वह स्वयं भी अपनी ओर से सोया नहीं था और बलसंग्रह में लग गया था। पांचालराज ने अपने दूत को हस्तिनापुर भेजने के बाद कहां-कहां रणनिमंत्रण लेकर दूतों को भेजा है, यह भी उसे ज्ञात हो गया। कृष्ण जब द्वारका की ओर चले तो इसकी सूचना मिलते ही सतर्क दुर्योधन ने तुरंत तैयारी कर ली और वायुवेग से चलने वाले अश्वों की एक सेना लेकर वह स्वयं पहले ही यादवों से सहायता मांगने का निश्चय करके द्वारका की ओर चल पड़ा। उसके साथ रक्षा के निमित्त छोटी-सी ही सेना थी। वह राह में विश्राम के लिए पड़ाव डालता हुआ तेजी से द्वारका की ओर बढ़ रहा था, जिससे पांडवों के पहले ही पहुंचकर यादवों को अपनी ओर मिला सके।

संयोग से स्वयं अर्जुन भी यादवों की सहायता प्राप्त करने के विचार से उसी समय द्वारका की ओर जा रहे थे।

वे दोनों लगभग एक साथ ही द्वारका पहुंचे और दोनों सबसे पहले कृष्ण के भवन पर ही गए। उस समय कृष्ण विश्राम कर रहे थे, किंतु वे दोनों ही यादवों के घनिष्ठ संबंधी थे, अतः उनको किसी ने रोका नहीं। वे कृष्ण के शयनागार में पहुंच गए। दुर्योधन अपने बलाभिमान के अनुरूप कृष्ण के सिरहाने की ओर एक आसन पर बैठकर उनके जगने की प्रतीक्षा करने लगा। अर्जुन तो कृष्ण के परमप्रिय सखा भी थे, अतः उन्हें किसी प्रकार का अभिमान जताने की आवश्यकता नहीं थी। वे कृष्ण के पर्यंक पर ही पांव की ओर धीरे से बैठ गए।

कुछ देर बाद ही कृष्ण की नींद टूटी तो उन्होंने सामने अर्जुन को बैठा देखा।

औपचारिक कुशल-प्रश्न के बाद कृष्ण ने उनसे इस समय द्वारका-आगमन का कारण पूछा तो अर्जुन ने विनम्रता के साथ युद्ध की आशंका से उनको परिचित कराते हुए उनसे सहायता की याचना की। किंतु कृष्ण उत्तर दे पाते कि सिरहाने बैठा दुर्योधन बोल पड़ा, ''पहले मैं आया हूं, वासुदेव! अत: पहले मेरा अधिकार है। मैं भी आपसे युद्ध के समय सहायता की याचना करने के लिए ही आया हूं।''

कृष्ण ने अब पलटकर उसकी ओर देखा और पलक झपकते ही समझ गए कि वह किस भाव से आया है और किस अभिमान के कारण सिरहाने बैठकर उनके जगने की प्रतीक्षा करता रहा। वह मुसकराकर दुर्योधन को शालीनता का पाठ देने के लिए ही बोले, ''ऐसा है, कुरुनंदन, कि मेरी दृष्टि तो सबसे पहले अर्जुन पर ही पड़ी है, अत: मेरी दृष्टि में पहले कुछ कहने का अधिकार उनका ही है। ऐसे भी अर्जुन वय में तुमसे छोटे ही हैं, इस कारण प्रथम अधिकार उनको ही मिलना चाहिए।''

दुर्योधन अपनी मूढ़ता पर मन मसोसकर चुप रह गया। उसको लगा कि कृष्ण जान-बूझकर उसकी अवहेलना करके अर्जुन को अवसर देना चाहते हैं, तो भी वह कर ही क्या सकता था! यादवों की महान् शक्ति की अभिमानवश अवहेलना करके, बिना सहायता मांगे वापस भी तो नहीं लौट सकता था।

कृष्ण ने अर्जुन से कहा, ''ऐसा है, कुंतीनंदन, कि मैंने तो अपने संबंधियों के बीच परस्पर संभावित इस युद्ध में स्वयं भाग न लेने का ही निश्चय किया है। वैसे तुम आए हो तो मैं तुम्हें एकदम से खाली हाथ भी नहीं लौटा सकता। अत: मेरा निश्चय सुनकर निर्णय कर लो कि तुमको क्या चाहिए। मैं एक पक्ष में तो एकदम से अकेले ही रहूंगा। और मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं इस युद्ध में शस्त्र नहीं ग्रहण करूंगा। दूसरी ओर, मेरी नारायणी नामक सेना होगी, जिसमें महाबली गोपों के सहस्रों योद्धा रण के लिए उन्मत्त रहते हैं। अब तुम इन दोनों में से चुन लो।'' उन्होंने एक बार मंद मुसकान के साथ दुर्योधन की ओर देखा जो संभवत: फिर से आपत्ति करना चाहता था। कृष्ण ने कहा, ''ये गांधारीनंदन भी अग्रज होने के नाते तुमको अधिकार दे ही चुके हैं। पहले तुम्हीं अपना मत प्रकट करो, धनंजय!''

'अग्रज' कहकर मानो कृष्ण ने दुर्योधन के अंतर में उसकी महानता का अभिमान जगाने का सफल प्रयास किया था। दुर्योधन चुप ही रहकर प्रतीक्षा-सी करने लगा। उसे विश्वास तो था कि अब यह कुटिल अर्जुन अवसर पा गया है तो निश्चय ही अपने पक्ष में गोपों का महाबल मांग लेगा। लेकिन उसे यह

सुनकर मानो आकाश से गिरने का-सा बोध हुआ, जब अर्जुन ने एक पल को भी सोचे बिना कहा, ''मुझे तो आपको ही अपने पक्ष में पाने की कामना थी, वासुदेव! आप ही मेरे पक्ष में रहें।''

कृष्ण ने कुछ विस्मय से अर्जुन की ओर देखा। पल-भर सोचते रहे फिर विचित्र-सी हँसी के साथ दुर्योधन की ओर देखकर बोले, ''तो फिर एक प्रकार से निर्णय हो ही गया, गांधारीनंदन! तुम्हारी ओर से हमारी नारायणी सेना युद्ध में भाग लेगी। तुम संतुष्ट तो हो?''

दुर्योधन को तो लग रहा था कि ठीक समय पर स्वयं देवी सरस्वती ने ही उसका पक्ष लिया और अर्जुन की मति का हरण करके उससे ऐसी उलटी बात कहलवा दी। अपने पक्ष में नारायणी सेना को पाने के बाद उसको तुष्ट तो होना ही था। बोला, ''जब आपने कह ही दिया कि अर्जुन हमारा अनुज है और उसको ही पहले अपनी कामना प्रकट करने का अधिकार है, तो उसकी इच्छा का ही आदर करना होगा।'' वह हँसने लगा।

कृष्ण ने कहा, ''मेरे योग्य और कुछ हो तो कहो!''

''हां, मैं यह पूछना चाहता था कि यादवसंघ की विशाल सेना के विषय में आपका क्या निर्णय है?''

कृष्ण ने मुसकराकर कहा, ''अब इस संबंध में मेरा अकेले का कोई निर्णय नहीं चल सकता, कुरुनंदन। वास्तव में यह युद्ध अगर हुआ तो हमारे अपने सगे-संबंधियों के बीच होगा। इस संबंध में हमारे यादवसंघ में भी इसी कारण अलग-अलग मत सामने आ रहे थे। हमने सभा में विचार किया था। लेकिन हर किसी का मत भिन्न होने के कारण संभवत: पहली बार हमारी यादवसंघ की सभा एकमत होकर निर्णय करने में विफल रही। ऐसे में यही निश्चय किया गया कि इस विषय में यादवसंघ के सभी कुलों को अपने-आप ही निर्णय करने का अधिकार दे दिया जाए। जो जिस ओर से चाहे, जाकर युद्ध में भाग ले सकता है। यह एक प्रकार से व्यक्तिगत प्रसंग हो गया है। यहां तक कि हमारी यादवसेना के महासेनापति अग्रज बलदेव ने भी इस विषय में सेना को अपने अनुशासन से मुक्त करके निर्णय संबद्ध कुलों पर ही छोड़ दिया है। तो भी तुम लोगों को जाकर अग्रज से बात तो करनी ही होगी। उनका अपना बल भी तो किसी महाबल से कम नहीं है। तुम प्रयास कर देखो। पराक्रमी हलधर बलदेव जिस पक्ष में होंगे, उसकी विजय तो निश्चित ही होगी।''

दुर्योधन तत्क़ाल उठ खड़ा हुआ। वह नहीं चाहता था कि यहां की तरह बलदेव के पास भी जाने पर समस्या खड़ी हो जाए, अत: वह अर्जुन के पहले ही वहां पहुंचकर अपना काम सिद्ध कर लेना चाहता था।

कृष्ण ने शिष्टाचारवश उसको आतिथ्य स्वीकार करने को कहा तो किंतु वह समझ रहे थे कि दुर्योधन किस उतावली में है, अतः उसे जाने दिया।

एकांत होने पर अर्जुन की एक सीमा तक भर्त्सना-सी करते हुए कृष्ण ने कहा, ''मैंने दुर्योधन को रुष्ट करके भी तुमको अवसर दिया, किंतु तुमने गोप योद्धाओं के रणदुर्मद महाबल को ठुकराकर मुझे, सो भी शस्त्रहीन रहने का निर्णय सुनकर भी किस कारण चुना, धनंजय? तुमको क्या युद्ध में विजय की अभिलाषा नहीं है अथवा तुमने केवल मेरी प्रसन्नता के लिए इतना बड़ा त्याग करने का दुस्साहस किया?''

''आपकी प्रसन्नता तो मेरे लिए सारे लोकों के राज्य से भी बढ़कर है, वासुदेव, वारुणी के प्रभाव से क्या होता होगा, यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन आपके प्रभाव से मैं अपने-आपको सचमुच अग्रज बलदेव के शब्दों में विश्व-विजेता ही अनुभव करता हूं। किंतु मैंने इस समय आपको प्रसन्न करने की इच्छा से नहीं, वरन अपने-आपको प्रसन्न करने की भावना से आपको ही चुना है। आप मेरे साथ रहें तो मैं सचमुच विश्वविजय कर सकता हूं। मेरी बहुत दिनों से यही इच्छा थी कि कभी युद्धकाल में आपको अपना सारथ्य सौंपकर स्वयं को आपके समक्ष अर्पित कर दूंगा। खांडवप्रस्थ का दहन करते समय आपने मेरे सारथी के रूप में अपनी यह कला दिखाई थी, तभी से मन में था कि युद्ध में आप जैसा सारथी होने पर तो मैं सचमुच अजेय हो जाऊंगा। अब आप मेरी यही कामना पूरी करें, यदि युद्ध होता है तो आप मेरा सारथ्य स्वीकार करें— मात्र इतना ही आग्रह करता हूं।''

कृष्ण ने हँसकर कहा, ''तुम जैसे अतिरथी का सारथी होना भी तो अपने आपमें गौरव की बात होगी। तुम निश्चिंत रहो। युद्ध हुआ तो मैं तुम्हारा सारथी बनूंगा।''

अर्जुन हर्ष से रोमांचित होकर बोला, ''तो फिर मेरा पराक्रम युद्ध में ही देखिएगा, देवकीनंदन। आपसे मैं और क्या कहूं, आभारी हूं...''

कृष्ण ने उसको आलिंगन में भरकर उसकी अभ्यर्थना की।

अर्जुन विदा लेने को ही था कि सहसा दुर्योधन कृष्ण से मिलने फिर आ पहुंचा।

कृष्ण ने पूछा, ''अग्रज हलधर ने क्या कहा गांधारीनंदन? तुम संतुष्ट नहीं दिखाई पड़ते।''

दुर्योधन ने कहा, ''आप दोनों ही भ्राता चतुर हैं, देवकीनंदन। आपने तो शस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा कर ली और आर्य बलदेव ने कह दिया कि हमारे लिए तो तुम दोनों ही एक समान हो, अतः मैं इस युद्ध में किसी का पक्ष लेकर युद्ध नहीं करूंगा। वह तो तीर्थयात्रा करने के बहाने कहीं दूर जाने की

ठान चुके हैं।''

कृष्ण ने हँसकर कहा, ''तो वास्तव में तात हलधर ही चतुर हैं कि यहां से टल ही जाएंगे। मुझे पहले पता होता तो मैं भी उनका ही अनुसरण करता।''

दुर्योधन के मानो विरक्त भाव से कहा, ''आप ऐसा कहते हैं और हलधर का कहना है कि देवकीनंदन ही चतुर हैं कि यहां रहकर भी किसी के विरुद्ध शस्त्र नहीं ग्रहण करेंगे और युद्ध का आनंद भी लेंगे। किंतु कृष्ण जितने चतुर हैं, उतने ही संयमी भी हैं, न! वह घोर समय में भी तटस्थ रह सकते हैं। लेकिन मैं तो उतना संयमी नहीं हूं कि आंखों से युद्ध देखकर भी शांत रह सकूं, अत: मैंने कहीं दूर चले जाने का निश्चय किया है।''

बलदेव का तर्क सुनकर कृष्ण ने गौरव के साथ कहा, ''अग्रज को तो बाल्यकाल से ही मेरा गौरव बढ़ाने के लिए ऐसा ही कहने की आदत रही है। वह वास्तव में इस युद्ध की आशंका से दु:खी हैं। उनसे यह सब सहन नहीं होता।'' पल-भर चुप रहकर कृष्ण मानो बलदेव की भव्य छवि का स्मरण करते रहे फिर बोले, ''बलदेव भैया का इस समय हट जाना ही उत्तम है, नहीं तो फिर यह अवधि लंबी होती जाएगी। उनका उल्लंघन करके कोई निर्णय हो भी तो नहीं सकता न!''

कृष्ण की बात का मर्म संभवत: न तो दुर्योधन ही समझ पाया, न अर्जुन ही।

लेकिन उनको समझाने के लिए कृष्ण बाध्य भी तो नहीं थे। वह प्रसंग बदलकर बोले, ''तो कुंतीनंदन, यदि तुम चाहो तो जाकर तुम भी यादव वीरों से मिलकर अनुरोध कर देखो।''

अर्जुन ने तो उतावली नहीं दिखाई, किंतु दुर्योधन तत्काल बोला, ''मुझे आज्ञा दें, देवकीनंदन। अभी तक मैं श्रेष्ठ पराक्रमी कृतवर्मा का दर्शन नहीं कर पाया।''

''अवश्य! हृदिकपुत्र कृतवर्मा आज ही कहीं से यात्रा करके लौटे हैं। हमारे साथ इसी कारण वह अभिमन्यु के विवाह के अवसर पर विराटनगर भी नहीं गए थे।''

दुर्योधन चला गया।

कृष्ण ने हँसकर अर्जुन से कहा, ''तुमने तो कल्पना ही नहीं की होगी कि दुर्योधन भी बलसंग्रह कर रहे होंगे!''

''नहीं, कल्पना तो नहीं की जा सकती थी, किंतु वास्तव में हमें अब निश्चय हो गया कि पांचालराज के दूत को कितनी सफलता मिलेगी! उस दिन तो हलधर इसी बात पर रुष्ट हो गए थे कि हम युद्ध करने की सोचते हैं, लेकिन अब तो कोई संशय नहीं रहा कि यह दुरात्मा बिना रक्तपात के हमारा

राज्य लौटाना ही नहीं चाहता।''

कृष्ण ने कहा, ''हां, अग्रज बलदेव का मन उस दिन सात्यकि की बातों से भी बहुत खिन्न हो गया था। मुझे तो लगता है कि इसी कारण उन्होंने अपनी ओर से यादव सेनापति का पद भी एक प्रकार से त्याग ही दिया है।''

अर्जुन चुप ही रहा।

''तुमको नहीं लगता, धनंजय कि तुम कुरुवंशियों के विग्रह का प्रभाव हमारे यादवसंघ पर भी पड़ने लगा है। लगता है कि तुम्हारे कुल का यह विग्रह हम यादवों की एकता को भी खंडित करके ही रहेगा।''

अर्जुन ने कहा, ''आप ऐसा कहते हैं, देवकीनंदन, तो फिर और किसका वश है कि यादवों को अनुशासन में रख पाए!''

''नहीं, अब वह बात नहीं रही, धनंजय। अब तो युग बदल रहा है...''

दोनों ही पक्ष रणनिमंत्रण भेज-भेजकर अपनी-अपनी शक्ति का विस्तार करने में लगे थे। जैसा कि निर्णय हुआ था—पांचालराज ने अपने पुरोहित को हस्तिनापुर भेजकर पांडवों की ओर से शांति का संवाद देने के साथ ही उनका राज्य वापस कर देने का आग्रह किया। साथ ही पुरोहित धवलकीर्ति ने नीति-चातुरी से पांडवों की शक्ति का वर्णन करते हुए चेतावनी भी दे दी कि इस समय पांडवों को निर्बल मानकर उनकी उपेक्षा करने का अर्थ होगा कुरुकुल का युद्ध में महाविनाश!

उनका सत्कार करके भीष्म ने उनको आश्वासन देकर लौटाया और स्वयं योग्य मंत्री संजय को पांडवों से वार्ता करने के लिए उपप्लव्य नगर भेजा। संजय ने भी धृतराष्ट्र की ओर से शांति की कामना तो जताई, किंतु उनको पांडवों के राज्य के विषय में कोई स्पष्ट आभास नहीं दे सके। फिर भी युधिष्ठिर युद्ध से बचना ही चाहते थे, अतः उनकी ओर से यादवसंघ के महान् नेता स्वयं वासुदेव कृष्ण कौरवों से फिर संधि-वार्ता करने के लिए गए।

यह सब देख-देखकर पांचाली खिन्न रहती थी। उसने कृष्ण से रोते हुए कहा, ''आपके होते भी लगता है कि उन पापात्मा कौरवों द्वारा मेरे साथ जो अनाचार किया गया है, उसका प्रतिकार नहीं होगा। वासुदेव, तुम मेरे सखा हो, अतः कहती हूं कि मेरे इन खुले हुए केशों को ध्यान में रखना! यह वेणी तो अब तभी बंधेगी, जब भीम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार इन केशों को उस नारकीय पापी दुःशासन के रक्त से सींचेंगे।''

आंसू बहाती पांचाली को आश्वस्त करते हुए कृष्ण ने कहा था, ''सखी, मेरी प्रतिज्ञा अटल है। दुर्योधन जिस प्रकार अपने हठ पर अड़ा है, वह प्रारब्ध की ही प्रेरणा है। तुम विश्वास रखो, शीघ्र ही तुम अपने शत्रुओं की पत्नियों को

भी इसी प्रकार वेणी खोलकर हाहाकार करती देखोगी। हां, उनकी वेणी फिर कभी नहीं बंधेगी! किंतु लोकधर्म के अनुसार हमें अपना कर्तव्य तो करना ही होगा, पांचाली! मैं अपनी ओर से दोनों ही पक्षों का कल्याण करने का भरपूर प्रयास करूंगा।''

वहां तो धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन ने कृष्ण को ही फोड़कर अपनी ओर मिलाने का और दुर्योधन के प्रति उनका स्नेह प्राप्त करने का पूरा प्रयास किया। किंतु कृष्ण को न तो उनकी ओर से प्रस्तुत अपार धन-संपदा ही लुभा सकी, न तो रूपयौवनशालिनी सुंदरियों की भीड़ ही मोहित कर सकी। उन्होंने कौरव सभा में स्पष्ट शब्दों में पांडवों का राज्य वापस देकर उनसे संधि करने के लिए आग्रह किया। हर प्रकार से दुर्योधन को समझाने का प्रयास किया गया, किंतु वह नहीं माना।

कृष्ण ने तो अंत तक युधिष्ठिर की ओर से शांति का प्रस्ताव करते हुए, पांचों पांडवों के लिए मात्र पांच गांव देकर ही संधि कर लेने का आग्रह किया। किंतु पांच गांव तो दूर, दुर्योधन सुई की नोक जितनी धरती भी अब पांडवों को देने को तैयार नहीं था। उसके पक्ष में अनेक राजाओं की ओर से आई ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्र हो गई थी अत: वह बल के मद में भूल रहा था।

उसकी हठधर्मिता से कुपित होकर कृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा, ''राजन्, तुम्हारा यह पुत्र तो तुम्हारे कुल को ही नष्ट करने पर तुला है! तुम इसको बंदी बनाकर पांडवों को सौंप दो, तभी यह महाविनाश रुक सकता है।''

इसका परिणाम यह हुआ कि दुर्योधन कृष्ण को ही बंदी बनाने की सोचने लगा। किंतु यादवसंघ के महाबली योद्धा को कौन बंदी बनाता! सात्यकि तथा कृतवर्मा जैसे महाबली योद्धाओं से घिरे चक्रधर कृष्ण सहज ही कौरवों की राजसभा से सिंह की भांति गौरव के साथ निकलकर चले आए।

उनके लौटते समय कुंती ने अपने पुत्रों के लिए वासुदेव कृष्ण से ही संवाद कहलवाया था, ''क्षत्राणी इसी दिन के लिए संतान को जन्म देती है कि वह अपने अपमान और अनाचार का प्रतिकार करे। तुम पराक्रम करो और हमारी पुत्रवधू के साथ उन पापियों ने जो अत्याचार किया था, उसका दंड देकर यशस्वी बनो! बिना इसके तुमको सब कायर और क्लीव कहते हैं। मुझसे यह अपमान नहीं सहा जाता।''

कृष्ण जब हस्तिनापुर से निराश होकर लौट आए तो पहली बार पांचाली को विश्वास आया कि अब निश्चय ही उसके अपमानों का प्रतिकार होगा। वह जानती थी कि इस महासंग्राम का परिणाम समस्त भरतखंड के लिए अनर्थकर होगा। किंतु जिस प्रकार दु:शासन केश पकड़कर उसको घसीटता हुआ राजसभा

में ले गया था और जिस प्रकार किसी दासी की भांति उसे घोर क्लेश देकर उसका अपमान किया गया था, वह आज चौदह वर्षों के बाद भी पांचाली को किसी भयावने दु:स्वप्न की भांति सालता रहता था। उसे जब भी वह दिन याद आ जाता, न जाने कितनी रातें आंखों में ही कट जाती थीं। किंतु उसे विश्वास था कि कुछ भी हो जाए, उसके परम सखा कृष्ण एक न एक दिन उसके तिरस्कार का दंड उन दुराचारी कौरवों को अवश्य देंगे।

चौबीस

अंततः वही हुआ—युद्ध की भेरी बज गई। कुरुक्षेत्र के विस्तृत मैदान में कौरवों की ओर से ग्यारह अक्षौहिणी तथा पांडवों की ओर से सात अक्षौहिणी सेनाएं आकर आमने-सामने खड़ी हो गईं।

पांडवों की ओर से महासेनापति के पद पर पांचाल के महापराक्रमी योद्धा—स्वयं द्रौपदी के साथ यज्ञ से जन्म लेने वाले धृष्टद्युम्न का अभिषेक किया गया था।

सबसे पहले महापराक्रमी भीष्म को कौरवों ने अपना सेनापति बनाकर युद्ध आरंभ किया। पांडवों के पक्ष से उनसे युद्ध करने के लिए पांचालराज द्रुपद का ज्येष्ठ पुत्र शिखंडी सेनापति बनकर युद्ध करने उतरा। सात अक्षौहिणी सेना के नायक शिखंडी महाधनुर्धर सव्यसाची अर्जुन द्वारा संरक्षित थे।

कौरवों और पांडवों का वह संग्राम भीष्म तथा शिखंडी के अधीन पूरे दस दिन तक चलता रहा। भीष्म तथा अर्जुन ने प्रचंड पराक्रम से सेनाओं का संहार किया। दसवें दिन अर्जुन ने शिखंडी की सहायता से पितामह भीष्म को बाणों से बींधकर आहत कर दिया। वे रथ से गिर पड़े, किंतु धरती पर नहीं गिरे। अर्जुन के बाणों से बिंधा उनका शरीर बाणों के सहारे ही अधर में अटका रहा। उस समय सूर्य दक्षिणायन थे, जो कि धर्म के अनुसार अशुभ काल माना जाता है, अतः भीष्म सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा में शरशय्या पर ही पड़े रहे। उन्होंने कई मास के बाद सूर्य के उत्तरायण होने पर ही प्राण त्यागे थे।

पांचाली ने सुना था कि भीष्म ने एक दिन कर्ण के बड़बोलेपन के कारण उसकी घोर भर्त्सना की थी, अतः जब तक भीष्म सेनापति रहे, कर्ण ने अस्त्र-शस्त्र धारण नहीं किया। किंतु ग्यारहवें दिन जब कुरुराज की सेना के सबसे प्रचंड वीर द्रोण ने सेनापतित्व ग्रहण किया तो कर्ण सन्नद्ध होकर युद्ध में उतर पड़ा। वह और कृपाचार्य द्रोण की रक्षा करने लगे। पांडवों की ओर से सेना के अधिनायक धृष्टद्युम्न बनाए गए, क्योंकि ऐसा माना जाता था कि उनका जन्म द्रोणाचार्य का पराभव करने के लिए ही हुआ है। कौरवों की शेष बची नौ अक्षौहिणी सेना के सेनापति द्रोणाचार्य थे। धृष्टद्युम्न पांडवों की शेष बची कोई

पांच अक्षौहिणी सेना का नेतृत्व कर रहे थे और उनकी रक्षा विशेषकर भीमसेन कर रहे थे।

द्रोणाचार्य तथा धृष्टद्युम्न के इस भीषण संग्राम की अवधि में अनेक राजाओं तथा योद्धाओं का वध हुआ था। पांचालों की सेना के अधिकांश योद्धाओं के साथ स्वयं पांचालराज द्रुपद की मृत्यु भी द्रोणाचार्य के हाथों ही हुई। राजा विराट भी इसी अवधि में वीरगति पा गए। पांडवों को एक और हानि उठानी पड़ी थी, जिसका पांचाली को भी अपार दुःख हुआ था—वह थी वासुदेव कृष्ण की भगिनी सुभद्रा के गर्भ से जन्मे पुत्र अभिमन्यु की वीरगति। वह कृष्ण को परम प्रिय था और अपने पिता सव्यसाची अर्जुन के समान ही पराक्रमी था।

उस दिन अर्जुन को संसप्तकों से युद्ध करने के लिए दूसरी ओर जाना पड़ा था। तब दुर्योधन के कहने पर द्रोणाचार्य ने दुर्गम चक्रव्यूह की रचना की, जिसको तोड़ने की कला अर्जुन ही जानते थे। अभिमन्यु को उसे तोड़ने का कौशल तो ज्ञात था, किंतु वह उससे निकलने का कौशल नहीं जानता था, तो भी पांडवों को संकट में देखकर वह स्वयं युद्ध करने गया। और दिन-भर भयंकर संग्राम करके उसने कौरव पक्ष के अनगिनत योद्धाओं का वध भी कर डाला। किंतु अंत में वह अनेक महारथियों से घिर गया। उसी समय कर्ण ने उसका धनुष काटकर उसे निःशस्त्र कर दिया। तब अकस्मात् दुःशासन के पुत्र ने उस पर गदाघात कर दिया। इस प्रकार अभिमन्यु का अंत हो गया।

चक्रव्यूह के प्रथम द्वार की रक्षा उस दिन स्वयं जयद्रथ कर रहा था। उसने अप्रतिम पराक्रम करके अभिमन्यु के चक्रव्यूह में प्रवेश कर जाने के बाद किसी भी पांडव योद्धा को प्रवेश नहीं करने दिया था। इस कारण उसको ही अभिमन्यु की मृत्यु का मूल कारण मानकर अर्जुन ने दूसरे ही दिन भीषण पराक्रम किया और हर प्रकार से संरक्षित जयद्रथ का वध कर ही दिया।

पांचवें दिन द्रोणाचार्य को एक भ्रामक सूचना मिली कि उनके पुत्र अश्वत्थामा को वीरगति प्राप्त हो गई। वास्तव में अश्वत्थामा नामक एक हाथी मारा गया था। पुत्रशोक से मूर्च्छित-से द्रोणाचार्य शस्त्र-त्याग करके समाधिलीन हो गए थे, तब धृष्टद्युम्न ने खंग से उनका सिर काट लिया और इस प्रकार अपने पिता के परम शत्रु का वध करके उनके अपमान का प्रतिकार कर लिया।

पंद्रह दिन का युद्ध हो जाने के बाद दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिणी सेना में से मात्र पांच अक्षौहिणी सेना बची थी। पांडवों की भी सात अक्षौहिणी सेना में से केवल तीन अक्षौहिणी सेना रह गई थी।

कौरवों ने अब कर्ण को अपना सेनापति बनाया था। दुर्योधन ने तो कर्ण

के बल पर ही पांडवों से युद्ध छेड़ा था। उसे पूरा विश्वास था कि महाधनुर्धर कर्ण निश्चय ही अर्जुन का वध कर डालेगा। और अर्जुन के मारे जाने पर तो पांडवों को पराजित करना नितांत सहज हो जाएगा!

और एक बार फिर से महासंग्राम छिड़ गया।

इसी कर्ण के कारण युधिष्ठिर को वर्षों तक अर्जुन के लिए भय बना रहता था। वह कितने ही वर्षों तक सुख की नींद नहीं सो पाए थे। अब वही अर्जुन अनेक दिव्यास्त्रों की साधना करने के बाद कर्ण से युद्ध करने को उतरे। दो दिन तक भीषण संग्राम चलता रहा। कर्ण ने पांडवों को हिलाकर रख दिया। किंतु उसी के समय में भीम ने अनेक धृतराष्ट्र-पुत्रों को मार डाला। एक दिन वास्तव में उन्होंने दु:शासन को वश में करके उसकी दोनों भुजाएं उखाड़ लीं। उसके वक्ष का रक्तपान किया। और उसके रक्त से ही सींचकर पांचाली की चौदह वर्षों से खुली रहने वाली वेणी को बांधकर अपनी भयंकर प्रतिज्ञाएं पूरी कीं।

वासुदेव ने पांचाली को जो आश्वासन दिया था, और उसको पीड़ा देने वाले क्रूरकर्मा कौरवों को दंड देने का स्वयं जो प्रण किया था, वह पूरा हो गया।

किंतु प्रण पूरा होने के बाद भी पांचाली स्तंभित ही रही। आवेश में उसने जो शपथ ली थी, और उसी के कारण जो भीषण संग्राम हो रहा था! उसका परिणाम इतना भयावना होगा, संभवत: उसने भयंकर आवेश में डूबी रहने के कारण कभी सपने में भी इसकी कल्पना नहीं की थी।

कर्ण पूरे दो दिन तक कौरवों की ओर से युद्ध करता रहा। और अंत में अर्जुन से द्वैरथ युद्ध में उससे टक्कर हुई। उस समय कर्ण के रथ के पहिए सहसा ही रक्त से हुए कीचड़ में धंसने लगे। उसी समय अर्जुन ने उसका सिर काट लिया।

कर्ण की मृत्यु के बाद तो कौरवों की शक्ति ही टूट गई। अब उनके पास मात्र तीन अक्षौहिणी सेना रह गई थी। और पांडवों के पास केवल एक। दुर्योधन अब निराश हो गया था, किंतु वह युद्ध छोड़कर हट नहीं सकता था। पराजय मान लेना उसे अब भी स्वीकार नहीं था। उसने अब मद्रराज शल्य को अपना सेनापति बनाया। और फिर युद्ध आरंभ हो गया।

पांडवों की ओर से अब सेना के अधिनायक स्वयं महाराज युधिष्ठिर थे। पांडवों के भी अनेक योद्धा मारे जा चुके थे। कितने ही वाहन आदि नष्ट हो चुके थे। अब उनमें भी युद्ध करने का उत्साह नहीं रह गया था, तो भी वे युद्ध करते रहे। और उसी दिन, दोपहर तक, घोर पराक्रम करके युधिष्ठिर ने शल्य

को मार गिराया।

शल्य के मारे जाने पर कनिष्ठ पांडव सहदेव ने पराक्रम करके गांधारराज शकुनि को भी मार दिया। उसके पुत्र उलूक तथा अनेक भ्राता पहले ही मारे जा चुके थे।

कौरवों और पांडवों के बीच कलह का बीज बोने वाला तथा द्यूतविद्या के बल पर पांडवों को राज्यविहीन करके उन्हें तेरह वर्षों तक कठोर वनवास को विवश करने वाला मातुल शकुनि भी मार दिया गया तो दुर्योधन की सारी शक्ति समाप्त हो गई। अब उसके पक्ष में मात्र तीन योद्धा बचे थे—कृपाचार्य, कृतवर्मा यादव तथा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा। इनके अतिरिक्त कुछ गिने-गिनाए सैनिक थे।

दुःख से कातर, हताश दुर्योधन ने अपनी गदा मात्र लेकर सहसा युद्धक्षेत्र से प्रस्थान कर दिया और युद्धक्षेत्र से बाहर जाकर एक जलाशय—द्वैपायन सरोवर के निकट छिप गया। कहा जाता है कि उसको जलस्तंभिनी विद्या आती थी और उसने जल को बांधकर सरोवर के गर्भ में स्थित होकर विजय की कामना से तप करना आरंभ कर दिया था।

जो भी हो! जब तक दुर्योधन जीवित था और अपनी पराजय मानकर आत्मसमर्पण नहीं कर देता था, तब तक तो पांडवों की विजय निश्चित नहीं थी। अत: कृष्ण, अर्जुन तभा भीम के साथ युधिष्ठिर चरों से पता लगाकर द्वैपायन सरोवर पर जा पहुंचे, जिसमें दुर्योधन छिपा हुआ था।

द्वैपायन सरोवर के किनारे जाकर भीम निरंतर कटु वचन कहते हुए दुर्योधन को ललकारने लगे। बड़ी देर तक तो दुर्योधन जल में ही छिपा रहा, किंतु जब नहीं सहा गया तो वह अपनी गदा लेकर बाहर निकल आया। उसने भीम को ही गदायुद्ध के लिए ललकारा। भीम और उसका गदायुद्ध बड़ी देर तक चलता रहा। अंत में भीम ने चौदह वर्ष पूर्व द्यूतक्रीड़ा वाले दिन की गई अपनी प्रतिज्ञा पूरी ही कर ली—दुर्योधन ने जब पांचाली को अपनी बाईं जांघ दिखाकर उसे अश्लील संकेत किया था, तब भीम ने उसकी जांघ तोड़ देने का प्रण लिया था। आज युद्ध में उन्होंने गदा से प्रहार करके दुर्योधन की जांघें तोड़ ही डालीं।

उन दिनों तीर्थयात्रा करते हुए बलभद्र भी कुरुक्षेत्र आ पहुंचे थे। उनको पता लगा कि द्वैपायन सरोवर पर उनके दोनों शिष्यों—दुर्योधन तथा भीम के बीच गदायुद्ध हो रहा है तो वह भी उत्सुकतावश वहीं आ गए थे। अपने शिष्य भीम को उन्होंने गदायुद्ध के नियमों का उल्लंघन करके दुर्योधन पर जंघा के नीचे गदा का प्रहार करते देखा तो वह कुपित होकर स्वयं भीम को दंड देने के लिए झपटे। किंतु कृष्ण ने उनको पकड़कर बरबस रोक दिया और कौरवों

के अनाचारों की बात कहकर किसी प्रकार बलदेव का क्रोध शांत किया।

बलदेव ने समझ लिया कि यह सब कृष्ण की इच्छा से ही हो रहा है तो वह क्षुब्ध फिर होकर तीर्थयात्रा पर चले गए।

दुर्योधन आहत पड़ा मृत्यु की प्रतीक्षा में अंतिम घड़ियां गिन रहा था। तभी उसको खोजते हुए अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा यादव आ पहुंचे। अश्वत्थामा ने दुर्योधन को तड़पते देखा तो विकल होकर उसने पांडवों से प्रतिशोध की प्रतिज्ञा कर ली। उसने आग्रह करके दुर्योधन से कौरवों के अंतिम सेनापति के रूप में स्वयं अपना अभिषेक करवाया। और तीनों योद्धा भयंकर प्रतिशोध के लिए पांडवों के शिविर की ओर चल पड़े।

कृष्ण पांचों पांडवों तथा सात्यकि के साथ उस रात कहीं अन्यत्र गए थे।

रात्रि की वेला। युद्ध समाप्त हो चुका था, अतः सभी थके हुए सैनिक तथा योद्धा उस समय मृतवत् गहन निद्रा में अचेत थे।

अश्वत्थामा सबसे पहले पांचालों के शिविर में घुस गया। उसे पांचालों के प्रति घोर क्रोध था, क्योंकि वही उसके पिता की मृत्यु के कारण बने थे। रात को अचेत पड़े पांचालों के महारथी योद्धा तथा पांडवों के महासेनानायक धृष्टद्युम्न को उसने सोते समय ही सहसा दबोच लिया और उसका गला घोंटकर मार डाला। यही दशा उसने शिखंडी की भी की। फिर उसने शिविर में आग लगा दी। और उस भगदड़ में उसने तथा उसके साथ आए कृतवर्मा और कृपाचार्य ने भागते हुए अनगिनत सैनिकों को मार डाला।

उसके बाद अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पांडवों से उत्पन्न पांचों वीर पुत्रों की भी सोते में ही हत्या कर दी।

फिर तीनों वहां से पांडवों के भय से भाग निकले। उन्होंने दुर्योधन को पांडवों का वंश निर्मूल कर देने की सूचना दी।

तब दुर्योधन के भी प्राण निकल गए।

भीम तथा अर्जुन ने अश्वत्थामा का पीछा करके उसे पकड़ लिया, किंतु युधिष्ठिर की आज्ञा से गुरुपुत्र का वध न करके उसे छोड़ दिया गया। हां, उसका तेज नष्ट करने के लिए उसके मस्तक से तेजस्वी मणि छीन ली गई।

इस महासमर का परिणाम ऐसा भयावना होगा, संभवतः पांचाली ने कभी इसकी कल्पना नहीं की थी। वह अपने पुत्रों के लिए कुररी की भांति विलाप करती रही। अंत में महर्षियों द्वारा सांत्वना दिए जाने पर पांडवों ने युद्ध में मारे गए सभी योद्धाओं तथा सैनिकों का भी विधिवत् अंतिम संस्कार किया। फिर कुल के बंधु-बांधवों को जलांजलि देकर उनका श्राद्ध आदि किया।

अब हस्तिनापुर के सिंहासन पर युधिष्ठिर का राज्याभिषेक किया गया।

अपने समस्त बंधु-बांधवों से हीन पांडव अब मात्र कर्तव्य मानकर शासन करने लगे।

पूरे पंद्रह वर्ष के बाद एक दिन भीम के व्यंग्य बाणों से आहत होकर धृतराष्ट्र ने वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके तपस्या करने का विचार किया और गांधारी के साथ वन की ओर चले गए। पांडवों ने उनको हर प्रकार से रोकने की चेष्टा की, किंतु महर्षि व्यास ने 'यही धर्म है' कहकर युधिष्ठिर को शांत कर दिया। उनके साथ ही कुंती भी वन में तप करने चली गईं।

लगभग तीन वर्ष बाद दावानल के कारण भस्म होते वन में ही उन तीनों के जीवन का भी अंत हो गया।

महारानी पांचाली अब विवश-सी होकर विषादग्रस्त पांडवों के साथ जीवन के दिन काट रही थी।

पांडव विषण्ण मन से राज्य करते रहे।

समय बीतता रहा...

पचीस

महाभारत युद्ध के छत्तीस वर्षों के बाद एक अत्यंत भयंकर अविश्वसनीय कांड हो गया! ऐसा लगा मानो पुत्रशोक से संतप्त गांधारी ने युद्ध के बाद अपने पुत्रों के शवों को देखकर वासुदेव कृष्ण को उनका कुल भी इसी प्रकार विनष्ट हो जाने का जो शाप दिया था, वही सच होने का समय आ गया हो।

अर्जुन उस समय राजप्रासाद के बाहर ही खड़े अपने रथ से कहीं जाने को थे कि अचानक ही देखा, वासुदेव कृष्ण का सारथी दारुक वेग से रथ उड़ाता हुआ प्रासाद के विशाल प्रांगण में चला आया। अर्जुन किंचित आश्चर्य से ठिठककर उसकी प्रतीक्षा करते रहे। उनको विशेष आश्चर्य इस कारण हो रहा था कि दारुक उनका सम्मान कृष्ण के समान ही करता था। किंतु आज वह पांडवों की और हस्तिनापुर की मर्यादा मानो भूलकर इस प्रकार रथ को वेग से हांकता हुआ राजप्रासाद के प्रांगण तक चला आया था। दूर से ही उसने अर्जुन को अवश्य देख लिया होगा और उनके ध्वज को भी पहचान तो लिया ही होगा, तभी तो सीधा उनकी ओर ही आ रहा था; लेकिन दारुक इस प्रकार की अवमानना तो नहीं कर सकता...

रथ से कूदकर सहसा दारुक ने उनके पांव पकड़ लिए और अभिवादन के वचन कहते-कहते अचानक विकल होकर रो पड़ा।

आशंका से अर्जुन का हृदय धड़क उठा। उन्होंने दारुक को सहसा उठाकर सामने खड़ा कर लिया और आवेश के साथ बोले, "दारुक, यह क्या

है? तुमको किसने पीड़ा दी है? तुम इस प्रकार विह्वल किस कारण हो? क्या हुआ?''

''सर्वनाश...आर्य...महाविनाश...मुझे वासुदेव ने यह दारुण संवाद देने के लिए नियुक्त किया है.... ओह!''

दारुक माथे से पसीना पोंछने लगा। उसका सारा शरीर पसीने से नहा उठा था।

अर्जुन ने व्यग्र होकर पूछा, ''कहां हैं वासुदेव! संवाद क्या है? दारुक, शीघ्र कहो...क्या हुआ...वहां सब कुशल तो है....''

''कुशल ही तो नहीं है, प्रभु...कुशल तो अब...महाविनाश हो गया! आर्य.... समस्त यादवकुल देवों के अभिशाप से नष्ट हो गया.... एक-दूसरे का ही संहार कर डाला, आर्य.... स्वयं वासुदेव और हलधर ने भी अपने हाथों से यादवों का विनाश कर डाला है!''

अर्जुन स्तंभित होकर, आंखें फाड़े दारुक की ओर इस प्रकार देखते रहे मानो उसका एक शब्द भी नहीं समझ पा रहे हो।

पल-भर बाद उनको चेत आया तो उसकी बांह पकड़कर सीधे महाराज युधिष्ठिर के कक्ष में आ पहुंचे। स्वयं एक शब्द भी बोले बिना वह कर्तव्यविमूढ़-से दारुक को सामने करके चुपचाप खड़े रह गए।

धर्मराज ने मानो उसकी दशा देखकर ही बहुत कुछ समझ लिया हो। उन्होंने पहले इंगित करके दासी से कहा, ''सुमुखि, जल ले आ!''

कुछ ही देर बाद दारुक जल पीकर और संभवतः राजा युधिष्ठिर की सर्वव्यापी शांति से किंचित संभल गया, तब महाराज ने उससे यादवों का कुशलसंवाद सुनाने को कहा।

और तब दारुक ने घोर पीड़ा के साथ बार-बार रो-रोकर जो कुछ सुनाया, उससे राजप्रासाद पहले तो कुछ क्षण तक स्तब्ध हो रहा। फिर महारानी पांचाली के साथ ही सारा अंतःपुर क्रंदन करने लगा।

दारूक ने कांपते, हिलकते हुए बताया—

इधर कुछ वर्षों से द्वारका में विचित्र अनुशासनहीनता व्याप गई थी। कभी सुधर्मा सभा में एक साथ बैठकर वृष्णि, अंधक, भोज और कुकुरवंश के महान् यादव योद्धा तथा राजा एकमत होकर किसी समस्या पर विचार करके बहुमत से जो निर्णय करते थे, उसका पालन करते थे, किंतु इन दिनों—विशेषकर महाभारत होने के बाद से ही मानो उनकी एकता भंग हो गई थी। उनके बीच अब पहले का-सा ममत्व नहीं रह गया था। प्रत्येक कुल अपने को श्रेष्ठ तथा संघ का सबसे प्रमुख सदस्य मानने लगा था। हर कुल को अपनी करनी ही श्रेष्ठ लगती थी। वे अपने-अपने गौरव में ही खोए रहते। वयोवृद्ध महानायक

के आदेश का भी उल्लंघन होने लगा था। विशेष रूप से युवा यादव योद्धा तो किसी की मर्यादा का ध्यान नहीं रखते थे। यहां तक कि जिन वासुदेव के कारण यादवसंघ की शक्ति पृथ्वी के किसी भी राजा से अधिक हो गई थी, और जो अपने जीवनकाल में ही नारायण के अवतार के रूप में पूजित होने लगे थे, उनकी अवहेलना भी होने लगी थी।

द्वारका नगरी उजाड़ हो चली थी। वहां अराजकता-सी व्याप गई थी। युगों से अपने आचरण तथा मर्यादा के लिए विख्यात यादवों की उसी राजधानी में अब ऐसा देखने में आता था मानो यहां किसी पर कोई रोक-टोक रही ही नहीं। वासुदेव कृष्ण तथा हलधर बलभद्र के पराक्रम से धरती पर यादवों को कोई शत्रु तो रहा नहीं, अतः यादव युवा योद्धा अपने बल-विक्रम के कारण मद में डूबे रहते थे। उन पर मदिरा और रागरंग का नशा आठों पहर छाया रहता। उनको करने के लिए और कुछ तो रहा ही नहीं, अतः वे रात-दिन उन्मादे-से रहते और मदिरा पीकर जहां-तहां निर्लज्जता के साथ वेश्याओं को लेकर केलिक्रीडा करते रहते।

इसके साथ ही राज्य की व्यवस्था तक भंग हो चली, मानो राजपुरुषों को भी मुक्ति मिल गई हो। उन्हें अपने कर्तव्यों का कोई ध्यान नहीं रहता था। एक समय था जब द्वारकापुरी अपने सौंदर्य के लिए विख्यात थी। अब वही पुरी उजाड़-सी दीखती। कभी वहां की रथ्याओं और वीथियों में बहुरंगी तोरणों की सजावट से सारी नगरी जगमग करती रहती थी। धवज-पताकाओं तथा विभिन्न मंगलवृक्षों के पल्लवों और पुष्पों के वंदनवार चमकते रहते थे। अब वही पुरी दीन-हीन भिक्षुकों के ग्राम की भांति निष्प्रभ तथा गंदगी के ढेरों से पटी लगती थी। यादवों की देवांगनाओं जैसी ललनाएं कभी अपने पतियों के साथ देवलोक की सुंदरियों की भांति अवसर-पर्वों के अनुकूल विहार करती थीं तो समस्त लोक प्रफुल्लित होता था, किंतु अब तो उनमें भी कोई मर्यादा नहीं रही। जहां देखो, उन्मत्त युवकों और युवतियों के मिथुन रात-दिन उत्तेजक मदिरा से उन्मादे पुरी में उन्मुक्त विहार करते फिरते थे। वंदनवारों की जगह अब रात-रात-भर विलास करके लौटे युवकों तथा युवतियों के तन पर श्रृंगार की मुरझाई हुई मालाओं के फूल कितने ही दिनों से पड़े-पड़े दुर्गंध फेंकने लगते थे, किंतु कोई भी उन दुर्गंधित पुष्पों को हटाकर नगरी की शोभा बढ़ाने तक की नहीं सोचता था।

यादव पराक्रमियों ने एक दिन समुद्र से ही धरती छीनकर अपनी द्वारकापुरी को बसाया था, किंतु अब यादव योद्धाओं को नित-नित मदिरा और हीन विलास में आसक्त हो जाने पर समुद्र भी जैसे द्वारकापुरी को अनाथ-सी समझकर अपना प्रतिशोध लेने पर तुल गया हो। जब देखो, समुद्र की ओर से

चक्रवात उठकर द्वारकापुरी को जलमग्न कर देता मानो समुद्र उसे फिर लौटा लेने को व्यग्र दीखता था। चक्रवात के कारण कितनी ही बार पुरी में घोर विध्वंसलीला होती। पुष्पों और फलों से लदे पेड़ गिर जाते। कितने ही सुंदर भवन ध्वस्त हो जाते। प्रकृति जैसे बार-बार कोपलीला करके द्वारकापुरी को अपनी अपशकुन-भरी चेतावनी देती रहती थी।

तब कितने ही नागरिक कहते थे कि वे स्वयं काल को ही विचित्र भयावने वेष बनाकर द्वारका में विचरण करते देखते हैं। महानायक की आज्ञा से अपने-अपने बल-विक्रम के अभिमान में डूबे कितने ही योद्धा रात-रात-भर नगर में भ्रमण करते; पहरा देते और यादवों की रमणियों के आभूषण तथा भव्य अलंकार चुराकर भागते राक्षसों को खोज-खोजकर उनका वध करने को उद्यत रहते, किंतु उनको कहीं कोई नहीं दिखता था। पुरी में रात-रात-भर प्रहरी घूमते रहते, किंतु अगली भोर में ही कोलाहल मचता, तब पता लगता कि रात में फिर किसी वृष्णिवंशी योद्धा के छत्र चोरी चले गए, तो कहीं अंधककुल की रमणियों के सारे मणिमय अलंकार किसी ने अपहृत कर लिए। और तो और, यादव योद्धाओं के रथों पर से उनके ध्वज, छत्र तथा कवच तक चुराकर दस्यु भाग निकलते थे। प्रकृति का कोप और भी कई रूपों में सामने आने लगा था।

वृष्णिकुल की सुंदरियों को मैना पालने में बड़ी रुचि थी। रात-दिन उनकी अट्टालिकाओं पर बोलती मैना की मधुर गीतमयी ध्वनियां गूंजती रहती थीं, किंतु इधर तो वह रात-दिन कर्कश स्वर में कोलाहल-सा मचाती रहती थीं। और तो और, द्वारका की सुंदर पुष्करिणी तथा जलाशयों से जहां पहले सारसों की मधुर क्रेकाध्वनि आती थी, वहां अब प्रायः शृगालों और उलूकों की भयंकर आवाजें सुनाई पड़ती थीं। लगता मानो सारस भी अब उलूकों तथा शृगालों की अशुभ ध्वनियों का ही अनुकरण करने लगे हों।

"और तो जो होता था, वह होता ही था..." दारुक ने विकल होकर कहा, "इन दिनों द्वारका में अराजकता ही अराजकता दिखाई देती थी। कभी वासुदेव के पांचजन्य शंख का स्वर गूंजता था तो समस्त यादवसंघ में हर्ष और उत्साह व्याप जाता था और शत्रुवर्ग की छाती दहल उठती थी। किंतु अब वही पांचजन्य बजता तो विचित्र कोलाहल-सा होता और वृष्णि वीथी के आस-पास हजारों गर्दभ रेंकते से जान पड़ते थे। यह सब देखकर अंत में यादवसंघ के महान् कुलपुरुषों ने विचार किया। सुधर्मा सभा में बैठकर बड़ी देर तक मंत्रणा करने के बाद वासुदेव कृष्ण, बलदेव, महामना वभ्रु आदि समर्थ कुलपुरुषों के आदेश से राजपुरुषों ने द्वारकापुरी में उसी दिन घोषणा करवा दी कि आज से समस्त वृष्णिकुल तथा अंधकवंशियों के यहां किसी प्रकार की मदिरा नहीं तैयार की जाएगी। समस्त नगरवासियों को भी राजकीय आदेश सूचित कर दिया गया।

आदेश का पालन करवाने के लिए कठोर शासन किया गया। घोर दंड की व्यवस्था की गई—जो भी व्यक्ति छिपाकर मदिरा बनाएगा अथवा मदिरा क उपभोग करेगा, उसको सपरिवार सूली पर चढ़ा दिया जाएगा...''

किंतु कठोर दंड की घोषणा होने पर भी उसका पालन नहीं के समान ही हुआ। और भी कितने ही अनाचार होने लगे थे। संघ की ओर से ऐस आदेश पाकर भी यादव युवाओं को कोई चिंता नहीं हुई। वे पहले की तरह ह उन्मत्त होकर विहार करते रहे। यहां तक कि वे गुरुजनों की बात मानने की जगह उनकी घोर अवहेलना करने लगे। फिर तो स्वयं कृष्ण तथा बलदेव तक की अवहेलना की जाने लगी थी। वृष्णि तथा अंधक कुल की युवतियां भी पीछे नहीं रहीं। अब वे खुलकर पाप करने लगी थीं। उनको न तो किसी मर्यादा की चिंता थी, न लज्जा। पराक्रमी कुलों के युवक तथा युवतियां अब तो रथ्याओ और वीथियों में खुलकर विलास करते फिरते थे। समाज की कोई मर्यादा ह नहीं रही। तब बहुत सोचकर कुछ दिनों के लिए समस्त यादवों को द्वारका से दूर कहीं तीर्थस्थान पर ले जाने का निश्चय किया गया। अंततः वासुदेव कृष्ण की आज्ञा से राजपुरुषों ने आदेश की घोषणा कर दी कि समस्त यादव समुद्र-तट पर प्रभासतीर्थ की यात्रा के लिए तैयार हो जाएं।

प्रभासक्षेत्र द्वारका के निकट ही था और यादवों को वह रमणीक तीर्थस्थल विशेष प्रिय भी था। वहां की तीर्थयात्रा नीरस धार्मिक यात्रा मात्र नही होती थी, वरन् उस रमणीक स्थल पर आनंद का भी सुंदर आयोजन था।

यादवों ने सुनते ही उत्साह के साथ तैयारी आरंभ कर दी। उन्होंने अनेक प्रकार के भक्ष्य-भोज्य पदार्थों के साथ ही विविध श्रेणी के मद्य तथा सुस्वादु मांस भी सिद्ध करवाकर अपने साथ ले लिए। खाने-पीने की विपुल सामग्री लेकर यादव लोग रथ, हाथी और अश्व आदि वाहनों पर द्वारका से निकलकर प्रभासतीर्थ पहुंच गए और वहां की विशाल शालाओं में रहने लगे।

वसुदेव के भ्राता देवभाग के पुत्र उद्धव अत्यंत ज्ञानी तथा धार्मिक निष्ठा वाले प्राणी थे। उनका कृष्ण के साथ बड़ा गहन संबंध था और कृष्ण भी उनको हृदय से चाहते थे। यादवों को प्रभासतीर्थ पर बसकर आनंद मनाते देखकर उद्धव ने उन सबसे आज्ञा ली और स्वयं दूर तीर्थ करने के लिए चल पड़े।

कृष्ण को उद्धव बहुत प्रिय थे और वह उनका बहुत सम्मान भी करते थे। किंतु उस दिन कृष्ण ने उनको जाने से नहीं रोका। वह मानो पहले से ही जानते थे कि अब यहां क्या होने वाला है।

उसके बाद ही एक विचित्र कांड हो गया...

तीर्थस्थल पर ब्राह्मणों को खिलाने के लिए भी यादव अपने साथ

विपुलमात्रा में पकवान तैयार करके लाए थे, किंतु उन्होंने स्नान आदि करने के बाद वह सारा पकवान वानरों को खिला-खिलाकर उस हीन कोटि की क्रीड़ा का आनंद लिया। उनके मनोरंजन का यह उच्छृंखल रूप देखकर कृष्ण आदि सभी यादव महापुरुषों को दु:ख हुआ, किंतु यादवों की प्रवृत्ति इस समय उनका उपदेश सुनने के योग्य नहीं थी, अत: वे चुप ही रहे।

उसके बाद सहसा यादवों में उन्मुक्त आनंद मनाने का उत्साह जाग उठा। सब यादव एकत्र होकर अपने साथ लाई विविध प्रकार की मदिरा का पान करने लगे। यह कोई नई बात नहीं थी। यादव योद्धा जब भी प्रसन्न होते तो इस प्रकार एकत्र होकर प्राय: पान-महोत्सव मनाते ही थे। महापान आरंभ हुआ तो स्वयं कृष्ण तथा बलदेव भी उस पानगोष्ठी में अपने समस्त सखाओं के साथ यादवों का उत्साह बढ़ाते हुए मुक्त मन से मदिरापान करने लगे। उनके निकट ही कृष्ण के महाबली अनुज गद बैठे थे और उनके साथ ही वभ्रु तथा युयुधान सात्यिक भी आनंद से सुरापान कर रहे थे।

कुछ ही परे अंधक और भोज कुलों के अनेक योद्धा बैठे महापान का आनंद ले रहे थे। उनमें कृतवर्मा आदि अनेक ऐसे योद्धा भी थे, जिन्होंने कृष्ण तथा वृष्णिवंशियों की इच्छा के विपरीत महाभारत संग्राम में कौरव दुर्योधन का पक्ष लेकर युद्ध किया था और पांडव पक्ष के अनगिनत योद्धाओं की मृत्यु का कारण बने थे। दुर्दैववश सात्यकि के सामने ही कृतवर्मा बैठा था। महाभारत के बाद यादवसमाज में कृतवर्मा की पहले की-सी प्रतिष्ठा नहीं रह गई थी। उसके प्रति पांडवों के साथ वैर करने का ऐसा अनैतिक कार्य जुड़ गया था कि यादवों को उससे घृणा-सी हो गई थी। किंतु यादवों ने ही तो निश्चित किया था कि हर व्यक्ति अपनी इच्छा से निश्चय करे कि किस पक्ष का साथ देगा! उसके अनुसार तो कृतवर्मा ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया था कि उसका बहिष्कार किया जाता। तो भी सभा-समाज में कृतवर्मा को अब आदर नहीं मिलता था, यह सभी जानते थे। यही कृतवर्मा पहले यादवों में अतिरथी माना जाता था और स्वयं कृष्ण भी उसका सम्मान करते थे, किंतु महाभारत युद्ध के बाद कृतवर्मा का स्थान यादवसंघ में गिर-सा गया था।

युयुधान सात्यकि, कृष्ण तथा अर्जुन के समान रूप से सखा थे। मदिरा के आवेश में सात्यकि अपने ऊपर से नियंत्रण खो बैठे। उनको सहसा अपने सखा अर्जुन की पत्नी पांचाली का विलाप याद आने लगा। अपने पांचों पतियों से प्राप्त पांचों पुत्रों के शोक में कातर होकर वह किस तरह विलाप कर रही थी! वह दृश्य आंखों के सामने उभर आया। उस दिन युद्ध समाप्त हो जाने पर भी अश्वत्थामा के कहने पर इस नारकीय कृतवर्मा ने कितना जघन्य कांड किया था! और इतना ही नहीं, कृष्ण की परमप्रिया सत्यभामा के पिता सत्राजित

को भी इस कृतवर्मा ने ही अपने अनुज शतधन्वा से मरवा डाला था। इसको स्यमंतक मणि का स्वामी बनने की लालसा ने इतना विक्षिप्त कर दिया था कि यह कोई भी कांड करने पर तुल गया था।

बस, आक्रोश से धधकते युयुधान ने अकस्मात् तिरस्कार-भरे स्वर में कृतवर्मा की भर्त्सना करते हुए कहा, ''तुझ जैसा नीच कौन होगा! तूने तो ऐसे निर्दोष योद्धाओं को रात की वेला में उस समय मार डाला जब वे सर्वथा निश्चिंत होकर सोए थे। उनकी हत्या करके तूने कौन-सी वीरता दिखाई? निद्रा में अचेत पांचाली के सुकुमार बालक तो शव की भांति निश्चल पड़े थे। पांचाली के उन पुत्रों की निर्ममतापूर्वक हत्या करवा तूने घोर जघन्य अपराध किया है! यदुवंशी तुझ जैसे नृशंस हत्यारे को कभी क्षमा नहीं कर सकते।''

उस समय रुक्मिणीनंदन अतिरथी प्रद्युम्न भी मदिरा के आवेश में थे। वह कृतवर्मा की भर्त्सना करते सात्यकि की सराहना करने लगे।

कृतवर्मा स्वयं भी मदिरा पीकर आवेश में अपनी सुधबुध खो बैठा था। उसने सात्यकि की ओर बाएं हाथ की अंगुली उठाकर उनका तिरस्कार करते हुए कहा, ''अरे तू तो इतना बड़ा वीर बनता है, लेकिन तुझे क्या याद नहीं कि युद्ध में जब महाबली कौरव योद्धा भूरिश्रवा की बांह कट गई थी और वे मरणांतक उपवास करने का निश्चय करके निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर बैठ गए थे, उस समय तूने आततायी की भांति नृशंसतापूर्वक उनकी हत्या कर दी थी!''

युद्धभूमि में भूरिश्रवा ने सहसा ही सात्यकि को अपनी बांहों में जकड़ लिया था और उनको बलिपशु की भांति घसीटते हुए ले जाने लगे थे, तब अर्जुन ने ही शर-संधान करके भूरिश्रवा की बांह काटकर सात्यकि की प्राणरक्षा की थी। और उसी समय भूरिश्रवा ने शस्त्र त्यागकर अनशन द्वारा प्राण त्याग देने का निश्चय कर लिया था।

कृतवर्मा की बात सुनकर कृष्ण ने रोषपूर्वक उसकी ओर देखा।

उसी समय सात्यकि ने कृष्ण को बताया कि इस नीच दुरामा कृतवर्मा ने ही स्यमंतक मणि के लालच से अपने भाई शतधन्वा से महाभागा सत्यभामा के पिता आर्य सत्राजित की हत्या करवा दी थी!

यह सुनते ही सत्यभामा ने पितृघाती कृतवर्मा की ओर विषाक्त दृष्टि से देखा और रोती हुई पति के अंक में चली गईं।

उनका कातर विलाप सुनकर सात्यकि ने सहसा ही क्रोध से भरकर अपना खड्ग उठा लिया और बोले, ''तुम विलाप मत करो, सुमध्यमे! मैं अभी इस पापी को इसके समस्त अपराधों का दंड देता हूं। रात को गहरी नींद सोए असावधान वीरों की हत्या करने वाले इस नीच को जीवित रहने अधिकार नहीं!''

युयुधान किसी के कुछ कर पाने के पहले ही सहसा दौड़े और उन्होंने कृतवर्मा का सिर काट लिया। मदिरा के आवेश में उन्मत्त सात्यकि कृतवर्मा के साथ बैठे उन लोगों का भी वध करने लगे जो कृतवर्मा के समर्थक थे। फिर तो भोज तथा अंधकवंश के योद्धाओं ने सात्यकि को घेरकर उन पर आघात करना आरंभ कर दिया। मदिरा के आवेश से उन्मत्त यादवों में उस समय मानो महाकाल के संकेत पर भीषण युयुत्सा जाग उठी और देखते ही देखते वे एक-दूसरे का संहार करने लगे।

यादव वहां मनोरंजन और तीर्थ पर पुण्यलाभ की कामना से आए थे। फिर इस समय तो महापान ही चल रहा था, अत: यादवसंघ की महाशक्ति का डंका सारे लोक में बजाने वाले वे महारथी यादव उस समय युद्ध के लिए तो तत्पर नहीं थे। उन्होंने अपने शरीर पर आत्मरक्षा के लिए कवच आदि भी नहीं धारण कर रखे थे। उनको क्रोधावेश में जो कुछ भी मिला, उसी को ले-लेकर एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। आसपास जो जूठे बरतन तथा मदिरापान के लिए रखे चषक और कोशिकाएं आदि मिलीं, वे उनसे ही प्रहार कर रहे थे।

सात्यकि अब अंधक तथा भोजकुल के योद्धाओं से घिर गए थे। कुछ के पास सात्यकि की ही भांति खड्ग तथा असि आदि शस्त्र भी थे। सात्यकि उनके प्रहार से आहत होकर थकने लगे। उनको घिरा देखकर वासुदेव कृष्ण के समान ही पराक्रमी रुक्मिणीनंदन प्रद्युम्न सात्यकि की रक्षा करने के लिए उस ओर झपटे। किंतु उस समय तो सबके सब मानो काल के वश में हो गए थे। सात्यकि को बचाने के लिए आए प्रद्युम्न पर भी मदमत्त यादवों ने घातक प्रहार करना आरंभ कर दिया। फिर तो मानो युद्ध की घोषणा ही हो गई। दोनों पक्षों के और भी कितने ही योद्धा झपटकर दूसरे पक्ष की हत्या करने लगे। उस समय किसी को यह भी याद नहीं रहा कि यादवकुल के शिरोमणि और वृष्णिवंश के दोनों महाबली योद्धा कृष्ण और बलदेव उस समय वहीं उपस्थित हैं। किसी को न तो किसी की सुधि रह गई थी, न किसी मर्यादा की चिंता।

उस भीषण गृहयुद्ध में देखते ही देखते अनेक महाबली योद्धा काम आ गए। कृष्ण ने देखा कि युयधान सात्यकि गिर गए...फिर उनका पुत्र महाबली प्रद्युम्न भी वीरगति पा गए। तब तो उनको भयानक क्रोध आया। उन्होंने उठकर तत्काल समुद्र के किनारे उगे एरका नामक बांस जैसे पौधे को ही उखाड़ लिया और उसी से यादवों का संहार करने लगे। कृष्ण अपने प्रिय सखा सात्यकि तथा अपने पुत्र अतिरथी प्रद्युम्न की हत्या हो जाने से स्वयं भी आपा खो बैठे थे। जो भी उनके सामने पड़ जाता, वे एरका नामक उस दंड के प्रहार से ही मार-मारकर उसका अंत कर देते थे। उनको भी यादवों के संहार में लगा देखकर बलदेव सहसा ही उछलकर उठ खड़े हुए। उनके देखते-देखते कितने ही

वृष्णिवंशियों का संहार हो गया था। वे क्रोधावेश में स्वयं भी यादवों पर टूट पड़े और उनका वध करने लगे। फिर तो वहां कोई भी ऐसा नहीं रहा जो युद्ध से वंचित रहता। जिनके पास कोई शस्त्र नहीं था, वे भी एरका-दंड उखाड़-उखाड़कर उसी से प्रहार करने लगे।

उस भयानक युद्ध में कृष्ण के पुत्रों में से सांब तथा चारुदेष्ण जैसे पराक्रमी योद्धा और प्रद्युम्न के पुत्र महापराक्रमी अनिरुद्ध भी मारे गए। यह देखकर कृष्ण का आवेश इतना बढ़ा कि बिना कुछ देखे समस्त यादवों का संहार करने लगे। बलदेव भी महाकाल की भांति यादवों का संहार कर रहे थे।

अंततः यादवों का कुल लगभग नष्ट हो गया।

कृष्ण भीषण संहार के कारण विक्षुब्ध-से एक ओर मूसल के समान ही दृढ़ एरका-दंड के सहारे खड़े उस विचित्र कांड के विषय में शोकमग्न थे कि उनके परमप्रिय सारथी दारुक ने बलशाली वभ्रु के साथ आकर विनम्र स्वर में कहा, ''भगवन्, अब तो सबका संहार हो गया! जिन यादवों की आप सदा रक्षा करते आए हैं, आज उनमें से अधिकांश का वध स्वयं आपके ही हाथों हुआ है। आपके महाबली अग्रज बलदेव नहीं दिखाई पड़ रहे हैं...हमें उनकी खोज करनी चाहिए।''

विष्ण्ण मन वासुदेव कृष्ण भी दारुक तथा वभ्रु के साथ हलधर बलदेव के चरणचिह्न देखते हुए उनको खोजने लगे।

कुछ ही देर बाद अनंत पराक्रमी बलदेव उनको एक वृक्ष के नीचे समाधि-सी लगाकर बैठे दिखाई पड़े।

उनकी ओर देखकर मानो कृष्ण को भान हो गया कि अब बलदेव भी इस महासंहार के बाद अनशन द्वारा प्राणत्याग करने का निश्चय कर चुके हैं। वह कुछ विह्वल-से होकर बोले, ''दारुक, तुम तत्काल रथ लेकर वेग से कुरु राज्य की राजधानी हस्तिनापुर जाओ और अर्जुन को इस महासंहार की सूचना दो। कहना कि वे तुरंत ही द्वारका आ जाएं।''

दारुक ने पल-भर रुककर निःश्वास छोड़ी फिर धर्मराज की ओर देखकर कहा, ''उनका आदेश पाते ही मैं तत्काल चल पड़ा था प्रभु... आते-आते सुना था—वासुदेव ने महातेजस्वी वभ्रु से कहा, 'आप यहां से तुरंत द्वारका चले जाइए और वहां स्त्रियों की रक्षा का उपाय कीजिए। कहीं ऐसा न हो कि अवसर पाकर दस्युओं का दल पहुंचकर धन के लोभ में उनको यातना दे अथवा हिंसा ही करने पर तुल जाए।'

'वभ्रु चले ही थे कि सहसा किसी ने उन पर भी प्रहार कर दिया और वे निष्प्राण होकर धरती पर गिर पड़े। तब कृष्ण ने ध्यानरत हलधर को संबोधित करके कहा, 'अग्रज, यह तेजस्वी वभ्रु भी हमारी आंखों के सामने ही

मारे गए। अब तो मुझे ही जाना होगा। मैं द्वारका जाकर कुटुंबीजनों को स्त्रियों की रक्षा का भार सौंपकर आता हूं। आप यहीं मेरी प्रतीक्षा करें।' और वे स्वयं रथ लेकर द्वारका की ओर चल पड़े थे....'' दारुक चुप हो गया।

कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा।

अकस्मात् ही कातर विलाप से राजभवन हिल-से उठे। पांचाली और सुभद्रा को किसी भी प्रकार विश्वास नहीं आता था कि यादवों के महाशक्तिशाली संघ की यह परिणति हुई है।

पांचाली ने आर्तनाद करते हुए अर्जुन से कहा, ''फाल्गुन! तुम तत्काल जाकर हमारे सखा को यहीं ले आओ.... हम उनके बिना जीकर ही क्या करेंगे। उन्होंने तुमको बुलाया है तो निश्चय ही तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे....''

पांडवों में से हर किसी ने अर्जुन को तुरंत द्वारका पहुंचने को कहा।

देखते ही देखते उनके लिए सारी तैयारी कर दी गई। गांडीव लेकर भी सव्यसाची अर्जुन आज निराश-हताश थे। वे निरुत्साहित-से दारुक के साथ ही रथ पर बैठकर द्वारका की ओर चल पड़े।

अर्जुन को आशा थी कि वासुदेव कृष्ण अवश्य उनकी प्रतीक्षा करते मिलेंगे, किंतु निराशा ही मिली। जिनके तेज से द्वारकापुरी प्रकाशित होती रहती थी, वह केशव आज उनको कहीं नहीं दिख रहे थे। दारुक मौन साधे रथ सीधा वृष्णिकुल की वीथी की ओर ले गया। वासुदेव कृष्ण के राजभवन के सामने पहुंचकर उसने रथ रोक दिया। अर्जुन अविश्वास के साथ देखते रहे। सदासुहागिन रहने वाली द्वारकापुरी आज किसी विधवा स्त्री की भांति निस्तेज और श्रीहीन लग रही थी। उनका रथ पहुंचते ही सहसा कृष्ण के भवन से उनकी स्त्रियों का करुण क्रंदन और भी तीव्र होकर गूंजने लगा। स्वयं कृष्ण जैसे पति और उनके ही समान पराक्रमी अपने पुत्रों से हीन होकर कातर स्त्रियां आर्तनाद करती हुई अर्जुन को घेरकर खड़ी हो गईं। सौभाग्य को महाकाल की चुनौती-सी देने वाली, वृष्णिकुल के पालक कृष्ण की उन पत्नियों को रुदन करती देखकर अर्जुन से नहीं रहा गया। वह किसी से एक शब्द तक न कह सके, न उनके कुछ पूछ ही सके। वह स्वयं ही बालक की भांति फूट-फूटकर रोने लगे। रुक्मिणी, कालिंदी, सत्यभामा, भद्रा आदि पत्नियां सदा सौभाग्य के चिह्नों से सुसज्जित रहती थीं, आज उनको शिशिर ऋतु की कमलिनी की भांति श्रीहत तथा आर्त, कातर स्वर में विलाप करती देखकर अर्जुन सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

उनको मूर्च्छित देखकर सत्यभामा तथा रुक्मिणी उनकी ओर दौड़ी आईं। अन्य रानियां भी वहीं चली आईं। उन्होंने किसी प्रकार अर्जुन को संभाला।

उन्होंने पति के परमप्रिय सखा अर्जुन को उठाकर आसन पर बैठा दिया और स्वयं एक शब्द भी बोले बिना उनके निकट ही बैठी रहीं। उनके पास मानो कहने को कुछ रहा ही नहीं।

अर्जुन ने अपने को संभाला और सांत्वना देने योग्य शब्द न होने पर भी उनको धीरज बंधाने की चेष्टा करते रहे।

बड़ी देर बाद जब रानियां कुछ शांत होकर शोक से क्लांत, चुपचाप पड़ रहीं, तो अर्जुन अपने मातुल वासुदेव के पास पहुंचे।

उनकी दशा देखी नहीं जाती थी। महापराक्रमी वसुदेव का तेजस्वी मुखमंडल इस समय मानो राख से ढक गया हो। उनमें इतनी भी शक्ति नहीं बची थी कि वह उठकर अर्जुन का सिर सूंघकर आशीर्वाद देते। अर्जुन स्वयं उनके पास गए तो उन्होंने उन्हें बांहों में भर लिया और अत्यंत दीन स्वर में बोले, ''अर्जुन, यह सब तुम्हारे उन्हीं दोनों शिष्यों...तुम्हारे परमप्रिय प्रद्युम्न और सात्यकि के कारण हुआ है, जिनको तुम इतना चाहते थे...वे दोनों ही वृष्णिकुल के अतिरथी योद्धा थे। कृष्ण भी उनको समान रूप से प्रिय मानते थे...किंतु उनके ही अपराध से आज वृष्णियों के कुल का विनाश हो गया। जिन अतिरथी योद्धाओं के रथों की गड़गड़ाहट से धरती कांपती थी, आज वे मुझे कहीं दिखाई नहीं पड़ते। आह! यह कुल नष्ट हो गया, अर्जुन...''

अपने पुत्रों, पौत्रों तथा महाबली भ्राताओं आदि को याद कर-करके वसुदेव विलाप करने लगे। अर्जुन ने उनको भी कितने ही शस्त्रोक्त वचनों का उदाहरण देकर शांत करना चाहा, किंतु आज वसुदेव शूरसेन के वह महापराक्रमी वसुदेव नहीं थे। वे तो शोक से कातर होकर किसी बालक की भांति रो रहे थे।

कुछ देर बाद मानो सहसा कर्तव्य याद हो आया हो, वसुदेव ने अपने भागिनेय अर्जुन को बताया, ''कुल का संहार हो जाने पर कृष्ण मेरे पास आए थे। उन्होंने कहा था—'आज इस कुल का संहार हो ही गया, पूज्य! आप यहां रहकर कुलवधुओं तथा बालकों की रक्षा करें। मैंने दारुक से हस्तिनापुर संवाद भेज दिया है। महासंहार का संवाद मिलने पर अर्जुन निश्चय ही अविलंब आएंगे। उस समय अर्जुन आप लोगों को जो परामर्श दें, उसी पर चलिए। अर्जुन और मुझमें कोई भेद नहीं। जो मैं हूं, वही अर्जुन हैं। उनसे कहिएगा कि जो यादव कुलवधुएं गर्भवती हैं तथा जिनका प्रसवकाल निकट हो, उन पर और अबोध बालकों पर अर्जुन विशेष ध्यान दें.... अब मैं भी जाकर अग्रज बलदेव के साथ किसी तपोवन में काल की प्रतीक्षा करूंगा!'

''इतना कहकर कृष्ण बालकों तथा यादवकुल की स्त्रियों का भार मुझे

सौंपकर न जाने किस दिशा में चले गए।'' वसुदेव दोबारा विह्वल हो गए।

अर्जुन ने कहा, ''अब तो हमारी समझ में स्वयं हम सबका भी काल आ ही गया है...वृष्णिकुल के प्रमुख वासुदेव कृष्ण और अपने समस्त भ्राताओं से हीन इस धरती से अब हमें कोई मोह नहीं रहा। हमारे अग्रज युधिष्ठिर को भी अब इस पृथ्वी से कोई मोह नहीं है... महाभारत में सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी हम वृष्णिकुल से ही अपने को कुलीन तथा संपन्न मानते थे, किंतु अब तो हम पांचों पांडवों से ही नहीं, पांचाली से भी यह धरती देखी नहीं जाएगी। अपने परम प्रिय सखा और भ्राता माधव के बिना वह भी जीना नहीं चाहेगी। अब कुल में जो भी स्त्री-बालक-वृद्ध बचे हैं, उनमें से मैं किसी को यहां नहीं रहने दूंगा। समुद्र का प्रचंड रूप देखकर लगता है कि पराक्रमी यादवों के पतन के बाद मानो वह भी अपना प्रतिशोध लेने को उमड़ रहा है। न जाने कब द्वारकापुरी समुद्र के गर्भ में समा जाए। ऐसे में मैं यहां से आप सबको अपने साथ ही हस्तिनापुर ले जाऊंगा।''

वसुदेव ने कहा, ''पांडुनंदन, सौभाग्य की बात है कि तुम यहां आ गए। अब तुमको जो भी उचित लगे, करो। मैं तो अब तुम्हारे दोनों पराक्रमी भाइयों बलराम और कृष्ण के साथ ही अपने समस्त कुल के नष्ट हो जाने पर एक पल को भी जीवित नहीं रहना चाहता। इसी पल से मैं भी न तो भोजन ग्रहण करूंगा, न इस जीवन की रक्षा करूंगा।''

वसुदेव समाधिस्थ-से होकर बैठ गए।

व्याकुल अर्जुन उनके पास से सीधे सुधर्मा सभा में पहुंचे। देवताओं की सभा को भी लज्जित कर देने वाली यादवों की यह विशाल सभा भी आज जैसे श्रीहीन हो गई थी। अर्जुन चुपचाप एक आसन बैठ गए। उस समय विशाल यादवसंघ के महामंत्री तथा अमात्यगण एवं राजपरिषद् के समस्त वयोवृद्ध सदस्य भी आकर उनको घेरकर मंडलाकार बैठ गए। वे सभी इस समय कर्तव्यविमूढ़ थे। वे तथा दीन, उदास-से होकर अर्जुन के सामने बैठे रहे। स्वयं अर्जुन की दशा भी उनकी भांति ही दयनीय थी, किंतु कर्तव्य तो पूरा करना ही था। उन्होंने कहा, ''अमात्यगण, समुद्र की विक्षोभकला को देखते हुए लगता है कि यह शीघ्र ही समूची पुरी को निगल लेगा, अतः समय रहते ही इसको छोड़ देना उचित होगा। मेरे विचार से तो आज के सातवें दिन तक हमको यहां से निकल ही जाना चाहिए। आप सब इसी अवधि में सभी साधनों को एकत्र करवा लें। जितने रत्न, वस्त्र, अलंकार आदि हों, अथवा और जो भी सामग्री हो, उनको रथों-शकटों आदि पर लदवाकर तैयारी कर लें। फिर सबको ले चलने के लिए पर्याप्त वाहन तथा अश्व-गज आदि पशुओं का भी प्रबंध कर लें।

ध्यान रहे कि यहां कुल का कोई भी वृद्ध, बालक अथवा स्त्री नहीं रहने पाए। कहीं कोई छूट न जाए। वहां चलकर वासुदेव कृष्ण के पौत्र वज्र का राज्याभिषेक करके उनको राजा बनाया जाएगा। उनके अधीन रहकर ही आप लोग पहले की ही भांति प्रजा तथा धरती का पालन करें।''

अर्जुन का आदेश पाकर मंत्रियों तथा समस्त अधिकृतों ने उसी के अनुकूल द्वारका छोड़कर हस्तिनापुर की यात्रा की तैयारी आरंभ कर दी।

एक बार सावधानी के लिए पुरी की स्थिति को ध्यान से देख लेने के बाद स्वयं अर्जुन फिर कृष्ण के भव्य प्रासाद की ओर चले आए। रात वहीं विश्राम करने का विचार था। शोक तथा क्लांति से वह इतनी देर में थककर चूर हो गए थे। किंतु वहां पहुंचते ही एक बार फिर भयानक शोकावेग ने जकड़ लिया—महात्मा वसुदेव ने इस बीच प्राण त्याग दिया था। और शूरसेनक्षेत्र के उन महाप्रतापी के भवन में कातर स्वर में विलाप करती स्त्रियां किसी भी प्रकार धीरज नहीं धारण कर पाती थीं।

अर्जुन को मातुल की मृत्यु का शोक और भी क्लांत कर गया, फिर भी कर्तव्य मानकर वह प्रतापी वसुदेव के अंतिम संस्कार की तैयारी करवाने में लग गए।

द्वारकापुरी से लौटकर आए अर्जुन का रूप देखकर कोई उनको पहचान तक नहीं सका। वह इस छोटी-सी अवधि में अत्यंत कृशकाय और निर्बल तबा दीन दिखाई देने लगे थे। कृष्ण के कुल के महासंहार के बाद पांडवों पर जो प्रभाव पड़ा था, वह तो पड़ा ही था, किंतु अर्जुन को तो मानो कहीं कोई और भी पीड़ा साल रही थी। युधिष्ठिर ने उनसे द्वारका के विषय में विस्तार से बताने को कहा तो अर्जुन अत्यंत खिन्न होकर बोले, ''जो भी हुआ, वह स्वयं महाकाल का कृत्य था! अत: उसको रोकने की शक्ति किसी में नहीं थी। यदि ऐसा न होता तो क्या मेरे संरक्षण में वहां के कितने ही सैनिकों के साथ आने पर भी यादवकुल की युवतियों को आभीर लूट ले जाते! मैं उनकी रक्षा करने में भी समर्थ नहीं हो सका...''

यह सुनकर घोर आघात लगा। युधिष्ठिर का चेहरा एकदम पीला पड़ गया। पांचाली तो आंखें फाड़े देख ही रही थी। उनकी उत्सुकता देखकर अत्यंत दारुण पीड़ा देने वाली घटना होने पर भी अर्जुन ने भारी स्वर में पूरी कथा कह सुनाई।

उन्होंने बताया कि द्वारकापुरी में उनका कितने गहन शोक का सामना करना पड़ा था। मातुल के अंतिम संस्कार के बाद प्रभासक्षेत्र में जाकर वहां

धराशायी पड़े यादवों को देखकर घोर पीड़ा हुई। फिर भी उन्होंने किसी प्रकार समस्त मृतकों का अंतिम संस्कार कराया। दारुक की सहायता से उन्होंने बड़े यत्नपूर्वक वृष्णिकुल के महापराक्रमी हलधर बलदेव तथा देवकीनंदन कृष्ण के भी शरीर खोज लिए और उनका भी अंतिम संस्कार करवाया। अर्जुन सहसा रो पड़े। बोले, ''जिनकी रक्षा में रहकर मैंने कौरवों को ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं का विनाश कर डाला था और जो मेरे परम प्रिय सखा और सर्वस्व थे, उन्हीं कृष्ण को मैंने अपने सामने दग्ध होते देखा!''

पांचाली और सुभद्रा तो आर्तनाद करती हुई बार-बार अचेत होने लगीं।

अंत में अर्जुन ने जो कुछ कहा, वह वास्तव में बड़ा ही विकट था। उन्होंने बताया कि सातवें दिन प्रातःकाल ही वे यादवों के बालकों, वृद्धों तथा स्त्रियों को रथों, हाथियों आदि पर बैठाकर द्वारकापुरी से चल पड़े। सबसे बड़ी संख्या उस यात्रा में यादवकुल की स्त्रियों की ही थी। द्वारका से उनके साथ यादवों के ही नहीं, अन्य सभी सभी वर्णों के पुरुष तथा स्त्रियां भी यात्रा कर रही थीं। इनके अतिरिक्त शकटों आदि पर लदी अपार संपदा—रत्न आदि भी थे। अर्जुन ने उनकी रक्षा का हर उपाय कर दिया था। अंधक, वृष्णि आदि यादवों के भृत्यों का समूह उस समय अश्वों तथा हाथियों पर अपने-अपने शस्त्रास्त्र से संनद्ध होकर स्त्रियों तथा असमर्थ वृद्धों को बीच में करके सावधानी से चल रहा था।

कई दिन की यात्रा के बाद वे पंचनद प्रदेश में पहुंचे। अर्जुन ने वहीं शिविर डालकर एक रात बिताने का निश्चय किया।

उसी क्षेत्र में उन दिनों बर्बर आभीरों का समुदाय भी एकत्र था। वे तो ऐसे भी लूटपाट करके ही जीवनयावन करते थे। उन अनार्य आभीरों को केवल अपने हित से मतलब था। एक साथ अपार धन-रत्न सहित इतनी बड़ी संख्या में यादव कुल की सुंदर युवतियों को मात्र अर्जुन के साथ जाती देखकर उन्होंने अपने दंड संभाले और सहसा घोर गर्जन करते हुए आक्रमण कर दिया। उनको पीछे से आक्रमण करते देखकर अर्जुन उसी ओर लौट पड़े। उन्होंने आभीरों को ललकारकर उनको धृष्टता न करने को कहा और अपना शस्त्र संभालने लगे। किंतु अर्जुन को यह देखकर क्रोध आ गया कि आभीरों ने उनके आदेश की अवहेलना करके समुदाय पर आक्रमण कर ही दिया। आवेश से भरे अर्जुन ने अपना गांडीव संभाला और उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने लगे। तब उनको आश्चर्य हुआ कि आज गांडीव की प्रत्यंचा चढ़ाने में भी वह घोर कष्ट अनुभव कर रहे थे। कदाचित घोर शोक अथवा क्लांति के कारण उनकी शक्ति क्षीण हो चली थी।

आभीरों का दल इस बीच निरंतर आक्रमण करके लूटपाट मचा रहा था। अर्जुन यह देखकर क्षुब्ध हो उठे कि उनके देखते-देखते आभीरों ने भयंकर मारकाट छेड़ दी। उस समय यादव सुंदरियों की संख्या ही सबसे अधिक थी, अत: आभीर उनकी ओर ही लोभ से उमड़-उमड़कर उनका अपहरण करने लगे। अर्जुन को इस स्थिति पर घोर लज्जा आई। वे अब तक गांडीव पर अपने अनेक अमोघ बाणों का संधान करने का निष्फल प्रयास कर चुके थे। हां, उनके साथ घेरा बनाकर रक्षा करने के लिए चलते अंधक-वृष्णि यादवों के सैनिक अवश्य अपनी ओर से आभीरों से युद्ध करने लगे थे। किंतु वे भी आभीरों के उस विशाल दल के सामने कुछ नहीं कर पा रहे थे।

उनकी विवशता मानो आभीरों की समझ में आ गई थी। फिर तो वे खुलकर स्त्रियों को ही लूटने में लग गए। अर्जुन को अपनी इस स्थिति पर घोर क्षोभ हो रहा था। उन्होंने तथा यादवों के समस्त योद्धाओं ने मिलकर प्रबल चेष्टा की, फिर भी वे उन लुटेरों के हाथों लगी अपने द्वारा संरक्षित युवतियों को लौटा नहीं पाए।

उनमें से कितने ही लुटेरे तो मात्र दंड और यष्टि लेकर ही आक्रमण करके उनको आहत कर रहे थे, किंतु अर्जुन उनसे भी किसी की रक्षा नहीं कर पा रहे थे। आभीरों का दल बलात् स्त्रियों को अपने वश में कर रहा था और विकट स्वर में गर्जन तथा कोलाहल भी करता जा रहा था। अर्जुन ने देखा, आभीर दस्यु उन सुंदर यादवियों को हाथ पकड़कर खींचते हुए अपने साथ ले जाने लगे थे। और उससे भी भयानक यह था कि अब संभवत: रक्षा से वंचित रहने के कारण कितनी ही क्रंदन करती भीरू स्त्रियां अपमानजनक ढंग से खींचकर ले जाए जाने से बचने के लिए अथवा उन असभ्य आभीरों द्वारा अपने तन पर स्पर्श अनुभव करने की लज्जा से बचने के लिए अपने-आप चुपचाप उनके साथ जाने लगीं।

तब भी जब तक वश चला, अर्जुन अपने गांडीव से बाणवर्षा करते रहे, किंतु कुछ ही देर में वह अशक्त-से हो गए और बाणों का उनका तूणीर भी आज न जाने कैसे रीत गया। वह समझ गए कि काल ने केशव के न रहने पर उनकी शक्ति भी छीन ली है। जब बाण नहीं रहे तो अर्जुन धनुष के नोक से ही आभीरों का वध करने लगे, किंतु अंत तक आभीरों ने दल की कितनी ही स्त्रियों का अपहरण कर लिया। उनके साथ ही विपुल सामग्री तथा रत्नों से भरे शकटों को भी लूट लिया, और कोलाहल मचाते हुए चले गए। अंतत: अर्जुन महाकाल की इच्छा मानकर युद्ध से निवृत्त हो गए। अब वह आभीरों का पीछा

करके भी उनसे लूटी गई सामग्री तथा स्त्रियों को मुक्त तो करवा नहीं सकते थे!

आभीरों की लूट से कुछ ही स्त्रियां बच पाई थीं। सामग्री का भी अधिकांश लुट गया था। शेष स्त्रियों, बालकों, वृद्धों तथा बची-खुची साम्रगी को लेकर अर्जुन कुरुक्षेत्र पहुंचे।

उनके लिए निवास-स्थान निश्चित करने का अब अर्जुन में उतना उत्साह नहीं था। अपहरण से बची वृष्णिकुल की स्त्रियों को तो अर्जुन ने कुरुक्षेत्र के आसपास ही बसा दिया। इसी प्रकार कृतवर्मा के पुत्र तथा भोजकुल की बची हुई स्त्रियों को अर्जुन ने मर्तिकावत नगरी में बसा दिया। समुदाय में जो वृद्ध तथा बालक और स्त्रियां शेष बची थीं, उनको लेकर अर्जुन अपने पुराने राज्य इंद्रप्रस्थ में आए और उन सबको वहीं बसाने का प्रबंध कर दिया।

अर्जुन ने बताया कि उन्होंने अपने तथा कृष्ण के प्रिय सखा शिनिवंशी सात्यकि के समर्थ पुत्र यौयुधानि को सरस्वती के तट पर फैले क्षेत्र में बसा दिया है। इंद्रप्रस्थ में उन्होंने शेष सभी यादवियों तथा बालक-वृद्धों का भार कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के पुत्र वज्रनाभ को सौंप दिया। उन्होंने वज्र को इंद्रप्रस्थ में ही रहकर मथुरा की प्रजा का भी पालन करने का भार सौंप दिया था।

फिर अर्जुन महर्षि वेदव्यास से मिलने गए। उनका उपदेशामृत पाकर भी अर्जुन का घोर संताप दूर तो नहीं हुआ, किंतु उनको इतना अवश्य समझ में आ गया कि यह सब प्रारब्ध की ओर से निश्चित ही था। और एक दिन सभी प्राणियों को किसी न किसी कारण इस लोक से जाना ही होता है, अतः व्यर्थ शोक से अपने को और क्लांत करने का कोई लाभ नहीं।

कुरुराज युधिष्ठिर यादवों के महासंहार का पूरा विवरण सुनने के बाद कुछ देर तो चुप रहे, फिर बोले, "काल समस्त जगत् का कारण है। वही समस्त जीवों को नष्ट कर रहा है। इस अनिवार्य कालपाश को मान गया मैं! तुम सब भी इस पर विचार करो।"

"काल तो काल ही है। उसका निवारण नहीं किया जा सकता!" अर्जुन ने अग्रज का अनुमोदन ही किया।

उनके और भ्राताओं ने भी महाराज युधिष्ठिर के मत का ही समर्थन किया।

युधिष्ठिर की बात से ही उनको प्रतीति हो गई थी कि धर्मराज ने भी अब महाप्रस्थान का निश्चय कर लिया है।

ऐसे भी इधर बहुत दिनों से पांडवों को और स्वयं पांचाली को भी जीवन का

यह आश्रम निरर्थक लगने लगा था। विशेष रूप से अर्जुन से यादवों के महासंहार की कथा सुनकर तथा स्वयं महाधनुर्धर अर्जुन को आभीरों से युद्ध करते समय जो विचित्र प्रतीति हुई थी, उससे उनको लगा कि अब जीवन धारण करने की कोई सार्थकता नहीं रह गई है।

अपने सभी भ्राताओं की मानसिक स्थिति से युधिष्ठिर परिचित थे। उन्होंने उसी समय वैश्यापुत्र युयुत्सु को बुलवाया। फिर अपनी सारी रानियों को भी वहीं बुला लिया। कुछ देर तक विलाप करती सुभद्रा को आश्वासन देते रहने के बाद जब वह कुछ संभली तो महाराज युधिष्ठिर ने कहा, "शुभे, अब तुम शांतिपूर्वक सुनो। अबसे तुम्हारे पराक्रमी पुत्र अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित ही कुरु देश का राजा होगा। समस्त कौरवों का राजा वही होगा। और तुम्हारे भ्राता वासुदेव कृष्ण का प्रपौत्र वज्र अब यादव कुल का राजा होगा। परीक्षित हस्तिनापुर को राजधानी बनाकर राज्य करेंगे और यदुराज वज्र की राजधानी इंद्रप्रस्थ होगी।"

फिर उन्होंने धृतराष्ट्र के वैश्यापुत्र युयुत्सु को संबोधित किया। युधिष्ठिर ने निश्चय कर लिया था कि अब वे धर्म के अनुकूल राज्य त्यागकर वन की ओर प्रस्थान करेंगे। अत: उन्होंने सारे राज्य के संचालन का भार युयुत्सु को सौंप दिया। उन्होंने युयुत्सु तथा सुभद्रा को आदेश दिया, "तुमको इंद्रप्रस्थ में यदुकुल के राजा वज्र की भी पूरी तरह से रक्षा तथा सहायता करनी चाहिए। तुम दोनों ही अब कुरुकुल की मर्यादा के रक्षक हो। तुम कभी अधर्म की ओर चित्त नहीं देना और प्रजा का सतर्कतापूर्वक पालन किया जा रहा है—इसकी ओर पूरा ध्यान देना।"

महाराज युधिष्ठिर अथवा पांडवों से अब कोई भी रुकने का आग्रह नहीं कर सका। वे जानते थे कि अब उनको रोकने का आग्रह निरर्थक होगा। ऐसे भी जीवन-भर कितने ही उतार-चढ़ाव झेलने वाले पांडवों को अपने परम प्रिय कृष्ण की मृत्यु के बाद तो अब कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उनको रोकने की चेष्टा तो उनकी पीड़ा को ही बढ़ाने वाली ही होगी!

इस प्रकार युयुत्सु को भार सौंपकर राज्य की ओर से निश्चिंत हो जाने के बाद युधिष्ठिर ने अनुजों तथा कुटुंबियों के साथ गंगातट पर जाकर सबसे पहले वृद्ध मातुल श्रीमान् वसुदेव को और फिर बलदेव तथा कृष्ण आदि के साथ समस्त यादव वीरों को जलांजलि दी। फिर परंपरा तथा शास्त्रोक्त विधि के अनुसार उन सबका श्राद्ध भी किया।

इस कर्तव्य से निवृत्त होकर युधिष्ठिर ने प्रजा के बीच अपने महाप्रस्थान के विषय में घोषणा कर दी।